॥ ॐ अर्हन्नमः ॥

संशोधित, परिवर्तित

जैन-जगती

(सार्थ)

लेखक

कुं० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविन्द'

धामनिया (मेवाड़)

राजस्थान

द्वितीय संस्करण वि० सं० २००६

अर्थ-प्रस्तावक

ओसवाल-ज्ञातीय भंडारी गोत्रीय

श्रीमान् शाह हजारीमलजी भ्रातृ लालचन्द्रजी

सुपुत्र छगनराज, सुमेरमल, विजयराज

निवासी, बागरा (मारवाड़)

राजस्थान

सह

आर्थिक भेंट रु० ५०१)

प्रकाशक

— श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन —

धामनिया (मेवाड़)

प्राप्तिस्थान—

दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविन्द' बी. ए.

सुमेरपुर (मारवाड़)
राजस्थान

प्रथम संस्करण — १०००
१९९९

द्वितीय संस्करण — १०००
२००६

मूल्य ५)

मुद्रक—

सत्यपाल शर्मा

कान्ति प्रेस, आगरा।

श्रीमद् सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय

व्याख्यानवाचस्पति जैनाचार्य

पूज्यपाद भट्टारक

श्रीमद् विजय यतीन्द्र सूरीश्वरजी

महाराज

गुरुदेव !

गुरुदेव ! कोई शक्ति हो, बिन शक्ति बन सकती नहीं ;
यह 'जैन-जगती' आज मुझमें, जो दया रहती नहीं।
गुरु ! आप आशीर्वाद इसको शुचि दया कर दीजिये ;
इसके अयन के शूल सब औ कर दया हर लीजिये।

'अरविंद'

स्वर्ण नामावली

जैन-जगती का प्रकाशन् अर्थाभाव के कारण गतिरुद्ध नहीं हो, इस उच्च आशय को लेकर निम्नोक्त सज्जनों ने जो जैन-जगती-प्रकाशन-कोष में अमूल्य भावों के साथ अर्थ-सहायता दी है, लेखक चिरऋणी है।

४०१) श्री राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय, खुडाला (मारवाड़)
२५१) शाह् केसरीमलजी हुक्माजी, बागरा (,,)
२५१) शाह् प्रतापमलजी मिश्रीमलजी भूति (,,)
१५१) शाह भभूतमलजी हीराजी, बागरा (,,)
१५१) शाह् स्वरूपचन्दजी ऊमाजी ,, (,,)

द्वितीय संस्करण के

अग्रिम ग्राहकों की शुभनामावली

१०५) श्री थराद जैन युवक संघ, अहमदाबाद.
२५) ,, शाह हजारीमल जवानमल, बाकली.
२५) ,, हीराचन्द्र किस्तूरचन्द्रजी, पादरली.
२०) ,, जवाहरमल जी हुक्मा जी, राणी गांव.
२०) ,, सुरतिंग जी खूमा जी, कवराड़ा.
१०) ,, नवलाजी नगा जी, बाकली.
१०) ,, देवीचन्द्र जी लूंबा जी, बीशलपुर.
१०) ,, तिलोक चन्द्र जी किस्तूर जी, आहोर.
१०) ,, मगजी दीपा जी आहोर

विभिन्न-विभिन्न ग्रामों, पुरों में एक एक प्रति के अनेक सज्जन अग्रिम ग्राहक बने हैं लेखक उन सब का भी अत्यन्त आभारी है कि जिनकी सहानुभूति प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन के सहायक कारणों में से एक कारण है। ऐसे नगरों में गुन्दोज, पादरली, चामुंडेरी स्वरूपगंज, वीशलपुर अधिक स्मरणीय है।

———

समाज-सुधार एवं साहित्य प्रेम की भावनाओं से प्रेरित होकर जैन-जगती के प्रथम संस्करण की अधिक से अधिक प्रतियाँ खरीद कर उसके प्रचार में रस लेने वाले आगरा नगर के श्रीमन्त सज्जनों की

स्वर्ण नामावली

नाम			प्रतियाँ
शाह बनेचन्द्रजी हजारीमलजी	...	...	७५
,, जवाहरमल साकलचन्द्रजी	...	...	५०
,, नवरत्नमल मेघराजजी	...	...	५०
,, खूमाजी नरसिंहजी	...	...	५०
,, प्रेमचन्द मालाजी	...	...	३७
,, जेठमल खूमाजी	...	...	३०
,, डाहचन्द्र नत्थमलजी	...	...	२५
,, साकलचन्द्र हंसराजजी	...	....	२५
,, अचलचन्द लादाजी	...	....	२५
,, चुन्नीलाल जयरूपजी	...	...	२५
,, भीमाजी जेठमलजी	...	...	१६
,, मनशाजी जसराजजी	...	....	१६
,, स्वरूपचन्द्रजी ऊमाजी	....	...	१२

———

पूजनीया माता

श्रीमती

हगामबाई की

पुण्य-स्मृति में

विषय--सूची

अतीत खण्ड

वर्तमान खण्ड

———

भविष्यत खण्ड

दो शब्द

कला की ओर से काव्य की परख मुझ में नहीं। फिर भी श्री दौलतसिंहजी 'अरविंद' का आदेश शेष रहा कि मैं उनकी पुस्तक पर 'दो शब्द' दूँ। सुयोग की बात मेरे लिये यह है कि प्रस्तुत काव्य केवल या शुद्ध काव्य नहीं है। वह एक वर्ग-विशेष के प्रति सम्बोधन है। जैन परम्परा में से प्राण एवं प्रेरणा पाने वाले समाज के हित के निमित्त वह रचा गया है। इससे उसकी उपयोगिता सीमित होती है। पर तात्कालिक भी हो जाती है। परिणाम की दृष्टि से यह अच्छा ही है।

पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहिले में जैनों के अतीत की महिमामाय अवतारणा है। दूसरे में वर्तमान दुर्दशा है। अन्त में भविष्य की ओर से उद्बोधन है। तीनों में चोट है और स्वर उग्र है।

निस्संदेह वर्तमान के अभाव की क्षति-पूर्ति में लेखक ने अतीत को कुछ अतिरिक्त महिमा से मंडित देखा है। पर कवि सुधारक के लिये यह स्वाभाविक है। ऐतिहासिक यथार्थ पर उसे न जांचना होगा। उसके अक्षर और विगत पर न अटक कर उसके प्रभाव को ग्रहण करना यथेष्ट है। जैनों में अपनी परम्परा का गौरव तो चाहिये। वह आत्मगौरव वर्तमान के प्रति हमें तत्पर और भविष्य के प्रति प्रबुद्ध बनावे। अन्यथा इतिहास के नाम पर दावा बन कर वह दर्प और डोंग हो जायगा जो थोथी वस्तु है। वह तो कषाय है, साम्प्रदायिकता है, और मेरा अनुमान है कि लेखक के निकट भी वह इष्ट नहीं है।

पुस्तक की मूल भावना है कि जैनों में बढ़ता हुआ भेदभाव नष्ट हो। बेशक पृथग्भाव ह्रास का और सम या समन्वय भाव विकास का द्योतक है। अनेकान्त यदि कुछ है तो एकता का प्रतिपादन है। एकांत वृत्ति अनैक्य बढ़ाती है। यदि जैनों में फूट है तो यह झूठ है कि वे अनेकान्तवादी हैं। अनेकान्त जिसकी नीति हो वह वर्ग कट-फट नहीं सकता। अनेकान्त अहिंसा का बौद्धिक पर्याय है। द्वैतवृत्ति दिगंबर और श्वेताम्बर के रूप में जैन अखण्डता के दो भाग करके ही नहीं रुक सकती। वह तो समाज-शरीर के खण्ड-खण्ड करेगी। वह हिंसा की, एकान्त की, वृत्ति ही तो है। सब इतिहास में सदा विनाश की यही प्रक्रिया रही है। अपने बीच का अभेद जब भूल जाय और भेद खाने लगजाय तब समझ जाना चाहिये कि मृत्यु का निमंत्रण मिल गया है।

मैं नहीं जानता कि जैन आपस में मिलेंगे। यह जानता हूँ कि नहीं मिलेंगे तो मरेंगे। यह पुस्तक उनमें मेल चाहती है। अतः पढ़ी जायगी तो उन्हें सजीव समाज के रूप में, मरने से बचने में मदद देगी। जरूरी यह कि जैसे अपने वर्ग के भीतर वैसे इतर वर्ग के प्रति मेल की ही प्रेरणा उससे प्राप्त की जाय।

मैं लेखक के परिश्रम और सद्भावना के लिये उनका अभिनंदन करता हूँ।

दरियागंज दिल्ली
११-७-४२

जैनेन्द्रकुमार

जैन-जगती और लेखक

मैं न कवि हूँ, न काव्यकला का पारखी, इसलिये जैन-जगती को कविता की मानी हुई कसौटियों पर कस कर उसका मूल्यांकन करना मेरे अधिकार से बाहर की बात है। पर अगर हृदय की रागात्मक वृत्तियों का कविता के साथ कोई सम्बन्ध है तो मैं कहूँगा कि 'जैन-जगती' में मुझे लेखक की हार्दिकता का काफी परिचय मिला है।

पुस्तक के नाम, शैली, छंद और विषय-प्रतिपादन से यह तो स्पष्ट ही है कि भारत के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की सुन्दर कृति 'भारत-भारती' से लेखक को पर्याप्त प्रेरणा मिली है। लेखक ने जैन-समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्यत का जो चित्र अंकित किया है, उसमें कुछ ही स्थल हैं, जहाँ मैं लेखक की मनोभावना का समर्थन नहीं कर सकता। पर ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं। लेखक जिसके प्रति और जो कुछ कहना चाहता है, उसमें वह काफी सफल हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। अगाध निद्रा में सुप्त पड़े हुए जैन-समाज को जागृत करने का, उसको नव चैतन्योदय का नव संदेश देने का, और जीवन के नये आदर्शों की प्रेरणा देने का लेखक का ध्येय उच्च है, इसमें मत-वैभिन्य की जरा भी गुंजायश नहीं है। जिस तपिश से लेखक का हृदय जल रहा है, उसी को अनुभव करने के लिये 'जैन-जगती' में उसने सारे जैन-युवकों को आह्वान दिया है। उसका यह आह्वान सच्चा है, सजीव है और अभिनन्दनीय है। यह आग पूरी तरह सुलगी नहीं है, लेखक का ध्येय उसको प्रज्वलित करने का है जिससे समाज की प्रगति के मार्ग में रोड़े

बनी हुई रूढ़ियाँ और अज्ञान भस्मसात् हो जाय और नव प्रकाश रश्मियों से जीवन जाज्वल्यमान हो उठे।

लेखक ने जैनियों के केवल धार्मिक पतन पर ही नहीं, सामाजिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और शिक्षा तथा स्वास्थ्य विषयक पतन पर भी दृष्टिपात किया है। इस बारे में मुझे इतना तो कहना है कि जैन-समाज के पतन के कारणों का उल्लेख करते समय लेखक उन मूल बातों पर नहीं गया है, जिनसे जैन-समाज का ही नहीं, सारे भारतीय समाज का पतन हुआ है। भविष्यत खण्ड में सुधार के उपाय बताते समय भी लेखक की विचार-धारा विशाल नहीं बन पाई है। तथापि कई स्थलों पर भावों का उद्रेक बहुत सुन्दर हुआ है। ऐसे स्थलहृदय को छूते हैं और पाठकगण लेखक द्वारा अंकित चित्र में अपने को खो भी देते हैं।

आशा है लेखक 'जैन-जगती' द्वारा जैन-समाज में मनो-वांछित जागृत और जीवन का प्रवाह बहा सकेगा जिससे लेखक का ध्येय और समाज का कल्याण दोनों कृतकृत्य होंगे।

४ कामर्सियल बिल्डिंग
कलकत्ता
३०-७-४२

भँवरलाल सिंघवी

जैन—जगती

'जैन-जगती' वास्तव में जैन-जगत् का त्रिकाल-दर्शी-दर्पण है। सुकवि ने प्रसिद्ध 'भारत-भारती' की शैली पर जैन समाज को ठीक कसौटी पर कसा है। कई उक्तियाँ रुढ़ि चुस्त साधुओं और श्रावकों को चौंकाने वाली हैं। कहीं-कहीं शब्दों के अत्यंत कम प्रचलित पर्यायवाची रूप आने से साधारण श्रेणी के पाठकों को सहसा रुकना पड़ेगा, किन्तु जो लोग तनिक धीरज से काम लेकर आगे बढ़ेंगे वे इस पुस्तक में रसामृत के अलौकिक आनंद का आस्वादन करेंगे।

'अरविंद' कवि की यह प्रथम कृति समाज की एक अनिवार्य्य आवश्यकता की पूर्ति करती है, इसके अतिरिक्त मुझे कवि के अन्य सार्वजनिक विषयों के बड़े-छोटे कई पद्य-ग्रंथों को (अप्रकाशित रूप में) पढ़ने और सुनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। इस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यदि जनता ने कवि की कृतियों को अपनाया तो 'अरविंद' के रूप में एक लोक-सेवी कवि का उसे विशेष लाभ प्राप्त होगा।

जैन-जगती' जागृति करने के लिये संजीवनी-वटी है। फैले हुये आडम्बर एवं पाखंड को नेश्तनाबूद करने के लिये बम्ब का गोला है। समाज के सब पहलुओं को निर्भीकता पूर्वक छूआ गया है। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।

ज्ञान-भंडार जोधपुर
आ० कृ० १३-९९ } श्रीनाथ-मोदी 'हिन्दी प्रचारक'

निवेदन

'जैन-जगती' न काव्य है और न कवि की कृति सो पाठक इसे उस दृष्टि से देखें। यह है समाज के एक सेवक का समाज को संबोधन और समाज के भूत, भविष्यत और वर्तमान का दर्शन। मैं अपने को धन्य समझूँगा अगर यह अपनायी जायगी और इससे कुछ लाभ उठाया जायगा।

आचार्य श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरिजी व उनके सुशिष्य काव्य-प्रेमी मुनिराज श्री विद्याविजयजी का मैं अपार ऋणी हूँ, जिनकी एकमात्र कृपा से मैं यह कर सका हूँ।

अगर महाकवि पं० अयोध्यासिंहजी 'हरिऔध' की अनुकंपा न होती तो 'जगती' में जो कुछ भी सरसता आ सकी है न आ पाती। मैं 'हरिऔधजी' का अति ऋणी हूँ।

'जगती' कुछ विलम्ब से निकली है। इसका हेतु यह है कि इसके साथ-साथ 'रसलता' व 'छत्र-प्रताप' ये दो काव्य लिखे गये, जिससे समय अधिक लग गया। इस विलंब के लिये मैं क्षमा का अधिकारी हूँ।

सहृदय पाठकों से मुझे प्रोत्साहन व जीवन मिलेगा ऐसी आशा है।

बागरा (मारवाड़)
चै० शु० १३-६६

विनीत
कुं० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद'

॥ ॐ अर्हन्नमः ॥

जैन जगती

अतीत खण्ड

—:००:—

मङ्गलाचरण

हे शारदे! उर-बीन पर तू कमल-हस्त पसार दे;
क्षत तार जो हों, डार दे नव, आज बीन सवार दे।
सोये जगें, खारे मिलें, मृत जी उठे वह राग गा,
हो हित-अहित का ज्ञान जिससे आज मा! वह भाग गा ॥१॥

हे सरस्वती माते! (मेरे) वीणा रूपी हृदय पर तू अपना कमल सदृश सुकोमल कर डाल दे। मेरी वीणा (हृदय) के जो तार जीर्ण-क्षीर्ण हो गये हैं, उनके स्थान पर नवीन तार डाल दे और वीणा को आज सुधार दे। हे माते! ऐसा राग गा कि जिसको श्रवण कर (मोहमाया की) निद्रा में सोये हुये जग जाय, (अमित्र बने हुये) परस्पर द्वेष-भाव रखने वाले परस्पर प्रेम-पूर्वक गले मिले और मुर्दों में प्राण आ जाय। हे माते! आज उस अंश को गाना, जिसको श्रवण कर हमको अपने हित अहित का ज्ञान हो जाय।

नि॰

और ...नी
सम...

पारस विनिर्मित लेखनी ! मुक्ता-मसी में घोल दू ;
काल हंस उर पर चित्र दे; उर सारनिर्मित खोल दू !
आसीन हो कल हंस पर वह मातृ वीणाधीश्वरी;
तन हार करता वह रहे, स्वरहार वह वागेश्वरी ॥२॥

हे पारस की बनी हुई लेखनी ! (निर्मल) मुक्ताओं की स्याही में घोल दूँ और मेरा लोह का बना हुआ हृदय खोल दूँ, तू उस पर श्वेत हंस चित्रित कर दे और उस श्वेत हंस पर वीणाधारिणी माता सरस्वती का चित्र ऐसा प्रतिष्ठित कर दे। हंस नृत्य करता रहे और माता सरस्वती वीणा पर गाती रहे।

उपक्रमणिका

किसका रहा वैभव बताओ एक सा सब काल में,
जो था कभी उन्नत वही बिगड़ा हुआ है हाल में।
इस दुर्दिवस में वह कथा है लेखनी ! लिखनी तुझे,
पाषाण उर हम हो गये, उर पद्म है करना तुझे ॥३॥

इतिहास बतलाता है कि संसार में आज तक किसी का भी समय सदा एक सा कभी नहीं रहा है। यह भारतवर्ष जो कभी उन्नत था, आज बुरी तरह पतित है। हे लेखनी ! इस पतन काल में इस पतनावस्था का वर्णन आज तुझ को करना है। हम भारतवासियों का हृदय पत्थर सदृश्य ऐसा जड़ हो गया है कि भारतवर्ष को इतना पद-दलित होता हुआ देखकर

भी वह द्रवित नहीं होता है, तुझ को आज उसे कमल के सदृश्य कोमल करना है।

जाना नहीं था यह किसी ने यह दशा बन जायगी।
रम्भा सरीखी आर्य-जगती श्वान घर बन जायगी!
पूर्वज चले थे देव-से जिस पर मराली चाल से;
उस पर चलेंगे आज पशु-से हम शृगाली चाल से ॥४॥

आज तक किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि भारत-भूमि की यह पतित अवस्था हो जायगी, रम्भा के समान सुन्दर आर्य-जगती कुत्तों का घर बन जायगी, जिस भारतभूमि पर पूर्वज देवताओं के सदृश हंस की चाल से चले थे हम उस भूमि पर पशु समान शृंगाल की चाल से चलेंगे।

हा क्या गया इस भांति तुझको हे दुखे! हे मात रे!
हा! चन्द्र सा आनन कहां वह! क्षीणतम यह गात रे!
अभिराम सुषमा हो गई जो लुप्त पतझड़ काल में—
उद्यान में देखी गई फूली हुई मधुकाल में!!! ॥५॥

हे दुखिया भारत माते! ऐसा तुझको क्या हो गया! कहाँ तो चन्द्रमा के समान तेरा वह प्रभापूर्ण मुख और कहाँ यह क्षीणतम वदन! बनलक्ष्मी की सुन्दरता पतझड़ में विलीन होती है, लेकिन बसन्त काल में हम उसको पुनः उपवनों में जगमग करती देखते हैं।

पर हाय! तेरे रूप का तो दूसरा ही हाल है;
मधुकाल अगणित जा चुके, बदला न कुछ भी बाल है!

पगली तथा तू क्षीण वदना ! काल अभिमुख गामिनी,
क्या अन्त तेरा आ लगा है ? अस्थिपिंजरवाहिनी ? ॥६॥

परन्तु हे भारतभूमि ! तेरी दशा कुछ दूसरी ही प्रकार की है। अनेकों बसंत आये और चले गये, फिर भी तेरी पतनावस्था के एक बाल को भी परिवर्तित नहीं देखते। हे कृषवदने ! तू पागल है अथवा काल के मुँह में उतरने के लिए अग्रसर हो रही है ? हे अस्थि-पिंजरवाहिनी ! क्या तेरा काल आ गया है ?

चिन्ता नहीं है, आज जो तू पद-दलित है हो गई !
पर देव धरती ! हाय तेरी क्या दशा यह हो गई !
टूटे हुए भी हार फिर से सूत्र में पोये गये !
तेरे सदा को सूत्र, मुक्ता मातृ ! क्या खोये गये ? ॥७॥

हे भारत माते ! तेरी यह पतनावस्था देख कर दुःख नहीं होता, लेकिन हाय ! तेरा यह पतन कैसे हुआ ? एक बार टूटे हुए हार फिर सूत्रों में पाये गये हैं, लेकिन तेरे तो सूत्र और माला के मोती दोनों ही सदा के लिए खो गये प्रतीत होते हैं।

चिंता नहीं है इस पतन से औ अधिक बढ़ जाय तो;
हम हो समुन्नत, भाव यह हर व्यक्ति में जग जाय तो।
तमलोक का सीमान्त ही प्रारम्भ शुच्यालोक का;
हम हैं पुरुष, पुरुषार्थ ही उन्मूल करता शोक का ॥ ८ ॥

नहीं इस पतन से कोई चिंता है और नहीं है, अगर अधिक भी बढ़ जाय तो। चिंता केवल यह है कि प्रत्येक भारतवासी में यह भावनायें भर जाय कि हम सब भारतवासी समुन्नत हों।
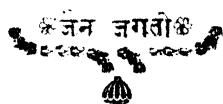
उन्नति और अवनति तो अपने २ क्रम से होती ही रहती हैं। जहाँ अंधकार का अन्त है वहीं प्रकाश का प्रारम्भ समझना चाहिए। हम पुरुष कहलाते हैं, पुरुषार्थ (करना) हमारा धर्म (स्वभाव) है। पुरुषार्थ दुःख एवं शोक का नाश करता है।

नभ में चढ़े का क्या पतन अनिवार्य्य है होता नहीं ?
जो ले चुका है जन्म क्या मरना उसे होता नहीं ?
यह विश्व वर्तनशील है—हम जानते सिद्धान्त हैं;
बनकर अनेकों भ्रष्ट होते—मिल रहे दृष्टान्त हैं ॥ ९ ॥

जो आकाश में ऊपर उड़ता है वह नीचे भी उतरता ही है; जो जन्म लेता है वह मरता ही है। संसार परिवर्तनशील है, यह हम भलि प्रकार जानते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण उपलब्ध हैं कि जो यह बतलाते हैं कि अनेकों बने और बिगड़े।

जग का विधाता सूर्य है, भलि भांति जग है जानता;
सूर्यास्त होता देख कर क्या शोक जग है मानता ?
डूबा हुआ है आज जो वह कल निकल कर आयगा;
डूबे हुए वह पद्म को फिर से हरा कर जायगा ॥ १० ॥

सूर्य ही जगत के जीवन का पोषण और शोषण करता है। दिन-रात, सर्दी, गर्मी, वर्षा का होना; वृक्ष, लता, वनस्पति और कृषि का फलना और उत्पन्न होना यह सब सूर्य के ताप पर निर्भर है; परन्तु सूर्य को अस्त होता देख कर कोई दुःख नहीं करता है। आज अस्त हुआ सूर्य कल निकल आयगा और मुर्भित कमल खिल उठेगा।

हा ! कौन पल में भाग्य-दिनकर अस्त तेरा हो गया !
तेरे गगन में आज तक देखा नहीं फिर जो गया !
क्यों आर्य ! अब तक सो रहे हो कामिनी-रस-राग में ?
पाश्चात्य जनपद ने हरा वैभव हमारा हाँस में ॥ ११ ॥

परन्तु हे भारतमाते ! तेरा भाग्य रूपी सूर्य न मालूम ऐसे किस नक्षत्र क्षण में अस्त हुआ कि फिर तेरे आकाश में उसे उदित हुआ नहीं देखा। हे भारत वासियो ! तुम अब तक रति-चार और आनंद भोग में पड़े क्यों सो रहे हो ? देखो, तुम्हारा सर्व वैभव यूरोप आदि पश्चिमीय प्रदेशों ने विश्वास, विश्वास में हर लिया है।

कहना न होगा कि सभी के प्राण-त्राता आर्य हैं;
विद्याप्रदाता, ज्ञानदाता, अन्नदाता आर्य हैं।
उन्नत हुये ये देश जितने आज जग में दीखते;
होती नहीं यदि जो हमारी कुछ दया, क्या सीखते ? ॥१२॥

इसमें कोई विवाद नहीं कि संसार के आदि में और मध्य में अन्न देने वाले, विद्या पढ़ाने वाले और ज्ञान सिखाने वाले आर्य रहे हैं। वर्तमान युग में जो प्रदेश उन्नत दिखाई पड़ते हैं, अगर उन पर हमारी कुछ दया नहीं होती तो वे कुछ भी सीख नहीं पाते।

विज्ञान के वैचित्र्य से जो हो रहा अभितोष है;
यह तो हमारे ज्ञान का बस एक लघुतम कोष है।
नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा इस व्योम पर अधिकार था;
अपवर्ग तक भी जब हमारे राज्य का विस्तार था ॥१३॥

वर्तमान युग में विज्ञान की आश्चर्यकारक उन्नति देखकर जो संतोष किया जा रहा है, इतनी विज्ञान की उन्नति तो हमारे उस संपादित ज्ञान का एक क्षुद्र अंश है। हमारा राज्य जिस समय स्वर्ग तक था, उस समय नक्षत्र, ग्रह और तारकों पर: इस समूचे आकाश पर हमारा शासन था—यह बात अभी के लिए बहुत दूर की है।

हे आर्य! जागो आज तुम, दुर्दैव डटकर अड़ गया!
पद में पतित होकर हमारा देश भारत पड़ गया!
चालीस कोटि वीर हो, दुर्दैव से जम कर लड़ो:
हो बात केवल एक ही—बस मार दो या मर पड़ो ॥१४॥

हे भारतवासियों! अब तुम जागो। दुर्भाग्य तुम्हारे से बलपूर्वक अड़ा हुआ है। भारतवर्ष पतित होकर चरणों में पड़ा हुआ है। तुम भारत के चालीस करोड़ वीर हो, दुर्भाग्य का सामना डट कर करो। या तो दुर्भाग्य को मार कर भगा दो या तुम स्वयं उससे लड़ते २ मर जाओ—यह एक मात्र प्रतिज्ञा रक्खो।

भारत नरक-सा आज है जो था कभी अपवर्ग सा!
हैं देख लो मृत-से निवासी, देश है मृतवर्ग-सा!
हर एक का हर एक में खोया हुआ विश्वास है!
यह एक दम परतंत्र है, यह एक दम हत-आश है ॥१५॥

यह भारतवर्ष कभी स्वर्ग के समान सुखी था, आज यह नरक के समान यातनायें सह रहा है। देख लीजिये, भारतवासी

मुर्दा हैं और भारतवर्ष भी मुर्दाओं का देश है। एक भारतवासी अन्य भारतवासी का कुछ भी विश्वास नहीं करता है। भारतवर्ष परतंत्र है, पूर्ण निराश है।

पूर्वज हमारे कौन थे ? यह बैठ कर सोचो सभी;
यह प्रश्न जीवन-मंत्र है, मिलकर सभी सोचो अभी।
भूले हुए हैं आज हम निज देश के अभिमान को;
विज्ञान को, श्रुतिज्ञान को, सद्ज्ञान को, सम्मान को ॥१६॥

हे बन्धुओं ! हमारे पूर्वज कौन थे ? इस विषय पर हम सभी अभी बैठ कर विचार करें क्योंकि हमारा जीवनस्वास्थ्य इसी विषय पर निर्भर है। दुःख है, आज हम हमारे देश का गौरव, गर्व, विज्ञान, मान और आगम-निगमज्ञान को विस्मृत कर चुके हैं।

आर्य-भूमि

हिम शैल-माला कोट-सी जिसके चतुर्दिक छा रही;
जिसके त्रिदिक जल राशि उर्मिल पर्य्यवेक्षण कर रही।
हिमराज अचलेश्वर कहो, क्या विश्व में कम ख्यात है ?
जिसके सुयश के गान घर घर हो रहे दिन-रात हैं ॥१७॥

आर्यभूमि भारतवर्ष के चारों ओर हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ हैं। तीन ओर महासागर की लहरें टकराती हैं। पर्वताधिराज हिमालय की कीर्ति, क्या संसार में कम है ? इस हिमालय पर्वत के गौरव को प्रत्येक जनपद जानता है।
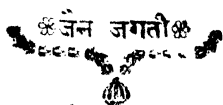
इन गिरिवरों से निकल लाखों निम्नगायें बह रहीं।
जो देव भारत को हमारे देव-उपवन कर रहीं॥
फिर रत्नगर्भा भारती के क्यों न नर नर-रत्न हों।
स्वर्गीय जीवन के यहाँ उपकरण जब उत्पन्न हों॥ १६॥

इन हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों से असंख्य नद-नाले, नदियाँ निकल कर स्वर्ग सदृश्या भारतभूमिको नंदनवन बना रही हैं। जब जीवन के उत्तम प्रकार के पोषण के सामान यहाँ उत्पन्न होते हों तब फिर यहाँ के मनुज क्यों नहीं नर रत्न होंगे?

विद्या-कला-कौशल सभी का यह प्रथम गुरुराज है;
इसके सहारे विश्व के होते रहे जग काज हैं।
जो स्वर्ग भी गुण गा रहा हो कौनसा आश्चर्य है;
बस आर्यजगती, आर्यजगती, आर्यजगती आर्य है॥ १८॥

यह भारत भूमि ही प्रथम संसार का गुरु है जिसने सर्व प्रथम संसार को विद्या, कला-कौशल सिखाया। आज तक संसार के बड़े बड़े कार्य इसी के सहयोग-बल पर होते रहे हैं। स्वर्ग में देवतागण अगर इसकी कीर्ति का व्याख्यान करते हैं तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? आर्यावर्त तो आर्यावर्त ही है, श्रेष्ठ है।

आर्यावर्त-महात्म्य

जब अन्य जनपद के निवासी थे दिगंबर घूमते,
घनघोर जङ्गल में विचरते, फूल-पल्लव चूमते।

भार्या, सुता में भी न जब वे भेद कुछ थे मानते;
मनुधर्म हम उस काल से थे बहुत पहिले जानते ॥ २० ॥

संसार के अन्य प्रदेशों के निवासी जब नग्न रहते थे; भयानक जङ्गलों में घूमा करते थे; फूल, पत्ते खाकर उदर भरते थे, माता और पुत्री के अन्तर को भी नहीं मानते थे; उस समय से भी कितने ही वर्षों पूर्व हम मनुष्य धर्म को जानते थे।

ऋषभादि जिनवर[1], विमल कुलकर[2], राम, रावण हो चुके;
देव-रण, जगती—विलोड़न, लङ्का-दाहन हो चुके।
श्रुति-शास्त्र रचना हो चुकी थी, यम-नियम थे गढ़ चुके;
ये अब जगे, जब धर्म के त्रय मत हमारे लड़ चुके ॥ २१ ॥

१—भगवान ऋषभदेव—इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न नाभि कुलकर के ये पुत्र थे। ये इस अवसर्पिणीकाल में धर्म के आदि प्रवर्तक हुये हैं। जगती का विलोड़न अर्थात् संसार में सर्वप्रथम कृषिविद्या की प्रवर्तना इन्होंने की, वेद और अन्य आगम-निगम शास्त्रों की रचनायें भी इन्हीं के काल में हुईं। बहत्तर प्रकार की पुरुष-कलायें, चौंसठ प्रकार की स्त्री-कलायें, चौदह विद्यायें इन्होंने निकालीं और संसार में उनका प्रचार किया। इनकी आयु ८४ लक्ष पूर्व की थी। संसार में राजोपाधि सर्वप्रथम इन्होंने ही धारण की थी।

२—विमलवाहन—श्वेतगज की सवारी करने के कारण ये विमलवाहन कहलाये। भगवान् ऋषभदेव से ये सात पीढ़ी पूर्व हो चुके थे। ये प्रथम कुलकर थे।

भगवान् ऋषभदेव आदिजिनेश्वर, विमलवाहन कुलकर, रामचन्द्र और रावण का जन्म देवासुर-संग्राम, समुद्र-मंथन, लङ्का-दहन, श्रुति और शास्त्रों की रचना, यम-नियमों का निर्माण-कार्य आदि अनेक महत्व पूर्ण कार्य हो कर असंख्य वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् ये अन्य देश उस समय जाग्रत हुए जब भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् हमारे आर्य-धर्म के जैन, वैदिक और बौद्धमतों में परस्पर कलह उत्पन्न हुआ।

उत्कीर्ण होकर मत-मतान्तर विश्व भर में छा गये;
जो सो रहे थे जग गये, दानव मनुजता पा गये।
कानन अगम सब कट गये, हर ठौर उपवन हो गये;
आखेट कर जो पेट भरते, थे कृषक वे हो गये॥ २२॥

जैन, बौद्ध और वेदमत फैलकर सर्व जगती में प्रसरित हो गये। जहाँ इनका प्रचार हुआ वहाँ के निवासी जाग्रत और सभ्य बन गये, घनेजङ्गल काट डाले गये और वहाँ उपवन लग गये। इस प्रकार जो मनुष्य शिकार कर के ही उदर भरते थे इन धर्मों के प्रचार से कृषि करना सीख गये।

ये कर्म हैं उस काल के सब जब कि गिरने हम लगे;
थे आप गिरते जा रहे पर सोचने क्यों हम लगे।
जिस वेग से ऊँचे चढ़े थे शत गुणे गिर कर पड़े;
विद्या-कला-कौशल सभी के चक्र उल्टे चल पड़े॥ २३॥

अन्य देशों को जाग्रत करना, सभ्य बनाना, मनुष्यता

सिखलाना आदि कर्म हमारे उस समय के हैं जब कि हम गिर रहे थे। हमारी अवनति हो रही थी, परन्तु हम इसका विचार ही क्यों करने लगे? जिस उत्साह एवं शीघ्रता से हमारी उन्नति हुई थी उससे सौ गुणी शीघ्रता से हमारी अवनति हुई और विद्या-कला-कौशल का उपयोग जो कल्याण के लिये था, सर्वनाश के लिये हो चला।

मिट जाय चाहे मेदनी—वे कर्म मिट सकते नहीं;
वे तब मिटेंगे, रवि चन्द्र, जब उदय हो सकते नहीं।
कंकाल काले रूप में भी भूप उनको कर दिया।
बस लोह को पारस छुआ कर हेम हमने कर दिया॥ २४॥

यह पृथ्वी नष्ट भले हो जाय, लेकिन हमारे पूर्वजों के वे महान कृत्य कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। वे तब नष्ट होंगे जब सूर्य चन्द्र उदित ही नहीं होंगे अर्थात् प्रलय होने पर! हम दीन बनते चले जा रहे थे, फिर भी अन्य देशों को हमने समृद्ध बनाया, लोह से उन्हें कंचन बनाया।

था भोग-जगती देश, चाहे कर्म-जगती नाम था;
अपवर्ग से बढ़ कर यहाँ उपलब्ध सुख अभिराम था।
हम कर चुके थे स्वर्ग विस्मृत, स्वर्ग इसको मानते;
इसको पिता, माता इसे, निज गेह इसको जानते॥ २५॥

इस कर्मभूमि भारत में बिना श्रम किये ही वैभव की प्राप्ति होती थी। स्वर्ग से भी बढ़कर यहाँ सुख था। अन्य स्वर्ग क्या जाने, इसको ही स्वर्ग समझते थे और माता पिता
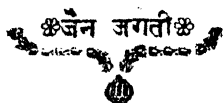
के सदृश इसका मान करते थे और इसको अपना घर समझते थे।

हर ठौर जम्बू द्वीप+में थे कल्प-तरुवर फल रहे;
पुरुषार्थ बिन प्रारब्ध ये स्वादिष्ट मधुरम फल रहे।
सब थे चराचर प्रेम भीगे, प्रेममय सर्वस्व था;
वायु-अग्नि जल थे प्रेममय, यह प्रेममय सब विश्व था॥२६॥

सर्वत्र जम्बूद्वीप में बारह माह फल देने वाले वृक्ष थे। बिना परिश्रम किये सर्व प्रकार के उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति थी। अचर, चर, जल, अग्नि, वायु आदि संसार की सर्व जीव-अजीव वस्तुओं में मनोहर, प्रेमभरा व्यवहार था।

अमृत भरे कंचन-कलश से हाय! विष क्यों झलकता;
चेतन हमारे प्राण से जड़भाव किदृश छलकता!
क्या भाग्य दिनकर छिप गया! क्या सृष्टि का विश्राम है!
केली-सदन यमराज का अब देश भारत धाम है॥ २७॥

अमृत से पूर्ण स्वर्णघट समान भारतवर्ष से, ज्ञात नहीं होता विष क्यों बह रहा है। हम भारतवासियों की चेतन आत्माओं से अज्ञानता के भाव कैसे प्रकट हो रहे हैं! क्या हमारा भाग्य रूपी सूर्य अस्त हो गया? क्या संसार

+१ भरतक्षेत्र २ हेमवंत ३ हरिवास ४ ऐरण्यवंत ५ ऐरवतयुगल क्षेत्र ६ रम्यकयुगलक्षेत्र ७ महाविदेह क्षेत्र, ये सात क्षेत्र मिलकर जम्बूद्वीप कहलाते हैं।

अब अमर शान्ति ग्रहण करने को है ? अर्थात् क्या प्रलय संनिकट है ? भारतवर्ष यमराज का क्रीड़ास्थल बना हुआ है।

थी आर्य-जगती जो कभी मनमोहिनी भू सुन्दरा,
लज्जा बचाने हाय ! अब वह शोधती गिरि कन्दरा।
कैसी वरा थी मेदिनी ! औ मेदचर थे क्या कहूँ !
इसको कहूँ यदि मानसर—कल हंस हम थे क्या कहूँ ॥१६॥

जो आर्यावर्त भूमि अत्यन्त सुहावनी और मनोमुग्ध-कारिणी थी वह आज इतनी पतित हो गई है कि लज्जा के मारे छिपने के लिये पर्वत, गुफायें शोध रही है। उस समय भारतभूमि कैसी सुन्दर थी· और कैसे इसके निवासी थे—इस विषय में क्या कहूँ ? समझिये, अगर यह मानसरोवर थी, तो इसके निवासी राजहंस थे। इससे अधिक और क्या कहूँ ?

हम रत्न से कंकड़ हुये ! हम राम थे, अब रंक हैं !
होकर अहिंसा स्रोत की झख मर रही अघपंक हैं !
कितना बढ़ा है ? बढ़ रहा। फिर घोर पापाचार है !
श्रीमंत का अब दीन पर होता निरंतर वार है ॥ २६ ॥

आज हमारा मूल्य कंकड़ पत्थर जितना है। अब हम राजा नहीं रहे, अब तो दीन निर्धन हैं। अहिंसा के पालक होकर पाप के दल-दल में सड़ रहे हैं। पापाचरण कितना फैल चुका है और प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा है। निर्धन एवं दीनों पर श्रीमंतों का अत्याचार अखण्ड गति से हो रहा है।

जगती हमारी काल-दर में गप्प यों हो जायगी!
फिर यत्न कितने भी करो, मिलने न फिर तो पायगी!
पुरुषार्थ में ही अर्थ है हे बन्धुओ! यदि स्वाँस हो,
दाँहे खड़े अखिलेश हैं, यदि ईश में विश्वास हो॥ ३०॥

अगर हम नहीं चेतन होंगे तो यह आर्य-भूमि काल के गहरे उदर में बैठ जायगी। फिर लाखों प्रयत्न करने पर भी हम इसको बाहर नहीं निकाल सकेंगे। हे बन्धुओ! पुरुषार्थ में ही फल की प्राप्ति रही हुई है। अगर साहस है और ईश्वर में विश्वास है तो ईश्वर हमारी सहायता करने के लिये एक दम खड़े हैं।

दिनकर हमारा खो गया! अब रात्रि का विश्राम है!
करवाल लेकर काल अब फिरता यहाँ उद्दाम है।
हे नाथ! आँखों देखते हो, मौन क्यों हो ले रहे?
क्या पापियों को पाप का विभु! भोगने फल दे रहे॥३१॥

हमारा सूर्य्य अस्त हो चुका है और घोर रात्रि का प्रसार है। यमराज निडर होकर सर्वत्र परिभ्रमण कर रहा है। हे परमेश्वर! आप यह सब देखते हुए भी चुप क्यों हो रहे हैं? क्या आप इसी लिये तो चुप नहीं है कि हम पापियों को अपने कृत पापों का फल भोगना ही चाहिये।

हमारे-पूर्वज

मैं उन असीमाधार की सीमा कहूँ, कब तक, कहो?
क्या कर सके खाली जलधि को घन भला अब तक, कहो?

मैं रश्मि हूँ, वे रश्मिमाली, वे उदधि, घटवान मैं;
संगीत वे, सारंग-पानी; क्या करूँ गुणगान मैं ॥३२॥

उन वर्णन से अतीत महापुरुषों का मैं कब तक वर्णन कर सकूँ। बादल आज तक समुद्र का पानी उलीचते रहे, परन्तु, क्या-क्या वे समुद्र को खाली कर सके ? मैं प्रकाश की एव चन्द्र किरण हूँ, वे पूर्वज सूर्य हैं; वे महासागर हैं और मैं एक घट वाला, वे संगीत के पारावार हैं और मेरे हाथ में एक वीणा ऐसे उन महान् का कीर्तन करने में मैं कैसे सफल हो सकता हूँ ?

हैं गान उनके गूँजते अब भी गगन जलधार में,
पवमान, कानन, अनल में औ फूट कर तलपार में।
पिक, केकि कोका सारिका हैं गान उनके गा रहे,
देखे जहाँ हम हैं वही संचार उनका पा रहे ॥३३॥

जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश सर्वत्र उनके गीत गाये जा रहे हैं ! कोयल, मोर, मैना आदि पक्षी जो कलरव करते हैं, उन्हीं दयालु पूर्वजों का गान गाते हैं। जिस ओर दृष्टिपात करें हम उनके प्रभाव का अनुभव करते हैं।

अपमान होगा हाय ! उनका जो उन्हें मैं नर कहूँ,
तब सुर कहूँ ? सुरनाथ या ? फिर और कुछ ऊपर कहूँ ?
उनके रहे सेवक अहो ! सुर, इन्द्र, रवि, शशि असुर थे,
वे अचल योगी, पतित पावन सिद्ध, तारण-तरण थे ॥३४॥

ऐसे महान पूर्वजों को अगर मैं मनुष्य कहता हूँ तो यह तो

उनका अपमान होगा ! उन्हें देव क* ? इन्द्र कहूँ या इनसे भी कोई ऊपर कहूँ ! देवता, राक्षस, इन्द्र, सूर्य चन्द्र तो उनके सेवक थे। वे पूर्वज महाव्रती, योगी, पतितों * स्वामी, सिद्ध और भवसागर से पार उतारने वाले, उतरने वाले सफल तैराक थे ।

धर्मार्क सरसिजप्राण थे, वे धर्म पंकज-भृग थे;
वे धर्म सरवर-मीन थे, सोपान-मेरुमृग थे।
वे सर्व वर्त्ती भाव थे, वे मोक्षवर्त्ती जीव थे।
चरित्र की दृढ़ नीव थे, वे ज्ञान दर्शन सींव थे ॥३५॥

उनके हृदय-कमल धर्म रूपी सूर्य के प्रकाश को पाकर खिलते थे। धर्म रूपी कमल के वे भ्रमर थे। धर्म रूपी सरोवर की वे मछली थे मोक्षप्रेमी प्राणी थे। ज्ञान-दर्शन और चरित्र की वे परम चरम नीम-सीम थे।

वे शांति-संयम पूर्ण थे, दाक्षिण्य में रण-शूर थे;
वे धीर थे, गंभीर थे, सद्धर्ममद में चूर थे।
निर्लेप थे, निष्पाप थे, कामारि थे, शिवराज थे;
वे कर्म-पशुदल काटने में वर निडर पशुराज थे ॥ ३६ ॥

वे पूर्वज परम शान्त, पूर्ण संयमी, दानवीर, धीर, गम्भीर और परम धर्मात्मा थे। न उनको मोह था और न वे कोई पाप ही करते थे। वे शीलव्रतधारी भगवान् महादेव थे। कर्मरूपी पशुओं के लिए वे सिंह थे।

थी शारदा झाडू लगाती, चरण चपला चूमती;
जिनके घरों में सिद्धियाँ थीं सेविका सी घूमती।
था ऐश ऐसा कौन जो वह प्राप्त उनको था नहीं;
पर रोश के पीछे उन्हें मरते लखा यों था नहीं॥ ३७॥

उन पूर्वजों के घरों में सरस्वती, लक्ष्मी और सिद्धियाँ सेविकाओं का कार्य करती थीं। उन्हें सर्व प्रकार के वैभव प्राप्त थे। ऐसा कोई वैभव नहीं था जो उन्हें अप्राप्य था। फिर भी वे वैभव के इतने प्यासे न थे जितने आज हम वैभव के पीछे मर रहे हैं।

वे चक्रवर्त्ती भूप थे, षड्खण्ड लोकाधीप थे;
भू, वह्नि, जल, नभ, वायु पर उनके जगामग दीप थे।
था कौन ऐसा कर्म जिसको वे नहीं थे कर सके?
था कौन ऐसा सुर, मनुज जिसको न वश वे कर सके?॥३८॥

वे सार्वभौम सम्राट थे। छः ही खण्डों में, सर्व लोकों में उनका साम्राज्य था। पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश, वायु सर्वत्र उनका प्रभाव था। ऐसा कोई कर्म ही नहीं था जो उनके लिए असंभव और अशक्य रहा हो। उन्होंने समस्त लोक और लोकों के निवासी पुरुष और देवों को जय किया था।

करते नहीं वे कर्म ऐसा, कि किसी को कष्ट हो;
सब एक घर के मीन थे, फिर क्यों किसी से रुष्ट हो।

आचार में, व्यवहार में, सन्मार्ग में सब एक थे;
मृगराज, गौ, मृग, गज, अजा जल घाट पीते एक थे ॥३९॥

वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे कि जिससे किसी अन्य प्राणी को कुछ भी कष्ट हो। उनमें ऐसा मनमुटाव हो भी तो कैसे, सब अपने को एक ही स्थल में अनुप्राणित मानते थे। सब के आचार, व्यवहार एक थे। सत्य मार्ग में सब एक थे। गौ, बकरी, सिंह, हिरण, हाथी सब परस्पर प्रेम पूर्वक एक ही स्थान पर पानी पीते थे।

साहित्य उनने जो लिखा वह क्या लिखेगी शारदा!
आसीन थी उन पूर्वजों के मुख-कमल पर शारदा।
उन ज्ञानगरिमागार के जो गान गायक गा रहे,
मृतलोक से सुरलोक में वे हैं बुलाये जा रहे ॥४०॥

जैसा साहित्य उन पूर्वजों ने रचा है स्वयं सरस्वती भी वैसे साहित्य की रचना नहीं कर सकती। उन पूर्वजों की जिह्वाओं में सरस्वती का निवास था। जो संगीतक उन ज्ञान और गौरव के भंडार पूर्वजों का कीर्तन करते हैं; वे देवलोक में निमंत्रित किये जा रहे हैं। अर्थात् मृत्यु के पश्चात् उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती है

कृतकाल में कलिकाल का वे स्वप्न खलु थे देखते;
सर्वज्ञ थे, त्रयकालदर्शी, क्यों न थे वे पेखते?
वे प्रलय तक के हाल सब लिखवा गये औ लिख गये;
कौशल-कला-विज्ञान के भंडार पूरे भर गये ॥४१॥

वे हमारे पूर्वज भूत, भविष्यत, वर्तमान को देखने वाले थे, सर्व जानने वाले थे। कलयुग की कल्पना उन्होंने सत्ययुग में ही करली थी। इसी दृष्टि से वे सृष्टि के अन्त समय तक का पूरा वर्णन ग्रन्थों में कर गये। कौशल, कला एवं विज्ञान पर अनेकों ग्रन्थ लिख कर साहित्य भंडार भर गये।

हम देखते हैं ठीक वह है जिस तरह श्रुति कह रहे;
हैं आज घटनाचक्र उनके शब्द अनुसार कर रहे।
विश्वास फिर भी कथन में होता नहीं उनके हमें!
हा! क्या करें? यह काल क्यों देता नहीं करने हमें!॥४२॥

कलियुग का उन्होंने जैसा वर्णन अपने ग्रन्थों में लिखा है, ठीक उन्हीं के शब्दों के अनुसार आज सब कलियुग की घटनायें घट रही हैं। फिर भी हमको उनके ग्रन्थों की प्रभाविकता एवं सत्यता पर श्रद्धा नहीं जमती। इसमें हमारा दोष नहीं। इस कलियुग का स्वभाव ही ऐसा है। पूर्वजों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न ही नहीं होती, फिर जमे कहाँ से?

है कौन ऐसा मनुजवर जो साम्य उनका कर सके?
बल, ज्ञान तप, व्यवहार में जो होड़ उनकी कर सके?
क्या जगमगाती दीपशानी साम्य रवि का कर सकी?
हो क्या गया यदि कीट पर अधिकार शिखा भी कर सकी॥४३॥

हमारे पूर्वजों की समता करने वाला अन्य जनपदों में कोई पुरुष नहीं हुआ। बल में, ज्ञान में, तपस्या में और मानव व्यवहार में उनकी बराबरी करने वाला कौन है? दीपक की
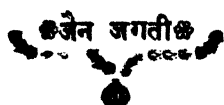
लौ चाहे जितनी जगमग करें; लेकिन क्या वह सूर्य की समता कर सकती है ? पतंगों के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेने मात्र से वह सूर्य से बढ़ कर है यह नहीं कहा जा सकता।

इन तीर्थ धर्मावास की दृढ़ नीव वे हैं रख गये;
आगम, निगम, श्रुति, यम, नियम विस्तारपूर्वक रच गये।
साहित्य जितना है रचा उपलब्ध उतना हो नहीं,
अवशिष्ट हित भी हम कहीं शायद अधूरे हों नहीं ! ॥४४॥

हमारा जीवन सुखी एवं चरित्रवान हो, इस दृष्टि से वे आदर्श तीर्थों की दृढ़ स्थापना कर गये, शास्त्र, निगम, श्रुतियों की रचना कर गये और सब प्रकार के ग्रन्थों में नियमोपनियम, यम लिख गये। आज चाहे उनका लिखा हुआ साहित्य पूरा न प्राप्त होता हो; लेकिन जितना प्राप्त है, उसके लिये भी हम पर्याप्त सम्भवतः नहीं है।

उन पूर्वजों की शीलसीमा कौन कवि पति गा सका ?
गुण गान सागरकूल का भी दर्श भर नहिं पा सका।
वे थे विरति, रतिवान हम, निर्धूम वे, हम धूम हैं;
वे याग थे, हम रोग हैं, वे थे सुमन, हम सूम हैं ॥४५॥

ऐसा कौन कवीश्वर हुआ है अथवा है जो उन पूर्वजों का महत्व पूर्ण सख्या में आँक सका हो। उनके कीर्तन के सागर में स्नान करना अथवा उसको पार करना तो दूर रहा ऐसा कौन है जो उनके कीर्तन सागर का तट भी भली भाँति निहार सका

हो। हमारे म और उन पूर्वजों में इतना अन्तर है जितना किसी अनुरक्त में और विरक्त में, धूम्रहीन अग्नि में और धूम्र-सहित अग्नि में, राग में और योग में, सहृदय दयालु पुरुष में और कृपण में अन्तर होता है।

था चक्रवर्ती राज्य उनका, राज्य वित्तागार था;
अमरेश, व्यंतर, देव से जिनका अधिक परिवार था।
ऐसे मनुज वर आज तक हममें करोड़ों हो गये;
जो दान, संयम, शील के शुचि बीज जग में बो गये ॥४५॥

उनका राज्य सार्वभौम था, धन से परम पूर्ण था। उनका परिवार देव, व्यंतर और इन्द्र के परिवारों से भी अधिक था। ऐसे एक नहीं असंख्य महापुरुष भारतवर्ष में हो चुके हैं जो संसार को दान, शील और संयम का पाठ पढ़ा गये। अर्थात् इतने वैभव का अधीश्वर हो कर भी पुरुष महादानी, जितेन्द्रीय, निराह हो सकता है यह आदर्श वे दुनियाँ के समक्ष रख गये।

कुछ आदर्श महापुरुष

जो आदि जिनवर, आदि विभुवर, आदि नरवरराज थे,
जो आदि योगी, आदि भोगी, सुर-असुर अधिराज थे,
जो आदि नायक, विधि विधायक प्रथम जग में हो गये;
श्रुति शास्त्र कहते नाभिसुत को वर्ष अगणित हो गये ॥४७॥

भगवान् ऋषभ देव इस अवसर्पिणी काल की आदि में हुये प्रथम जिनेश्वर हैं, प्रथम परमात्मा हैं, प्रथम राजा हैं,

प्रथम योगी हैं, प्रथम वैभवपति हैं, देव एवं दानवों के प्रथम अधीश्वर हैं, जगत् के प्रथम मार्ग दर्शक हैं; विधि विधान अर्थात् शास्त्र, कला कौशल, सभ्यता, व्यवहार, भूमिकर्म, असिकर्म, मसिकर्म की स्थापना और शिक्षण करने वाले हैं। हमारे साहित्य से पता लगता है कि उनको हुये अनंत वर्ष हो चुके हैं। इतनी प्राचीन हमारी सभ्यता है—तात्पर्य यह है।

क्या आयु, संयम, शील में इनका कहीं उपमान है?
किसको मिला आध्यात्म में इनके बराबर मान है?
हैं कौन विभुवर अजित, 'अर' से विश्वजेता हो गये?
क्या 'शान्त', 'संभवनाथ' से जग के विजेता हो गये ॥४८॥

आयु में जितेन्द्रीयता में, शील व्रत में भगवान् ऋषभ देव, की समता करने वाला कोई नहीं हुआ है। किसने इनके बराबर आत्मशक्ति की चरमता प्राप्त की है? भगवान अरनाथ और अजितनाथ, शांतिनाथ, संभवनाथ ये सब चक्रवर्ती सम्राट थे। सारे विश्व को इन्होंने जय किया था। विश्व का ऐसा जय किसने किया है?

'द्वादश' हमारे चक्रपाणि[1] धर्मध्वज लहरा गये;
नवदेव[2], 'नवप्रतिवासुसुर[3]' कौशल महा दिखला गये
उस मोक्षगेता भूप का बस भरतचक्री नाम था;
जिस पर पड़ा इस देश का भारत अनन्वय नाम था ॥४९॥

धर्म का प्रचार एवं सम्पूर्ण विश्व को जय करने वाले १२ चक्रवर्ती सम्राट, नव बलदेव, नव वासुदेव, नवप्रति वासुदेव

चक्रवर्त्ती

सं०	नाम	माता	पिता	नगरी	वंश	आयु	शरीर मान	गति
१	भरत	सुमंगला	ऋषभदेव	विनीता	इक्ष्वकुवंश	८४००००० पूर्व	५०० धनुष	मोक्ष
२	सगर	यशमत	सुमित्र	अयोध्या	,,	७२००००० ,,	४५० ,,	,,
३	मघवा	भद्रा देवी	समुद्र विजय	सावत्थी	,,	५०००० वर्ष	४२॥ ,,	तृतीय देवलोक
४	सनत्कुमार	महदेवी	अश्वसेन	हस्तिनपुर	,,	३००००० ,,	४१॥ ,,	,,
५	शान्ति	अचिरा	विश्वसेन	गजपुर	,,	१००००० ,,	४० ,,	मोक्ष
६	कुंथु	श्रीराणी	शूर राजा	,,	,,	६५००० ,,	३५ ,,	,,
७	अर	श्रीदेवा	सुदर्शन	,,	,,	८४००० ,,	३० ,,	,,
८	सूभूम	तारा	कृतवार्य्य	हस्तिनापुर	,,	६००० ,,	२८ ,,	सप्तम नरक
९	महापद्म	ज्वाला	पद्मोत्तर	वाणारसी	,,	३०००० ,,	२० ,,	मोक्ष
१०	हरिषेन	मेरादेवी	महाहरि	कपिलपुर	,,	१०००० ,,	१५ ,,	,,
११	जयनाग	वप्रादेवी	विजय	राजगृह	,,	३००० ,,	१२ ,,	,,
१२	ब्रह्मदत्त	चुल्लनी	ब्रह्मराज	कंपिलपुर	,,	७०० ,,	[illegible] ,,	सप्तम नरक

वासुदेव

सं०	नाम	माता	पिता	नगर	आयु	शरीर मान	गति
१	त्रिपृष्ठ	मृगावती	प्रजापति	पोतनपुर	८४००००० वर्ष	८० धनुष	७ पृथ्वी लोक
२	द्विपृष्ठ	पद्मादेवी	ब्रह्मराजा	द्वारका	७२००००० ,,	७० ,,	६ ,,
३	स्वयंभू	पृथ्वी देवी	भद्रराजा	,,	६०००००० ,,	६० ,,	६ ,,
४	पुरुषोत्तम	सीता देवी	सोमराजा	,,	३०००००० ,,	५० ,,	६ ,,
५	पुरुषसिंह	अमृता देवी	शिवराजा	अंबपुर	१०००००० ,,	४५ ,,	६ ,,
६	पुरुषपुंडरीक	लक्ष्मी देवी	महाशिर	चक्रपुरी	६५००० ,,	२९ ,,	६ ,,
७	दत्तनामा	शेषवती	अग्निसिंह	कासीनगर	५५००० ,,	२६ ,,	५ ,,
८	लक्ष्मण	सुमित्रा	दशरथ	अयोध्या	१२००० ,,	१६ ,,	४ ,,
९	श्रीकृष्ण	देवकी	वसुदेव	मथुरा	१००० ,,	१० ,,	३ ,,

बलदेव

सं०	नाम	माता	पिता	नगर	आयु	शरीर मान	गति	प्रति वासुदेव
१	अचल	भद्रा देवी	प्रजापति	पोतनपुर	८५०००००वर्ष	८० धनुष	मोक्ष	अश्वगिरि
२	विजय	सुभद्रा	ब्रह्मराज	द्वारका	७५००००० ,,	७० ,,	,,	तारक
३	भद्र	सुप्रभा	भद्रराजा	,,	६५००००० ,,	६० ,,	,,	मेरक
४	सुप्रभ	सुदर्शना	सोमराजा	,,	५५००००० ,,	५० ,,	,,	मधु
५	सुदर्शन	विजया	शिवराजा	अंबपुर	१७००००० ,,	४५ ,,	,,	निश्कुम्भ
६	आनन्द	विजयंता	महासिंह	चक्रपुरी	८५००० ,,	२९ ,,	,,	बली
७	नन्दन	जयंती	अग्निसिंह	कामनगर	५०००० ,,	२६ ,,	,,	प्रह्लाद
८	रामचन्द्र	अपराजिता	दशरथ	अयोध्या	१५००० ,,	१६ ,,	,,	रावण
९	बलभद्र	रोहिणी	वसुदेव	मथुरा	१२००० ,,	१० ,,	ब्रह्मदेवलोक	जरासिंघ

अद्भुत कर्मवीर हो चुके हैं। राजर्षि भरत चक्रवर्ती को कौन नहीं जानता। आर्यावर्त का नाम भारत वर्ष उसी भरत चक्रवर्ती के नाम के पीछे पड़ा है।

> अरिहंत जिन पर षष्ट-अष्टादश हमारे हो गये,
> तप, तेज, बल, शुचि, शील की वे सीम अंतिम हो गये।
> किन्नर, सुरासुर, मनुज के वे लोकलोकाधीप थे;
> निरपेक्ष थे, निर्लेप थे, परमात्म चक्राधीप थे॥ ५०॥

हमारे २४ चौबीस तीर्थंकर हो चुके हैं। तप, तेज, बल, शुद्धता, व्रत की वे अन्तिम सीमा थे। देवता, राक्षस, मनुष्य, किन्नर, लोक और अलोकों के वे अधीश्वर थे। उन्हें किसी के बल, सहाय की अपेक्षा नहीं थी। वे स्वतंत्र थे निर्मोह थे, महात्मा थे और सुदर्शनचक्र के धारण करने वाले महापराक्रमी पुरुष थे।

> सब राजकुल उत्पन्न थे, सब सार्वभौमिक भूप थे;
> नरराज थे नररूप में अखिलेश के सब रूप थे।
> साम्राज्य इनका सुखद था, दुख, शोक, चिन्ता थी नहीं,
> मिथ्या-अहिंसामय कहीं भी ठौर मिलती थी नहीं॥ ५१॥

ये चौबीस ही तीर्थंकर राजाओं के पुत्र थे, चक्रवर्ती सम्राट थे, पुरुषोत्तम थे, मनुष्य के रूप में ईश्वर थे। इनका राज्यकाल सुखदायी था कोई शोक, चिन्ता, संताप नहीं था। इनके साम्राज्य में ऐसा कोई स्थान नहीं था जहाँ हिंसा और असत्याचरण का लेश मात्र भी भाव था।

तीर्थंकर

स०	नाम	पिता	माता	नगर	लंछन	शरीर वर्ण	शरीर मान	आयु
१	ऋषभदेव	नाभिराजा	मरुदेवा	अयोध्या	वृषभ	स्वर्ण	५०० धनुष	८४ लक्ष पूर्व
२	अजितनाथ	जितशत्रु	विजया	,,	हस्ति	,,	४५० ,,	७२ ,,
३	सम्भवनाथ	जितारी	सेनाराणी	श्रावस्ती	अश्व	,,	४०० ,,	६० ,,
४	अभिनन्दन	संवर राजा	सिद्धार्था	अयोध्या	कपि	,,	३५० ,,	५० ,,
५	सुमतिनाथ	मेघभूप	सुमंगला	,,	क्रौंच	,,	३०० ,,	४० ,,
६	पद्मप्रभ	श्रीधर	सामा	कौशाम्बी	पद्म	रक्त	२५० ,,	३० ,,
७	सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	काशी	स्वस्तिक	स्वर्ण	२०० ,,	२० ,,
८	चन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	चन्द्रपुरी	चन्द्र	श्वेत	१५० ,,	१० ,,
९	सुविधिनाथ	सुग्रीव	रामा	काकन्दी	मकर	,,	१०० ,,	२ ,,
१०	शीतलनाथ	दृढ़रथ	नन्दा	भद्दिलपुर	श्रीवत्स	स्वर्ण	९० ,,	१ ,,
११	श्रेयांसनाथ	विष्णुनृप	विष्णुमाता	सिंहपुर	गेंडक	,,	८० ,,	८४ लक्ष वर्ष

१२	वासुपूज्य	वसुराज्य	जया	चम्पा	महिष	रक्त	७० धनुष	७२ लक्ष वर्ष
१३	विमलनाथ	कृतवर्मा	श्यामा	कांपिल्यपुर	सूकर	स्वर्ण	६० ,,	६० ,,
१४	अनंतनाथ	सिंहसेन	सुयशा	अयोध्या	श्येन	,,	५० ,,	३० ,,
१५	धर्मनाथ	भानू	सुव्रता	रत्नपुर	वज्र	,,	४५ ,,	१० ,,
१६	शान्तिनाथ	विश्वसेन	अचिरा	हस्तिनापुर	मृग	,,	४० ,,	१ ,,
१७	कुंथुनाथ	सुरराजा	श्रीदेवा	,,	मेष	,,	३५ ,,	९५००० वर्ष
१८	अरनाथ	सुदर्शन	देवी	,,	नन्द्यावर्त	,,	३० ,,	८४००० ,,
१९	मल्लिनाथ	कुम्भ नृप	प्रभावती	मिथिला	कुम्भ	नील	२५ ,,	५५००० ,,
२०	मुनिसुव्रत	सुमित्र	पद्मावती	राजगृह	कच्छप	कृष्ण	२० ,,	३०००० ,,
२१	नमिनाथ	विजय	वप्रा	मिथिला	नीलकमल	स्वर्ण	१५ ,,	१०००० ,,
२२	नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवा	शौरीपुर	शंख	कृष्ण	१० ,,	१००० ,,
२३	पार्श्वनाथ	अश्वसेन	वामा	नागपुर	सर्प	नील	९ हाथ	१०० ,,
२४	महावीर	सिद्धार्थ	त्रिशला	चत्रीकुण्ड	सिंह	स्वर्ण	७ ,,	७२ ,,

इनके अनुपम त्याग की नर कौन समता कर सका ?
साम्राज्य, सुख परिवार यों नर कौन तृणवत तज सका ?
उपसर्ग सहकर भी कभी दुर्भाव भाते थे नहीं;
इनके उरों में बन्धु-रिपु के भेद जगते थे नहीं ॥ ५२ ॥

ऐसा कौन अन्य पुरुष हुआ है जिसका त्याग इनके त्याग की समता कर सकता हो। इतने बड़े साम्राज्य को, अखंड वैभव को, विशाल परिवार को तृणवत छोड़ कर संन्यासी बने थे। अनेक असुरों एवं दुष्टजनों के द्वारा संतप्त, दुःखी होकर भी इन्होंने कभी सताने वाले के प्रति दुर्भावनायें नहीं की। इनके हृदयों के निकट भ्राता और शत्रु का अंतर नहीं था। भ्राता और शत्रु इनकी दृष्टि में एक समान थे।

वे शान्ति में विग्रह कभी उत्पन्न करते थे नहीं;
क्रिमि, कीट का भी स्वार्थवश अपकार करते थे नहीं।
धन-धान्य, वैभव, राज्य से कुछ भी न उनको लोभ था;
आत्मार्थ तजते विश्व को होता न उनको क्षोभ था ॥ ५३ ॥

वे स्वार्थ के पीछे जगत में खलबली नहीं मचाते थे। यहाँ तक की स्वार्थ के वशीभूत होकर उन्होंने कभी कीट पतङ्गों को भी दुःख नहीं दिया। धन, धान्य, ऐश्वर्य और साम्राज्य से उनको अंशमात्र भी मोह-ममता नहीं थी। अपनी और दूसरों की आत्माओं के कल्याण के लिये वे इस विश्व के साम्राज्य को छोड़ते हुये किंचित मात्र भी विलंब नहीं करते थे।

स्वच्छंद थे, स्वाधीन थे, निर्मोह थे, निष्काम थे;
गतराग थे, गतद्वेष थे, शुचि शील-संयम धाम थे।
भगवान् के भगवान् थे, वे नाथ के भी नाथ थे;
तारण-तरन थे, सिद्ध थे, सर्वज्ञ थे, सुरनाथ थे ॥५४॥

उन्हें कोई प्रपंच नहीं था, वे किसी के आधीन न थे, मोहरहित थे, जितेन्द्राय थे, विरक्त थे, वीत राग थे, शील और संयम के भण्डार थे, महान् उच्चकोटि के वैभवपति थे। राजाओं के राजा थे, भवसागर को स्वयं पार करने में समर्थ थे और दूसरों को भी तारने वाले थे, सिद्ध थे, सब कुछ जानने वाले थे, देवों के अधीश्वर थे।

सुत चीर कर भी मोरध्वज ने धर्म का पालन किया;
बुभुक्षित शाली भद्र ने मुनिराज को भोजन दिया।
मेघरथ ने काटकर आमिष दिया, निज देह से;
आख्यान ऐसे नरवरों के गूँजते सुरगेह से ॥५५॥

वचनों के वशीभूत होकर राजा मयूरध्वज ने अपने पुत्र ताम्रध्वज को चीरकर ऋषि के सिंह को तृप्त किया। कई दिनों के भूखे सुकुमार शालिभद्र आये हुये मुनिराज को बड़े प्रयत्नों एवं महदाभिलाषा से पकवाई हुई खीर का दान देकर आप क्षुधित ही रहे और अन्त में पंचत्वगति को प्राप्त हुए। महाराजा मेघरथ ने शरण में आये हुए कपोत की बाज से रक्षा करने की भावना से कपोत के तौल के बराबर अपनी देह से माँस काट कर देना स्वीकृत किया और जब तौल किसी प्रकार

भी बराबर नहीं हुआ तो आप स्वयं ही तुलापर चढ़ गये। ऐसे महापुरुषों की कहानियें इन्द्रलोक में घर घर कही जाती है।

हरिश्चन्द्र ने था आयु में मिथ्या कभी बोला नहीं;
चण्डाल के घर बिक गये, पर सत्यव्रत तोड़ा नहीं।
धर्मार्थ तजते प्राण लगता निमिष था जिनको नहीं;
ऐसे मनुज कोई बतावे मिल सके यदि जो कहीं ॥२६॥

सत्यव्रती महाराजा हरिश्चन्द्र ने कभी असत्य नहीं बोला। चण्डाल के घर बिक गये, पत्नी पुत्र से अलग हो गये; परन्तु, सत्य को नहीं छोड़ा। धर्म के लिये प्राणों का विसर्जन करना इन महापुरुषों के लिये साधारण खेल था। कोई भी सज्जन ऐसे महाव्रती पुरुष बतलाये कि ऐसे महापुरुष किस जनपद में हुये हैं?

नरसिंह थे, नरश्रेष्ठ थे, नरदीप थे, नरनाथ थे;
भूनाथ थे, सुरनाथ थे, रघुकुलमणि रघुनाथ थे;
वनवास वत्सर चार. दश का राज्य तज किसने किया?
आज्ञा पिता की मान यों वन में शिविर किसने दिया ॥२७॥

रघुवंश में मणी के समान रामचन्द्र पुरुषों में सिंह के समान बली. पुरुषोत्तम, मनुष्यों में दीपक, मनुष्यों के स्वामी, पृथ्वीपति, देवों के भी स्वामी थे। ऐसा कौन संसार के अन्य जनपदों में महा पुरुष हुआ है जिसने इनके समान पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष वन में वास किया हो।

बलराम, लक्ष्मण, भरत, अर्जुन, भीम भ्राता हो गये।
न्यायी, युधिष्ठिर, राम से भी ज्येष्ठ भ्राता होगये।
है कौन ऐसा देश जो उपमान इनका दे सके?
रथ धर्म के सद् तेज से क्या बात जो भू छू सके? ॥५८॥

एक नहीं, अनेक महापुरुष हो चुके हैं। श्री कृष्ण के भाई बलराम, रामचन्द्र का भाई लक्ष्मण, भरत और भरत चक्रवर्ती अर्जुन और भीम जैसे आदर्शभ्राता, रामचन्द्र और युधिष्ठिर जैसे न्यायशील ज्येष्ठबंधु हो चुके हैं। ऐसा कौन जनपद है जो इनकी बराबरी का एक भी पुरुष दिखला सकता हो। युधिष्ठिर के धर्म तेज के प्रताप से संकट भूमि से एक बालिस्त ऊपर ही उठा हुआ रहता था।

दे दान कंचन का प्रथम जलपान करना चाहिये;
आये हुये का द्वार पर सत्कार करना चाहिये।
नृपकर्ण राजर्षी बली से वीर दानी मर गये;
पर प्राण रहते याचकों की तृप्ति पूरी कर गये ॥५९॥

राजा कर्ण प्रतिदिन कंचन का दान देकर जल पान करता था। राजा बली के द्वार से कोई याचक निराश नहीं लौटता था। मरते समय तक भी इन महा दानवीर श्रेष्ठ पुरुषों ने याचकों की अभिलाषायें पूर्ण की।

गोपाल, यदुपति, नंदनंदन, गोपवल्लभ कृष्ण वा,
राधारमण, मोहन, मधुसुदन, द्वारका पति विष्णु वा,
गिरिधर, मुरारी, चक्रपाणी, एक के सब नाम हैं;
मुरलीपति वासुदेव के बस कर्म भी अभिराम हैं ॥६०॥

भगवान् श्री कृष्ण के जितने भी नाम हैं, वे मनगढ़ंत या इच्छा से रखे हुये नहीं हैं। प्रत्येक नाम किसी घटना, रहस्य या अर्थ को लिये हुए हैं। गौओं के पालक होने से गोपाल, यदुकुल में श्रेष्ठ होने से यदुपति, नंद अहीर को पिता सदृश माना अतः नंदनंदन, ग्वालबालों के सखा होने से गोपवल्लभ-राधा के स्वामी होने से राधारमण, प्रजाजनों को प्रिय एवं मनोहर होने से मोहन, मधुनाम के राक्षस का संहार करने से मधुसुदन, द्वारका के अधीश्वर होने से द्वारकापति, भगवान् विष्णु के समान संसार में दुष्टों का दमन करनेसे विष्णु, पर्वत को उठा कर द्वारका वासियों की इन्द्रप्रकोप से रक्षा करने से गिरिधर, मुरा नाम के दैत्य का संहार करने से मुरारी, सुदर्शन चक्र के धारी होने से चक्रपाणी कहलाये। मुरली के सदा धारण करने वाले और पृथ्वी के देवता सदृश श्री कृष्ण के कर्म बड़े ही अद्भुत थे।

लवकुश[1] तथा अभिमन्यु[2] से थे वीर वर बालक यहाँ;
रणशौर्य लख जिनका चकित थे देव, सुरपालक यहाँ,

---

१ लवकुश—वे भगवान् रामचन्द्र के पुत्र थे। अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर स्वयं रामचन्द्र को परास्त करके जो इन दोनों भाइयों ने शौर्य दिखाया वह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

२—अभिमन्यु—यह अर्जुन का पुत्र था। इसके पराक्रम को कौन मनुष्य ऐसा है जो नहीं जानता है। कुरुक्षेत्र के महासमर में इस षोडश वर्षीय कुमार ने सप्त महारथियों के भी दाँत खट्टे कर दिये थे। फिर अन्त में यह अधर्म नीति से मारा गया था।
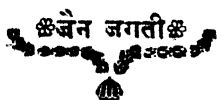
सुकुमार नेमिनाथ[1] का बल, आत्मबल भूलें नहीं,
अन्यत्र ऐसे वीर बालक आज तक जन्में नहीं ॥६१॥

रामचन्द्र के पुत्र लव और कुश, अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के समान यहाँ के वीर बालक थे। देवता और इन्द्र भी जिनको महाभयंकर रण करते हुये देख कर आश्चर्यान्वित हो जाते थे। भगवान् नेमिनाथ का शारीरिक बल और आध्यात्मिक बल कैसे भुला जा सकता है ? ऐसे बालक कहाँ पैदा हुये हैं ?

गणितज्ञ कितने हैं यहाँ ? हों सामने आकर खड़े;
गिनिये दयाकर 'वीर'[2] में कितने कड़े संकट पड़े ?

१—भगवान् नेमिनाथ—ये समुद्रविजय के पुत्र और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। ये २२ वें तीर्थंकर थे। जब आप अश्वारूढ़ होकर उग्रसेन की पुत्री राजीमती से पाणी-पीड़न करने के लिये श्वशुर-गृह को तोरण-वध हित जा रहे थे कि आपने बीच में से ही अश्व को पशु-गृह में अगणित पशुओं को बन्धी देखकर और यह जानकर कि इन्हीं पशुओं के आमिष का वरातिथियों को भोजन दिया जायगा, मोड़ दिया और आप सीधे गिरनार पर्वत पर चढ़ गये और संसार छोड़ कर दीक्षा ग्रहण कर ली। ऐसे उदाहरण संसार में बहुत कम हैं। विशेष वर्णन के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग ८ वाँ।

२—भगवान महावीर—ये हमारे अन्तिम तीर्थंकर हैं। जितने उपसर्ग भगवान वीर ने सहन किये, उतने संसार में शायद ही किसी महात्मा ने सहन किये हों। चण्ड कोशिक सर्प ने इन्हें कायोत्सर्ग में काटा, कायोत्सर्ग में ही आप के कानों में ग्वालों ने तीक्ष्ण कीलें ठोके;

आदर्श ऐसे एक क्या लाखों तुम्हें मिल जायँगे;
जग शान्तिपूर्वक ढ़ूढ़ लो; वे तो अनन्वय पायँगे ॥६२॥

गणित के ज्ञाता कृपा करके गिनकर बतलावें कि भगवान् महावीर में कितने महान संकट पड़े हैं। महावीर जैसे तो एक नहीं, अनेक महापुरुष हो चुके हैं। आप स्थिरता एवं शान्ति से संसार भर के महापुरुषों का मूल्यांकन अगर करेंगे तो हमारे ये महापुरुष आपको अद्वितीय ही प्रकट होंगे।

पर हाय! फूटे भाग हैं, इतिहास पूरा है नहीं;
श्री पार्श्वप्रभु के पूर्व की तो झलक पड़ती है कहीं।
हा! एक सरिता की कहो ये शाख दो कैसे हुईं?
ये जैन, वैदिक निम्न गायें किस तरह कैसे हुईं? ॥६३॥

परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि भगवान् पार्श्वनाथ के काल से पूर्व का इतिहास अंधकार में है। आर्यधर्म की जैन और वैदिक, ये संप्रदाय कैसे और कब उत्पन्न हुईं कोई पता ही नहीं लगता।

'अंगार सिर पर धर दिये, था मोह प्राणों का नहीं'
'थे प्राण तक भी दे दिये, यव भेद पर खोला नहीं'।
'जलधार में फेंके गये', हा! हा! त्वचा कर्षण हुआ';
उपसर्ग ऐसे हो सहे वह कौन जग में नर हुआ? ॥६४॥

श्री कृष्ण के भ्राता बालक गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर शोमशर्मा ने धधकते अंगारे रक्खे, मेतार्यमुनि ने प्राण देकर

अनार्य देश में असंख्य आपको कष्ट सहन करने पड़े, दुष्ट गोशाला ने आपको सर्वायुभर दुःख दिया। उपसर्गों का नाम मात्र गिनाने के लिये भी एक दस्ता कागज चाहिए। देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १० वाँ।

क्रौंच पक्षी की रक्षा की। अणिका पुत्र को नाविक ने बहते प्रवाह में फेंक दिया। खन्दक ऋषि की त्वचा उतारी गई। परन्तु धन्य है इन महापुरुषों को कि अपने पीड़कों के प्रति किंचित मात्र दुर्भाव न धर कर प्राणों का विसर्जन किया। बतलाइये, इतने बड़े बड़े कष्ट संसार में किसने सहे और फिर इतना कौन शान्त रहा ?

हम क्या सुदर्शन श्रेष्ठि की कुछ शीलसीमा कह सकें ?
उस शूल के मधु पुष्प क्या होये बिना थे रह सके ?
वे पुंश्चली के गेह में चौमास भर भी रह गये;
हैं कौन ऐसे जो कि यों पड़ कर अनल में बच गये ? ॥६५॥

चंपापति दधि वाहन की राणी अभया की कामेच्छा शान्त न करने से उस दुष्टा ने प्रपंच रच कर निरपराध सुदर्शन श्रेष्ठि को शूली पर चढ़वा दिया; परन्तु शील के प्रताप से शूली पुष्पासन बन गया। नवें नन्द के मंत्री शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र ने सन्यास लेकर कोसा गणिका के घर में चतुर्मास किया और शुद्ध चरित्र का परिचय दिया। वेश्या के यहाँ यों रह कर बतलाये, कौन पुरुष शीलशाली रह सकता है ?

हम क्या कहें ? जग कह रहा, थे देव भी हम-से नहीं;
इस शील दुर्गम वर्त्म में सुर भी न थे हम-से कहीं।
परमेष्ठि[1] मंगलमंत्र को नर कौन नहिं है जानता ?
तीर्थंकरों को वीतभव अरिहंत जग है मानता ॥६६॥

---

१ नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो

एक समय था देवतागण भी हमारी समता नहीं कर सकते थे'। शील के पालन करने में वे हमारे बराबर कभी भी नहीं थे ! नमस्कार मंत्र" को कौन नहीं जानता ? संसार चौबीस ही तीर्थंकरों का उन्हें अरिहंत और वीतराग कह कर मान करता है ।

गुणगान उनके आज तक कोई नहीं है गा सका;
कहकर अनंतातिशय बस अवकाश कविवर पा सका ।
अरिहंत थे, वे सिद्ध थे, आचार्य थे वे धर्म के;
व महा महोपाध्याय थे, मुनिवर्य्य थे मनमर्म के ॥६७॥

उन हमारे महापुरुषों का वर्णन जो तीर्थंकर थे, सिद्ध थे, आचार्य थे, उपाध्याय थे एवं साधु थे आज तक कोई महाकवि पूरा नहीं कर सका । सभी ने थक कर अंत में उन्हें अनंतातिशय अर्थात् अनंत गुणधारी कह कर वर्णनों को समाप्त किया ।

हम गर्व जितना भी करें, उतना ही इन पर योग्य है;
हम ही नहीं हैं कह रहे, सब कह रहे जन विज्ञ हैं ।
वे मन, वचन औ कर्म से हर भाँति पावन हो गये;
मन के धनी, मनदेव सच्चे वे अनन्वय हो गये ॥६८॥

उन महापुरुषों पर हम जितना भी घमंड करें उतना ही योग्य कहा जायगा । हम ही उनकी प्रशंसा नहीं करते, संसार के सर्व विज्ञजन उनकी मुक्त कंठ से स्तुति करते हैं । वे मन, बचन और कर्म तीनों से पवित्र थे, वे अपने मन के शासक थे

उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं ऐसो पंच नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलम् ।

और हमारे मनों के सच्चे देवता थे। संसार में वे महापुरुष अद्भुत हो गये हैं।

हे बन्धुओ! उन पूर्वजों का मान करना सीख लो;
गुण, भाव उनका देखकर अनुकार करना सीख लो।
ये धर्म की, शिवकर्म की थीं ज्योतिधर प्रतिमूर्तियें;
उनके उरों में थीं अहिंसा की तरंगित उर्मियें॥ ६९॥

हे भ्राताओ! हमारे ऐसे पुरुषोत्तम पूर्वजों का मान करना सीखो और उनके आदर्श चरित्रों को देखकर अपना जीवन आदर्श बनाओ। वे महापुरुष धर्म और सच्चे कर्म की प्रभामयी मूर्तियें थीं। उन पूर्वजों की आत्माओं में अहिंसा की भावनायें हिलोरें लेती थीं।

कैसे प्रसारक धर्म के वे धर्म केतन हो गये?
किनमें? कहाँ तुम ढूँढ़ते? वे रत्न तुम में हो गये।
वे त्याग के, वैराग्य के, आदर्श अनुपम रख गये;
जग में सर्वत्र ही निस्सार जग में सार के कण रख गये॥७०॥

वे तुम्हारे में ही धर्म के घर महापुरुष धर्म के अद्भुत प्रचारक हो गये। फिर तुम इन महापुरुषों को कहाँ और किन पुरुषों में शोध रहे हो। वे त्याग और वैराग्य के अद्वितीय आदर्श रख कर इस सारहीन जगत को सारमय बना गये।

कौत्रिम्य उनमें आज का-सा नाम को भी था नहीं;
दुष्भाव यों रिपु-बन्धु-का उनके उरों में था नहीं।
आध्यात्मसर के ये सभी नित पद्म रहते थे खिले;
सब के लिये उनके हृदय के द्वार रहते थे खुले॥७१॥

उन पूर्वज महापुरुषों में कुछ भी दिखावा, जैसा आज हम रखते हैं, नहीं था। उनकी आत्मायें शत्रु एवं मित्र के भेद नहीं समझती थीं। वे सभी एक ही आध्यात्मसरोवर की आत्मायें रूपी कमल थे। जो सर्वदा प्रफुल्लित रहते थे। उनके हृदय रंक, राव सभी का स्वागत करने के लिये प्रति क्षण खुले हुये ही थे।

अरिहंत—

विचरण जहाँ उनका हुआ, सुख-शान्ति-रस सरसा गया,
योजन सवासौ प्रांत में दुख मूल जड़ से उड़ गया।
दश चार लोकालोक के सुर, इन्द्र उनको पूजते;
पैंतीस गुणयुत वचन में अरिहंत के स्वर कूंजते ॥७२॥

जिस स्थान पर तीर्थंकर भगवान का पदार्पण होता था, उस स्थान के सवासौ क्षेत्र में दुःख, महामारी आदि सर्व आधि, व्याधि नष्ट हो जाती थीं। सर्वत्र सुख, शान्ति और आनन्द वर्पने लग जाता था चौदह राजलोकों के इन्द्र और देवता उनकी सेवा में प्रस्तुत रहते थे और समवशरण के समय जब भगवान देसना देते तो उनकी वाणी में पैंतीस गुण होते और वह मनुष्य, राक्षस, पशु, पक्षी सब चारों को अपनी जिह्वा में सुनाई पड़ती थी।

सिद्ध—

ये अष्ट कर्मों का भयङ्कर काट दल आगे बढ़े,
ये अष्टगुणधारी हमारे मोक्षपद पर थे चढ़े।

अपवर्ग से वे पुरुषवर क्या लौट कर फिर आयेंगे;
उजड़े हुये क्या देश को आबाद फिर कर जायेंगे ॥७३॥

सिद्ध भगवान के अष्ट गुण होते हैं। वे अष्ट दुष्कर्मों का क्षय करके मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं। ऐसे हमारे सिद्ध पुरुषोत्तम क्या मोक्ष से फिर आवेंगे और इस पतित हुये भारतवर्ष को फिर से उन्नत बना जावेंगे।

आचार्य—

पंचेन्द्रियें थीं हाथ में, त्रय गुप्तिमय व्यवहार थे,
क्रोधादि के सब थे विजेता, शीलयुत आचार थे।
व्यवहार, पंचाचार उनके, समिति उनकी देखलो,
छत्तीसगुण उनकी क्रियामें वर्वके तुम देखलो ॥ ७४ ॥

आचार्य महाराज के छत्तीसगुण होते हैं। पंचेन्द्रियों का जप करना, तीन गुप्ति (मन वचन, काया) का धारण करना नव प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करना, चार कषाय (काम, क्रोध, लोभ, मोह) को जीतना, पंच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, दत्त दान, शील अपरिग्रह); पंच आचार और पंच समितियों का यथार्थ पालन करना। वे आचार्य इन छत्तीस गुणों के यर्थाथ धारक होते थे।

उपाध्याय-साधु—

गंभीरता, दृढ़ता, मधुरता, निष्कपटता, शोर्य्यता,
शुचि शीलता, मृदुता सदयता, सत्यता ध्रुव धैर्यता।
कहाँ तक गिनाऊँ आपको मैं साधुजन आदर्शता,
कैसे भरूँ मैं वर्ण में अर्णव बतादो तुम पता ॥ ७५ ॥

उपाध्याय के गुण और साधु के २७ सत्ताइस गुण होते हैं। विचारों में गंभीरता, कार्य में दृढ़ता, वाणी में मधुरता, आचार में निष्कपटता और धर्म में वीरता, व्यवहार में शीलता व्रत में सहृयता, वचनों में सत्यता उपसर्गों में अखण्ड धैर्यता और पीड़कों केप्रति मृदुता आदि साधुएवं उपाचार्य के आदर्श गुणों की चाहिए वैसी गणना कहाँ तक करूँ ? अक्षरों में महासागर कैसे भराजाय यह आपही बतलाइये।

आदर्श आचार्य

आदर्श थे आचार्य ऐसे, वे दिवस भी एक थे?
हम थे अखिल, आचार्य सुर नरवंदिता अखिलेश थे॥
श्री आर्यखपुटाचार्य कैसे धर्म के दिग्पाल थे?
नत चैत्य गौतमबुद्ध का है कह रहा-सुरपाल थे॥७६॥

इस प्रकरण में जैसे आचार्यों का वर्णन दिया गया है, वैसे आचार्य जिस समय में थे, वह समय बड़ा ही सौभाग्यशाली था। ईश्वर तुल्य हम उनका संमान करते थे। श्रीमद् खपुटाचार्य के आदेश पर भृगुकच्छ में भगवान् गौतम की मूर्ति ने उन्हें झुककर वंदन किया था। उन्होंने बौद्ध विद्वान् बहुकर को परास्त कर जैन धर्म की ध्वजा फहराई थी।

गुरुवर स्वयंप्रभ[1] रत्नप्रभ[2] आचार्य कुल अपतंस हैं।
श्रीमालपुर, उपकेशपुर जिनके सुयशध्वजअंश हैं॥

[1] स्वयंप्रभसूरि--ये श्रुतज्ञान के धारी महा तेजस्वी आचार्य थे।

थे आर्य समिताचार्य जिनका नाम अब भी ख्यात है।
जिनको अचल, सर, नद नहीं होते न बाधक-ज्ञात है ॥७७॥

आचार्यवर्ग में स्वयंप्रभसुरि एवं रत्नप्रभसूरि बड़े तेजस्वी आचार्य हो गये हैं। श्री माल पुर एवं उपकेशपुर (ओसिया) उनकी महानता का प्रमाण दे रहे हैं वज्रस्वामी के मामा समिताचार्य का प्रताप इतना तीव्र था कि जिस मार्ग में उनका विचरण होता, उस मार्ग के जल पूर्ण सरोवर, नदियें, नद और अगम्य पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे।

श्री वज्रसेनाचार्य[1], मुनिवर रत्न[2], कोविद चन्द्र से।
आदर्श थे मुनिवर यहाँ राजर्षि प्रसन्न चन्द्र से॥

आपने लाखों हिंसकों को अहिंसक बनाया था। मरुप्रान्त के अन्तरगत आया हुआ श्रीमालपुर एक समय परमहिंसक था आप श्री ने ही उस समस्त नगर को तथा वहाँ के राजा जयसेन को जैन बनाया था। श्रीमाल (एक जैन जाति) श्रीमालपुर से ही जैन बने थे। प्राग्वट वंश को भी आपने जैन बनाया था, जो अब जैन पोरवाल जाति के नाम से विद्यमान है।

रत्नप्रभसूरि—आपने मरुधर प्रान्त अन्तर्गत आई हुई ओसिया नगरी के निवासियों को जिसका पूर्व नाम उपकेशपुर था जैन बनाया था। तभी से ओसिया नगरी के निवासी ओसवाल कहलाते हैं।

१—वज्रसेनाचार्य—ये परम तेजस्वी आचार्य थे। इनके समय में बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा था। आपने सोपा-

ये थे चमकते चन्द्रवत आर्यजगती व्योम में।
जाज्वल्यता का लास था जग था न तब मम तोम में ॥७८॥

श्री वज्रसेनाचार्य, रत्नशेखरसूरि से प्रतापी महापुरुष, संघयणी आदि प्रसिद्ध ग्रंथों के कर्ता चन्द्रसूरि से राज्य को त्याग कर दीक्षा लेने वाले विद्वान् प्रसन्नचन्द्र राजर्षि जैसे महान जब आर्यभूमि भारतवर्ष को सुशोभित करते थे, उस समय सर्वत्र आर्यावर्त्त में ज्ञान का प्रकाश था और अज्ञानता का ऐसा गहरा अंधकार न था।

पाखण्ड, मिथ्या, पाप का सकता न जम कुछ अंश था;
पापी, नराधम का त्वरिक उन्मूल होता वंश था।
नरभूप गर्दभ ने जहाँ दुष्भाव आर्या पर किया;
मुनिकालिकाचार्य ने कैसा वहाँ था प्रण किया ॥७९॥

उस काल में पाखण्ड, मिथ्या, पाप की जड़ जमने ही नहीं पाती थी। जो मनुष्य पापी, नीच प्रकृति के होते, उनकी जड़ ही उखाड़ दी जाती थी। सम्राट विक्रमादित्य के पिता

एक नगर के निवासी श्रेष्ठी जिनदत्त की स्त्री ईश्वरी को उसके घर आहार ग्रहण करते हुए कहा कि अब कल से सुकाल होगा और ऐसा ही हुआ।

२—रत्नशेखरसूरि—प्रबल जैन विद्वान थे। आपने श्री बाल-चरित तथा गुणस्थानकक्रमारोह नामक अनेक उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। बादशाह फिरोज़ तुगलक आपका बड़ा सम्मान करता था।
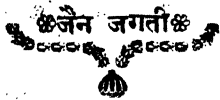
गर्दभिल्ल ने कामातुर होकर साध्वी सरस्वती को अंतःपुर में जा डाला। साध्वी सरस्वती के भाई कालिकाचार्य ने जब यह घटना सुनी तो उन्होंने तुरंत साधुवस्त्र त्याग कर मलेच्छों की एक विशाल सेना लेकर गर्दभिल्ल पर आक्रमण कर दिया। गर्दभिल्ल परास्त हुआ और उस साध्वी को मुक्त किया।

जिस काल इन्द्राचार्य, तिलकाचार्य, द्रोणाचार्य थे,
श्री मल्लवाद्याचार्य सूराचार्य, वीराचार्य थे;
मुनिवर जिनेश्वर जीवदेवाचार्य, दुर्गाचार्य थे;
उसकाल भारत आर्य था, इसके निवासी आर्य थे ॥८०॥

वह समय सचमुच पावन था, भारतवर्ष सचमुच आर्यावर्त्त था और भारतवासी भी सचमुच आर्य थे जिस समय 'योग-विधि' नामक अद्भुत ग्रंथ के कर्ता इन्द्राचार्य 'आवश्यक लघुवृत्ति' के कर्त्ता एवं दशवैकालिक सूत्र के टीकाकार तिलकाचार्य, ओघनिर्युक्ति के टीकाकार द्रोणाचार्य, 'जैन, रामायण' के कर्ता एव भृगुकच्छ में बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाले आचार्य मल्लवादी, महाराज भोज की विद्वद्मण्डली को दर्शनशास्त्र में परास्त करने वाले सूराचार्य, सिद्धराज जयसिंह की राजसभा में बौद्धाचार्यों को परास्त करनेवाले वीराचार्य, 'पंचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, लीलावती, कथारत्नकोष आदि अनेक ग्रंथों के कर्ता जिनेश्वर-सूरि, अपार रिद्धि सिद्धि को त्याग कर संन्यास लेने वाले दुर्गा-चार्य और अनेक विद्याओं के भंडार भी जीव देवाचार्य (जिन्होंने देहत्याग करते समय अपने शिष्यों को अपना शिर

चूर्ण करने की आज्ञा दी थी; क्योंकि उनको भय था कि कोई योगी उनका शिर लेकर उत्पात मचावेगा) थे।

श्रीमान् तुंगाचार्य ने पदबंध चौमालीस से—
खण्डित किया पदबंध, पाया मान मनुजाधीश से।
गुरु थे सुहस्ती आर्य को सम्राट संप्रति[1] मानते;
व समंत भद्राचार्य को थे कौन जो नहिं जानते ॥८१॥

श्रीमान् तुंगाचार्य को महाराजा भोज ने कारागार में डाल दिया था और चौमालीस कड़ियों की बेढ़ियें इनके पैरों में डाली गई थीं। एक पद की रचना पर इनके पैरों में पड़ी बेड़ियों की एक एक कड़ी टूट कर गिरती गई, इस प्रकार इन्होंने चौमालीस पदों की भक्ताम्बर स्तोत नाम की रचना कर मुक्ति प्राप्त की। त्रयकालज्ञ आर्य सुहस्ति को सम्राट सम्प्रति अपना गुरु मानते थे और अनेक विद्याओं के ज्ञाता, धूर्जटि शैवाचार्य को शास्त्राथ में परास्त करने वाले समंत भद्राचार्य का सर्वत्र भारत में सन्मान था।

१—सम्प्रति—सम्राट अशोक के प्रपौत्र थे। ये दृढ़ जैन-धर्मी थे। इन्होंने अपने शासन-काल में सवा लक्ष नूतन जिन मन्दिर बनवाये, सवा क्रोड़ नूतन जिनबिंब करवाये, तेरह सहस्र प्राचीन जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और सप्त शत दानशालायें बनवाईं। देखो 'सम्राट सम्प्रति' नामकी पुस्तक। आज भी सम्राट सम्प्रति के बनवाये हुए कितने ही मन्दिर, स्तूप हजारों संकट सहन करके भी सम्प्रति के नाम को अमर रक्खे हुए हैं।

श्रीमान देवाचार्य[1] के, श्री अभयदेवाचार्य[2] के,
वेतालवादी[3] शान्ति मुनि के, खप्पभट्टाचार्य[4] के—
वर्णन गुणार्णव का करूँ कैसे भला मैं वर्ण में !
पर भान पा सकते नहीं आदित्य का क्या किरण में ? ॥८२॥

इन वर्णों में इन महान् तेजस्वी आचार्यों के गुणों के महासागर को मैं किस प्रकार वर्णों में अर्थात् शब्दों में प्रकट कर सकता हूँ ? फिर भी जिस प्रकार किरणों के दर्शन पर सूर्य का पता लग जाता है, उसी प्रकार मेरे इन अति साधारण शब्दों से उनका परिचय समझा जा सकता है।

१—मानदेवाचार्य—ये परमहंस थे। एक समय तक्षशीला नगरी में भयंकर उपद्रव प्रारम्भ हो गया। आप उस समय नादोलपुर में विराजमान थे। आपने नादोलपुर में 'शान्ति-स्तोत्र' बनाया और उसे तक्षशीला को भेजा। ज्योंहि वहाँ 'शान्ति-स्तोत्र' का पाठ किया गया कि एक दम सारा उपद्रव शान्त हो गया।

२—अभयदेवाचार्य—इस नाम के छः प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। इन छः में भी अधिक प्रभावक जिनेश्वरसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि हैं। आपने ग्यारह अंगों की टीकायें लिखी हैं। आप नागार्जुन के समकालीन थे।

३—शान्तिसूरि—ये आचार्य धनपाल और सूराचार्य के समकालीन है। आपने भी राजा भोज के विद्वद्गणों को निष्प्रभ कर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की उपाधि प्रदान की थी।

४—खप्पभट्टाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आम को जैन-धर्मी

जिनदत्त, कुशलाचार्य, जिनप्रभ युग प्रभावक हो गये;
श्री चन्द्रसूरीश्वर, प्रभाचन्द्रार्य, मुनिमाणि हो गये।
श्री हेम, आशाधर, अमितगति, पात्र के सारे आर्य से—
विश्रुत हुये हैं सर्व तप साहित्य सेवा कार्य से ॥ ८३ ॥

उक्त सभी आचार्य तपस्या एवं साहित्य की महान् सेवायें करने से अति प्रसिद्ध हैं।

बनाया था। आम राजा दुराचारी और स्त्रीलंपट था। आम राजा ने ज्योंहि जैनधर्म स्वीकार किया कि सारी मथुरा नगरी जो शैव थी जैन धर्मानुयायी बन गई।

जिनदत्तसूरि—ये खरतरगच्छ के महा प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। आज भी स्थान २ पर आपके नाम से दादा वाड़ियें मौजूद हैं। आपने जैनधर्म का अतिशय विस्तार-प्रचार किया था। ये आचार्य १२ वीं शती में हुए हैं।

जिनकुशलसूरि—ये खरतरगच्छ के आचार्य थे। आपने 'चैत्यवंदनकुलकवृत्ति' नाम का ग्रंथ लिखा है।

जिनप्रभसूरि— ये प्रगाढ़ विद्वान थे। इनका ऐसा नियम था कि प्रत्येक दिन कोई नव स्तोत्र, सूत्र रच कर ही अन्न-जल ग्रहण करना। इन्होंने 'द्व्याश्रय महाकाव्य' लिखा है। इनका काल १४ वीं शती है।

चन्द्रकीर्तिसूरि—इन्होंने 'सारस्वतव्याकरण' पर 'चन्द्रकीर्ति' नाम की टीका लिखी है।

प्रभाचन्द्रसूरि—ये आचार्य १४ वीं शती में हुये हैं। इन्होंने

श्रीलाल, वेणीचंद्र, शिवजी, धर्म दासाचार्य से,
श्रीरत्नचन्द्राचार्य, लवजी, अमरसिंहाचार्य से।
विश्रुत तपस्वी पूज्य थे दंभी, कुरागी थे नहीं,
वाचाल, भोजक, द्वेपसेवी साधु ये सब थे नहीं ॥८४॥

उक्त सर्व आचार्य परम तपस्वी एवं शान्त प्रकृति थे। उनके हृदयों में न राग था और न चमत्कार या पांडित्य प्रदर्शन की भावनायें। वे न वाकादी थे, न भोजनप्रिय और न द्वेषी थे।

'प्रभाविक चरित्र' नामका ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है।

आर्य आशाधर—ये संस्कृत के प्रख्यात पण्डित थे। इन्होंने 'कुवलयानन्दकारिका' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा है।

हेम चन्द्राचार्य—सौराष्ट्र पति कुमारपाल के गुरु थे। ये संस्कृत, प्राकृत एवं मागधी के अजोड़ विद्वान् थे। साढ़े तीन करोड़ से ऊपर श्लोकों की इन्होंने रचना की थी। इन्होंने सभी प्रकार के ग्रंथ लिखे हैं

अमितगति—इन्होंने 'सुभाषित रत्न संदोह', धर्मपरीक्षा आदि अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

पात्रकेसरि—ये आचार्य महाशक्तिशाली वादी थे। इनको 'त्रिलक्षण सिद्धान्त' के खंडनकर्ता कहते हैं।

पूज्य श्रीलालजी—ये बीसवीं शताब्दी में प्रतापी, वैराग्यवंत एवं कठिन आचार पालने वाले आचार्य हो गये हैं।

पूज्य वेणीचन्द्रजी—ये परम शान्त एवं महातपस्वी आचार्य थे।

४

अभित्याग उनका धर्म था, संयम मनोहर कर्म था,
शुचि शील परिपालन रहा उनका सदा ही वर्त्म था,
वे सहन कर उपसर्ग भी विचरण सदा करते रहे,
गिरते हुये को स्थान पर थे वे सदा धरते रहे ॥८४॥

मेदपार, मालवप्रदेश इनका प्रमुख विहार स्थल था।

पूज्य शिवजी--ये आचार्य सत्तरवीं शताब्दी में हो गये हैं। इनका साध्वाचार बड़ा कठिन था।

पूज्य धर्मदासजी--येआचार्य अठारवीं शताब्दी में हो गये हैं। ये बड़े प्रतापी थे। इनके ९९ शिष्य थे। इनके २२ शिष्य भिन्न भिन्न २२ भागों में विभक्त हो गये। वे सब 'बावीशटोला' कहलाये।

पूज्य रत्नचंद्रजी—ये आचार्य अठारवीं शताब्दी के प्रारंभ भाग में हुये हैं। इन्होंने सहस्रों स्त्री पुरुषों को जैन बनाया। मरुधरप्रांत इनका प्रमुख कार्यक्षेत्र था।

लवजी ऋषि--ये प्रभाविक आचार्य सत्तरवीं शताब्दी के अन्त में विद्यमान थे। इन्होंने अपना अलग सम्प्रदाय स्थापित किया और अनेक जैन बनाये। एक स्त्री ने इनको विषमिश्रित आहार दिया, जिससे इनकी मृत्यु हो गई। सौराष्ट्र, पंजाब एवं दक्षिण भारत में इनके अनुयायी विशेष हैं।

पूज्य अमरसिंह—ये आचार्य विद्वान एवं कठिन तपस्वी थे। दिल्ली दरबार में इनका प्रभाव था। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर बादशाह बहादुर शाह ने अनेक आज्ञापत्र निकाल कर हिंसा को कम किया।

उन पूर्वाचार्यों के निकट त्याग धर्म था, इन्द्रियों एवं इच्छाओं पर नियंत्रण रखना ही कर्म था, शील सदाचार का पालन करना ही उनका मार्ग था, संसार का कल्याण करने के लिये अनेकों कष्ट सहन करते हुये भी वे भ्रमण करते रहते थे। पथ भ्रष्ट हुये या होते हुये व्यक्तियों को सदुपदेश देकर पुनः पथ पर लाते थे।

उनके यशस्वी तेज से आलोकयुत हम आज हैं;
उनके दया से विश्व में हम मान पाते आज हैं।
हम गर्वयुत हैं कह रहे ऐसे न जग में साधु हैं;
पूर्वज हमारे हैं श्रमण, पूर्वज हमारे साधु हैं॥८६॥

उन पूर्वाचार्यों के गौरवशाली प्रताप के कारण ही आज हमारी संसार में इतनी ख्याति है, इतना मान है। हमको यह कहते हुये अभिमान होता है कि ऐसे संन्यासी संसार में किसी अन्य जनपद में नहीं हुये। हमारे पूर्वज अद्वितीय परिश्रमी एवं महान् आदर्श साधु हैं।

आदर्श स्त्रियाँ

कैसी यहाँ की नारियाँ भी सहज ही अनुमान है;
नर-रत्न जब इनको कहो, अनमोल नर की खान है।
ज्यों चन्द्र के विस्तार से होती अधिक है चन्द्रिका;
नर-चन्द्र की जगव्योम में प्रसरित हुई हैं चन्द्रिका॥८७॥

अब यह समझना कि यहाँ की स्त्रियाँ किस श्रेणी की थी अति सरल है। इन पूर्वजों को जब नररत्न कहते हैं को यहाँ की स्त्रियाँ

अमूल्य नररत्नों की खान थी। जिस प्रकार चन्द्र के विस्तार से उसकी चन्द्रिका का विस्तार अनत गुणा होता है, उसी प्रकार मनुष्यरूपी चन्द्र की स्त्री रूपी चन्द्रिका का पृथ्वीरूपी आकाश में अनंतगुणा फैलाव है (प्रभाव है)।

> कथानुगामी थीं सभी वे लाजवती नारियें;
> पतिदेव को प्राणेश थीं वे मानती सुकुमारियें।
> वे सौख्य में उपदेशिका, लक्ष्मी स्वरूपा थीं सभी;
> पति से नहीं वे दौख्य में पर भिन्न होतीं थीं कभी॥८८॥

वे पूर्वजा स्त्रियाँ पति का अनुगमन करने वाली, लज्जावती पति को हृदयेश्वर मानने वाली, ऋद्धि, वैभव में उन्मत्त होकर मार्गभ्रष्ट होने वालों को उपदेश करने वाली लक्ष्मी का अवतार थीं। दुःख एवं विपत्ति में वे छाया बनकर रहती थीं अर्थात् पति से अलग नहीं होती थीं।

> सहयोग उनका था सदा प्रति मानवोचित कर्म में;
> थीं रोकतीं जाती हुए नर को सदा दुष्कर्म में।
> सम भाग जो हर कर्म में इनका न यदि होता कहीं;
> यह भूत भारतवर्ष का गौरव भरा होता नहीं॥८९॥

ये स्त्रियाँ मनुष्यों को प्रत्येक उचित कर्म में सहयोग देती थीं और मनुष्यों को उन्मार्ग में जाने से रोकती थीं। अगर इन स्त्रियों का पूर्वजों को प्रत्येक कर्म में सहयोग नहीं मिला होता तो भारतवर्ष का भूतकाल इतना कीर्तिशाली नहीं हुआ होता।

शुचि शील के शिवताप से पावक मधुर जल बन गया;
ज्यों-ज्यों दुशासन चीर खींचे चीर त्यों-त्यों तन गया।
श्रीपाल का कुष्टीवदन कंचन नहीं क्या हो सका?
संभव असंभव ताप से उनके नहीं क्या हो सका? ॥६०॥

सीता की अग्नि परीक्षा ली गई, अग्नि शीतल जल बन गई। दुष्ट दुशासन ने कौरवों पाण्डवों की भरी सभा में द्रौपती को नग्न करना चाहा, परन्तु, द्रौपती के चीर का अंत ही नहीं आया और दुष्ट दुशासन अंत में थक कर बैठ गया। मैना सुन्दरी ने सिद्धचक्र की आराधना करके भी अपने कुष्ठी पति श्रीपाल का कुष्ट रोग निवारण किया। इन महासतियों के परम पावन शील के प्रताप से इस प्रकार सर्व असंभव भी संभव हुआ।

तापस्विनी तारा कहो किस देश में है हो गई?
शैव्या महाराज्ञी न चेरी विप्र की क्या हो गई?
वे संग रह कर कंथ के रण में सदा लड़ती रहीं;
थीं निज करों से पुत्र पति को रण तिलक करती रहीं ॥६१॥

राजकुमार कनक की भगिनी तारा ने बचपन में ही अपने माता-पिता से बिछुड़ कर कितने कष्ट सहन करके अपना धर्म रक्खा? महाराजा हरिश्चन्द्र के आदेश से राजमहिषी शैव्या ने विप्र के कर बिक कर चेरी का कर्म करना स्वीकृत किया। भारतीय स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ युद्ध में भाग लेती रहीं थीं। अपने सुकोमल करों से तिलक कर, वीरवेष सजा कर के अपने स्वामियों और पुत्रों को समरभूमि में भेजती थीं।

प्रत्यक्ष मानों देवियाँ थीं; ऋद्धियाँ मृतवर्ग की;
आनन्द घर घर हो रहा था, चाह नहिं थी स्वर्ग की।
सुरलोक की संप्राप्ति में अपमान हम थे जानते;
जब मोक्षपद के कर्म थे, तब क्यों नहीं थे मानते ॥६२॥

भारतीय स्त्रियाँ साक्षात् मृतलोक में स्वर्ग की देवियाँ और ऋद्धियाँ थीं। इनके भाव से भारत वर्ष स्वर्ग से बढ़कर आनंददायी था। घर-घर आनन्द छा रहा था। किसी को भी स्वर्ग की प्राप्ति की चिन्ता न थी। वरन् स्वर्ग की प्राप्ति पर तो वे अपमान का अनुभव करते थे। बात भी सत्य है—जब कर्म मोक्ष प्राप्ति के योग्य थे तब फिर ऐसा अनुभव नहीं करते।

नल चालनी से भी सुभद्रा सींचती जल है अहो!
चढ़ती अनल को भी शिवा उपशाम करती है अहो!
काटे हुये भी हाथ जिसके फिर यथावत हो रहे,!
इन शीलप्राणा नारियों के गान घर-घर हो रहे ॥६३॥

सुभद्रा—अपने शील के प्रभाव से इसने चलनी से कुएँ में से पानी निकाल कर बढ़ते हुये जल-प्रवाह को छिटक कर शान्त किया था। यह चंपानगरी—निवासी श्रेष्ठि-सुत बुद्धदास की स्त्री थी।

शिवा—चण्डप्रद्योत की राणी और चेटक राष्ट्रपति की पुत्री थी। इसने नगरी में लगती हुई प्रबल अग्नि को अपने शील के प्रभाव से शमन की थी।

कलावती—शंख नृपति की राणी थी। एक समय राजा
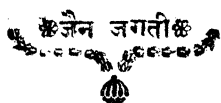
ने मिथ्या शंका से कलावती के दोनों हाथ कटवा दिये। लेकिन अवसर आये शील के प्रभाव से कलावती के दोनों हाथ पूर्ववत हो गये।

सौंपा जिसे निज भाग्य पर अरि के करों में तात ने;
रथवान के कर में तजा मरकर तथा फिर मात ने।
रथवान, गणिका, श्रीमती को भूल हम सकते नहीं
कैसे सहे हा ! वासुमति ने कष्ट—कह सकते नहीं ॥६४॥

वासुमति का अपर नाम चंदनबाला है। यह राजा दधिवाहन की पुत्री थी। आजन्म ब्रह्मचारिणी थी और भगवान महावीर की सुयोग्या शिष्या थी। भगवान् का कठिन अभिग्रह चंदनबाला के ही हाथ पूर्ण हुआ था। इसने जीवन में जितने संकट सहन किये उतने दुःख शायद ही किसी अन्य सती ने सहन किये होंगे। एक रथवान इसे और इसकी माता धारिणी को पकड़कर जंगल की ओर भागा। माता ने विपिन में ही जिह्वा खींचकर प्राण-त्याग किया। गणिकाने इसे क्रय करी, श्रेष्ठि स्त्री ने इसे बंदी बनायी। लेकिन अंत में इसके सब उपसर्ग शमन हो गये।

तन के सिवा सर्वस्व को जो द्यूत में थे खो चुके,
तजवेष सारे राजसी अवधूत जो थे हो चुके,।
होकर दुखी जिसने प्रियाको घोर वन में था तजा
करती उसे सम्पन्न है फिर भीम नृप की आत्मजा ॥ ६५ ॥

राजानल द्यूत क्रीड़ा में सर्वस्व हार चुके थे। अतिरिक्त

उनकी देह के उनके पास कुछ नहीं बचा था। निदान वे राजसी वस्त्रों का परित्याग कर महारागी दमयन्ती को साथ लेकर वन में निकल गये। घोर विपिन में जाकर उन्होंने दमयन्ती को भी छोड़ दिया और आप एकाकी निरुद्देश चल पड़े। दमयन्ती ने अपने बुद्धिचातुर्य्य से महाराजा नल का पता लगवाया और अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त करवाने में कृतकार्य हुई।

ब्राह्मी, सुजेष्ठा, सुन्दरी की ब्रह्म व्रत क्या थे कहो!
सुर, इन्द्र जिस पथ में गिरे उसमें चली थी ये अहो!
ये आर्यकुल की दीपका थीं ज्ञान गौरव शालिनी;
ये धर्म-कुल-निशिराज की थी शरद् निर्मल चाँदिनी॥ ८६॥

ब्राह्मी और सुन्दरी भगवान ऋषभदेव की पुत्रियाँ थीं और सुजेष्ठा राष्ट्रपति चेटक की पुत्री थी, इन तीनों ने आजन्म अखण्ड ब्रह्मचारिणी रहने का दृढ़ संकल्प लिया था। अखण्ड ब्रह्मचार्य्य व्रत के परिपालन करने में देवता और इन्द्र भी शिथिल प्रतीत हुये हैं, उस महाव्रत का आजन्म पालन इन सुकुमार बालाओं ने किया। ये आर्यजाति की ज्ञान और गौरव भरी ज्योत्तियाँ थीं। धर्म और कुल रूपी चन्द्रमा की ये यशस्विनी चन्द्रिकायें थीं।

थीं पुष्पचूला, धारिणी-सी देश में सुकुमारियाँ;
थीं मदनरेखा, नमदा, सुलसा सुसीमा नारियाँ।

पुष्पचूला—यह अग्नि का पुत्र आचार्य की परम सुयोग्या शिष्या थी और अद्वितीया सेवापरायणा थी।
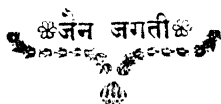
जब अञ्जना, पद्मावती के तप सुभग थे लग रहे ;
था स्वर्ग भूमि देख यह, थे भाग्य इसके जग रहे ॥६७॥

भारत वर्ष उन उन युगों में सचमुच स्वर्ग के समान था और महा भाग्यशाली; जिन जिन युगों में इन महा पतिव्रता साध्वी स्त्रियों ने भारत भूमि को अलंकृत किया था ।

धारिणी—इस नाम की अनेक वराङ्गनायें हो गई हैं। यहाँ हमारा अर्थ चम्पानरेश दधिवाहन की शीलवती रानी धारिणी से है जो चंदन बाला वासुमति की माता थी। इसने अपने शील की रक्षा करने के लिये अनेक प्रयत्न किये थे, अन्त में कोई उपाय न चलता देखकर यह जिह्वा खींच कर पंचत्वगति को प्राप्त हुई थी।

मदनरेखा—यह राजा युगबाहु की पतिपरायणा राणी थी। युगबाहु को इसके देवर मणीरथ ने मार डाला था और इसे उसकी प्रिया बनने के लिये अनेक प्रलोभन व संकट दिये थे। अन्त में यह प्रासाद छोड़कर भाग निकली थी और दीक्षा ग्रहण कर चारित्र पालने लगी थी।

नर्मदा—यह महेश्वरदत्त की पतिव्रता स्त्री थी। इसने आचार्य सुहस्ति के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

सुलसा—यह परमहंसा महिला थी। इसके बत्तीस पुत्रों का मरण एक साथ हुआ था, लेकिन यह उनके मरण पर तनिक भी शोकातुर नहीं हुई थी। और अपने पति को धर्म का प्रतिबोध देकर उसे इसने शोक-सागर में डूबने से उबारा। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-व्रत का पालन किया।

तुम विश्व भर की नारियों के कष्ट पहिले तोल दो;
राजीमती के कष्ट का फिर तोल मुँह से बोल दो।
देखो उधर वर लोट कर आया हुआ है जा रहा;
यह ज्ञान माया का अहो है द्वन्द कैसा जा रहा! ॥ ६८॥

राजिमती का पाणिग्रहण कुमार नेमनाथ के साथ होना निश्चित हुआ था; लेकिन कुमार नेमनाथ तो दीन पशुओं का जो वध किये जाने को पशुगृह में बन्ध किये गये थे, करुण स्वर श्रवण कर तोरण पर से लौट गयें थे। तब रथनेमी ने जो नेमनाथ के अनुज थे राजीमती से विवाह करना चाहा। राजीमती ने रथनेमी को दृढ़ता के साथ बोध दिया और धर्म में दृढ़ किया। किसी पतिपरायणा कन्या का वर तोरण पर आकर लौट जाय और अन्य द्वितीय कोई उसके साथ विवाह करने

सुसीमा—यह श्री कृष्ण वासुदेव की पतिपरायणा राणी थी। इसके शील की परीक्षा देव ने अनेक प्रकार से ली, लेकिन यह परीक्षा में सदा खरी उतरी। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-धर्म का पालन किया।

अंजना—यह हनुमान की माता और पवनकुमार की पतिव्रता राणी थी। अंजना की कथा प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है।

पद्मावती—यह राष्ट्रपति चेटक की पुत्री चम्पानरेश दधिवाहन की पतिपरायणा राणी और करकंडू की माता थी। इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-व्रत ग्रहण किया था।

का प्रस्ताव करें—इस दुःख के बराबर तोल कर बतलाइये क्या संसार भर की स्त्रियों का दुःख हो सकता है ?

इस ठौर पर ये प्रश्न कैसे हो रहे हैं—देखिये !
उत्तर जयन्ती को स्वयं विभु दे रहे हैं—लेखिये।
इन भूतदत्ता, यक्षदत्ता का स्मरण-बल देखिये;
इन सप्त बहिनों के लिये उपमान जग में लेखिये ॥९९॥

जयन्ती शतानिक नरेश की सहोदरा थी। यह प्रखर पंडिता था। अनेक विद्वान इसके प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर नहीं दे सके थे। इसने भगवान महावीर से अनेक प्रश्न किये और अंत में इसने चारित्र ग्रहण किया। भूतदत्ता, यक्षदत्ता नाम की सात सहोदरायें थीं। ये नंद सम्राट के महामात्य शकटाल की पुत्रियाँ थीं। भारत भर में ये अपनी स्मरण शक्ति के लिये अद्वितीया थीं।

ये लक्ष्मियाँ थीं, देवियाँ थीं, ऋद्धियाँ थीं, सिद्धियाँ;
तन, मन, वचन औ कर्म से करती रहीं नितवृद्धियाँ।
ये थी सुधा, गृह था सदा देवामृता कर, सुख भरा;
ऋतुराज का साम्राज्य था, सब भाँति हर्षित थी धरा॥१००॥

भारतीय स्त्रियाँ दाक्षिण्य में लक्ष्मी के समान उदार, दीन दुखियों पर देवियों के समान सहृदया, ऋद्धियों के सदृश सम्पन्न करने वाली, सिद्धियों के सदृश मनोकामना पूर्ण करने वाली, तन, मन, वचन और कर्म से सदा अभिवृद्धि करने वाली थीं। ये अमृत थीं, इनका घर अमृत से

सुख से सर्वश परिपूर्ण रहता था। इनके प्रभाव से सर्वत्र सुख का वसंत विराजमान था और समस्त पृथ्वी आनंदित और महासुखी थी।

ऐसा न कोई कर्म था जिसमें न इनका योग था,
घर में तथा बाहर सदा इनका प्रथम सहयोग था।
गार्हस्थ्यसुख को देख कर थे देव मत्सर कर रहे,
वे थे इसे सुरलोक से सब भाँति बढ़कर कह रहे॥१०१॥

ऐसा कोई मनुष्य कर्म ही नहीं था जिसमें ये स्त्रियाँ पुरुषों को सहयोग नहीं देती थीं। क्या घर में, क्या बाह्य व्यापार, व्यवहार में-इन स्त्रियों का सहयोग सदा प्रमुख रूप से रहता था। भारतवर्ष में गृहस्थ जीवन इतना सुखद एवं अलौकिक था कि देवलोक के देवतागण यहाँ के गृहस्थों का सुख देख कर जलते थे और देवलोक से भी बढ़कर इस लोक को मानते थे।

पूर्वज हमारे देव थे, नरनारियाँ थी देवियाँ,
थीं मनुजमानस की अलौकिक कांत दर्शीऊर्मियाँ।
इनके सुभग अनुचर्य्य से कृतकाम पूर्वज हो गये,
हम आम्रतरुवर डाल पर फल हाय!कटु लग क्यों गये?॥१०२॥

हमारे पूर्वज पुरुष देवताओं के समान और हमारी मातायें देवियों के समान सर्वगुणसम्पन्ना थीं। ये स्त्रियाँ मनुष्य रूपी मानसरोवर की निर्मल एवं प्रभामयी लहरें थी। पूर्वज पुरुष ऐसी देवियाँ स्त्रियों का सहयोग प्राप्त कर ही अपने कार्यों में सफल हो सके थे। परन्तु यह समझ नहीं पड़ता कि इन आम्र-

वृक्षों की शाखाओं में हमारे जैसे कड़वे फल किस प्रकार उत्पन्न हो गये ?

ये थीं किशोरी वृक्षराजी शील धन, पति लोक था,
ये ध्येय थीं, वे ध्यान थे, परिव्याप्त प्रेम लोक था।
जमदग्नि, कौशिक, इन्द्र विचलित हो गये जिस मार्ग में,
शुचि पुष्प इनके शील के विकसित हुये उस मार्ग में ॥१०३॥

इन स्त्रियों के लिये इनका पति लोक था, इनका शीलव्रत वन था और ये इस प्रकार अपने पति रूपी लोक में शील रूपी वन की अभिनवयौवना वनलक्ष्मियाँ थीं। ये स्त्रियाँ ध्यान करने योग्य थीं, पुरुष स्वयं ध्यान स्वरूप थे। सर्वत्र प्रेम का वातावरण था। शील के कंटकाकीर्ण एवं दुर्गम पथ में परशुराम जी के पिता जमदग्नि ब्रह्मर्षी विश्वामित्र और देवेन्द्र भी चलते हुये असफल हो गये हैं, उसी शील के महा विकट पथ में इन स्त्रियों की सफलताओं के सुन्दर पुष्प विकसित हुये हैं।

हमारी सभ्यता

आदिम हमारी सभ्यता के स्रोत का उद्गम कहो;
गंभीर इतना ज्ञान हो तो आदि का संवत् कहो।
कर क्रान्तियें सब जाति की आध्यात्मरस थे पी रहे;
बीते हजारों युग उसे—तुम क्रान्ति अब हो कर रहे ॥१०४॥

अगर किसी का इतना गंभीर अनुभव एवं ज्ञान हो तो वह हमारी आदि का समय बतलावें और हमारी सभ्यता की आदि का परिचय देवें। सर्व प्रकार के शोध, अन्वेषण, विकाश, अभ्युदय

करके जब हम पूर्ण तृप्त होकर आध्यात्मानंद का आस्वाद ले रहे थे उस समय से सहस्रों वर्षों पश्चात् अब आप लोग क्रान्तियें कर रहे हैं।

जिनवर ऋषभ को तुम कहो अब अब्द कितने होगये ?
कुल कर हमारे सप्त इनसे पूर्व ही हैं हो गये।
जब अन्य जनपद के मनुज थे जम्बुकों से चीखते;
उससे कई युग पूर्व थे हम काव्य-रचना सीखते ॥१०५॥

भगवान् ऋषभ देव को हुये आज लक्षों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। उनसे भी पहिले ७ कुल कर हो चुके थे। पृथ्वी के अन्य देशों के निवासी जब रीछ बंदरों की भांति जंगलों में जीवन यापन करते थे, बोलना भी नहीं आता था, उस काल के भी अनंत वर्षों पूर्व हम काव्यों की रचना करना सीख रहे थे।

थे व्योम तल को चूमते प्रासाद केतन हँस रहे;
गृह द्वार के थे तोरणों से गगन के पट टकरा रहे।
चाहे असंभव कल्पना इसको भला कोई कहें;
तनुमान था जब पंचशत धनु, मान केतन का कहें ॥१०६॥

हमारे भवन आकाश को स्पर्श करने वाले थे और आकाश हमारे भवन द्वारों के तोरणों से टकराता था। कोई इसको भले असंभव कहें; लेकिन जब पुरुषों की देह पाँच सौ धनुष की होती थी तब सोचो, उनके भवन कितने ऊँचे होंगे ?

अवसर प्राप्त होने पर अन्य किसी पुस्तक में यह सिद्ध करूँगा कि क्या देह की ऊँचाई पाँच सौ धनुष तक की हो सकती है।

जो जग रहे हैं आज वे आज सा ही जानते;
रागादि से वे हैं तथा संकोच करते मानते।
कुछ वीर संवत् पूर्व के हैं चिह्न*हमको मिल रहे;
जिनसे हमारे काल का अनुमान जन हैं कर रहे॥१०७॥

जिन देशों में आज जाग्रति हो रही है, उन देशों के निवासी यही समझ रहे हैं कि वे ही सर्व प्रथम जाग्रत होने वाले हैं, उनसे पूर्व किसी जनपद के निवासी जाग्रत ही नहीं हुये। इस प्रकार मानना उनकी अज्ञानता को प्रकट करता है या वे जान बूझ कर, रागादि कारणों से किसी प्रदेश की अति-प्राचीन सभ्यता को नहीं मान रहे हैं। भगवान् महावीर के पूर्व के कुछ चिह्न मिले हैं, जिनसे अब कुछ विद्वान हमारी सभ्यता के आदिकाल का निर्णय करने की चेष्टायें कर रहे हैं।

* मथुरा के कंकाली टीला की खुदाई में अनेक स्तूप, मूर्तियें और शिलालेख निकले हैं। जिनसे हमारी प्राचीनता अधिक सिद्ध होती है।

वी० स्मिथ लिखते हैं—

The original erection of the stupa in brick in the time of Paraswanath the predecessor of mahavir would fall a date not later than 600 B. C.

V. Smith
Mutra Antiquities

अभी हाल में जो मोहन जाडोरा की खुदाई हुई है, उसमें एक ध्यानस्थ मूर्ति मिली है। उसे सब विज्ञजन ५००० वर्ष से भी प्राचीन

ये नर अकिंचन आज के सम्पन्न निज को कह रहे;
मत्सरमय महाशान्ति के देखो रुदित हैं बह रहे।
थल, जल, गगन सब ठौर अत्याचार ये हैं कर रहे;
सम्पन्न हम थे भाँति सब: उपकार पर थे कह रहे ॥१०८॥

आज के उन्नत पुरुष अपने आप को बड़ा सम्पन्न मानते हैं, लेकिन इनकी सम्पन्नता हमारी उस सम्पन्नता के समक्ष तुच्छ है। प्रतियोगिता इतनी अधिक बढ़ गई है कि मत्सर और द्वेष से वातावरण अति कलुषित हो उठा है। पृथ्वी, पानी, आकाश सर्वत्र इनकी प्रतियोगिता के दुष्परिणाम दिखाई दे रहे हैं। धनी, निर्धन पर सबल निबल पर मनमाना अत्याचार कर रहे हैं। ये हैं इनके सम्पन्न होने का संसार के शान्त वातावरण को अशान्त बनाने का अर्थ। हम सर्व प्रकार अति सम्पन्न थे; लेकिन हमने सदा दूसरों का परोपकार ही किया।

था जाति से नहिं नेह अनुचित, बंधु से नहिं राग था;
कुछ मोह माया में न था, कुछ शक्ति में नहिं राग था।

बताते हैं। कायोत्सर्गस्थ एवं ध्यानस्थ मूर्ति अतिरिक्त जैन और बौद्ध के अन्य कोई नहीं हो सकती है। सर्व जग यह स्वीकार कर चुका है कि बौद्धमत के आदि प्रवर्तक भगवान बुद्ध ही थे जो भगवान महावीर के समय में ही हुए हैं। अतः अब उक्त मूर्ति सब प्रकार से जैनमूर्ति सिद्ध होती है। इस प्रकार हमारी प्राचीनता के अनेक चिह्न अब उपलब्ध हो चुके हैं और हो रहे हैं। सबका यहाँ स्थानाभाव से उल्लेख अशक्य है। देखिये 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास' प्र० पंचम (मुनि ज्ञानसुन्दरजी विलिखित)।

हम सार्वभौमिक ऐश को जो छोड़ती देरी करें,
नृप, सुर, पुरंदर किस तरह सेवा हमारी करें ? ॥१०६॥

हमारी क्या जाति, क्या बंधु, क्या धन-वैभव क्या शक्ति सर्व से उचित ढंग का सम्बन्ध था अर्थात इनमें ममत्व व राग हमारा हो और वह अन्य जाति और अन्य व्यक्तियां को दुखदायी, पीड़क हो सो रूप नहीं था। अगर हम इस महान वैभव में आसक्त रहते और अवसर आये उसका त्याग करने में विलम्ब करते तो महाराजा, देवता और इन्द्र हमारी किस प्रकार सेवा में तत्पर रहते ?

हमने हमारे राज्य में किस को बताओ दुख दिया;
क्रिमि कीट का भी जानते हो मनुजवत रक्षण किया।
क्या दण्ड से भी है कभी जग शान्ति स्थापित हो सकी;
जलती अनल जलधार बिन उपशाम किससे होसकी ? ॥११०॥

कोई बतुलावे अगर हमने किसी को हमारे राज्यकाल में दुःख दिया हो। कीड़े और मकोड़ों तक का हमने मनुष्यों के समान रक्षण-पोषण किया। दण्ड एवं शक्तिभय से संसार में कभी भी विश्वव्यापी शान्ति स्थापित नहीं हो सकी है—यह इतिहास को पढ़ कर देखलो। जलती हुई प्रचण्ड अग्नि को तो शीतल जल की धारा ही शान्त कर सकती है।

धन-द्रव्य-नारी अपहरण उस काल में होते न थे।
सम्भव कहो, कैसे कहें, जब पुष्प हम छूते न थे।
त्रियंच, मनुज, जड़ आदि में सब प्रेम युत व्यवहार था।
सब प्रेम के ही रूप थे, सब प्रेममय संसार था ॥१११॥

५

हमारे राज्यकाल में लूट, चोरी और स्त्रियों का अपहरण नहीं होता था। जब बिना स्वामी की आज्ञा के और अकारण एक पुष्प तक के छूने में पाप समझते थे तब भला लूट, चोरी और स्त्रीअपहरण जैसे अति निन्दनीय कर्म हमसे कैसे हो सकते थे। जड़, जीव, खग, मृग, मनुज, क्रिमि, कीट सर्व में सर्व प्रकार प्रेम का व्यवहार था। प्रत्येक जड़ वस्तु और प्रत्येक जीवपिंड प्रेम का ही रूपसमझा जाता था। समस्त संसार प्रेम के पारावार में निमग्न था।

हम काल को तो कवल से भी तुच्छतर थे मानते;
इसको अमर पद, जन्म की बस अर्गला थे जानते।
बस जा रहे शिवधाम थे हम खोल कर यह अर्गला;
जीवन मरण अभिराम हैं, होवे हमें क्यों भय भला॥११२॥

यमराज हमको क्या खावे, हम यमराज का साधारण ग्रास के सदृश मान करते थे। इन्द्रलोक, मुक्ति एवं पुनर्जन्म की मृत्यु एक अर्गला है, जिसे खोल कर हम अपनी इच्छानुसार इनमें प्रवेश करते थे। मृत्यु से हमको भय क्यों होवे? जीवन और और मृत्यु दोनों ही सुन्दर हैं।

वह बन गया याचक हमारे द्वार पर जो आगया;
अब अधिक तो हम क्या कहें वह हृदय चाहा पा गया।
हम गिर गये थे, पर गिरे को हम उठाते नित रहे;
निर्जीव को जीवन हमारे प्राण देते नित रहे॥११३॥

जो भी भिक्षुक हमारे द्वार पर आगया, वह मुँहमाँगा ले

गया और सदा के लिये उसका दारिद्र्य विनष्ट हो गया। हम गिरते हुये भी अन्य पतित हुओं को उठा रहे थे। मुर्दों में प्राण एवं शक्ति पैदा कर रहे थे।

थे व्यजनों को छोड़ कर उपवास हम जब कर रहे,
थे अन्य जन पद उस समय भी मांस भक्षण कर रहे।
तप, दान, विद्या, ज्ञान, गुण हमने सिखाये हैं उन्हें,
पशु से बदल कर सभ्यनर हमने बनाये हैं उन्हें ॥११४॥

मधुर मधुर भोजनों से हम उदासीन होते आ रहे थे और उपवास, व्रतादि क्रियायें कर रहे थे उस समय भी संसार के अन्य देशों में स्त्री, पुरुष मांस भक्षण कर के ही उदर भरते थे। हम ही सर्व प्रथम सभ्य हैं, जिन्होंने उन जंगली पशुओं के माँस पर उदर भरने वालों को ज्ञान और गुण सिखाये, विद्या पढ़ाई, तपस्या और दान की महिमा बतलाई, पशु जीवन से मुक्त कर उन्हें सभ्य पुरुष बनाये।

हम दूसरों का देख कर दुख शान्त रहते थे नहीं,
दुख मूल से हम काट कर विश्राम लेते थे कहीं।
उनके दुखों को दुख भला हम क्यों न अपना मानते,
'आत्मस्य आत्मा बन्धु है' जब थे भला यह जानते ॥११५॥

अन्य पुरुष को दुखी देख कर हम अशान्त हो उठते थे और जब तक उसका दुःख निवारण नहीं कर देते तब तक चैन नहीं लेते थे। दूसरों के दुःखों को हम अपना ही दुःख भला

क्यों नहीं समझते जब हम यह सिद्धान्त भली प्रकार जानते थे कि आत्मा आत्मा का बन्धु है।

सब भाँति में हम थे समुन्नत, गर्व पर कुछ था नहीं,
छोटे बड़े के भेद का दुर्भाव मन में था नहीं।
अघपंक में लिपटे हुये को थे उठाते गोद में,
सर्वस्व हम देते रहे थे दीन को आमोद में ॥ ११६ ॥

सर्व प्रकार के वैभव हमारे पास थे, परन्तु किंचित भी अभिमान हमको नहीं था। राव और रंक, सभी के साथ हमारा व्यवहार समान था। पापी को भी हम हृदय से लगाकर अपनाते थे और उसे सद्मार्ग में प्रेरित करते थे। दीन एवं असहायों को हम प्रसन्नतापूर्वक सर्वस्व दान देकर सुखी बना रहे थे।

हम शील सरवरमीन थे, तप-दान-संयमप्राण थे;
सद्भावशतदलभृंग थे त्रयलोक के आधार थे।
उपकार, धर्मोद्धार में हमको न आलस था कहीं;
बस ध्येय दलितोद्धार के अतिरिक्त दूजा था नहीं ॥११७॥

जिस प्रकार मछली पानी के अभाव में जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार हम शील रहित होकर जीवित नहीं रह सकते थे अर्थात् हमारा जीवन शीलव्रत पर ही आश्रित था, तपस्या, दान एवं इन्द्रियों का संवरण करना हमारा प्राणप्रण था, सद्भाव रूपी कमल के हम भ्रमर थे, तीनों लोकों का जीवन हमारे पर ही एक मात्र आश्रित था। परोपकार एवं
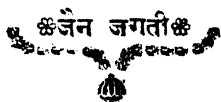
धर्म संबन्धी हर उद्धार कार्य में हम निमिषभर का भी विलंब नहीं करते थे। दीन, हीन, असहायों का उद्धार करना ही हमारे जीवन का एक मात्र लक्ष्य था।

सिद्धान्त रचना है दयामय शील, समता से भरी
आचार में, व्यवहार में व्यवहृत जिसे हमने करी।
प्रतिकूल यदि कुछ हो गया था—कौन किसको दण्ड दे;
अभियुक्त अपने आपको अपराध का बस दण्ड दे॥११८॥

हमारा प्रत्येक सिद्धान्त दया, शील एवं सम्यकत्व के भावों से परिपूर्ण है। जिनका हमने आचार में और व्यवहार में प्रयोग किया है। यदि किसी पुरुष से अतिचार, अनाचार, दुर्व्यवहार हो गया तो वह स्वयं ही अपने आप प्रायश्चित करता था, दण्ड लेता था। दण्ड देने वाले अन्य किसी व्यक्ति की आवश्यकता ही नहीं थी।

आलोचना करते सदा थे भोर में निशिचार की;
करते सदा फिर सांझ को दिन में किये व्यापार की
थे माह की औ पक्ष की भी कर रहे आलोचना;
वर्षान्त पर करते तथा सांवत्सरिक आलोचना॥११६॥

रात्रि में किये गये कर्मों का विचार प्रातः काल और दिन भर में किये गये कर्मों का विचार प्रतिदिन सायंकाल को करते थे। फिर १५ दिनों के और एक माह के कर्मों की आलोचना करते थे और वर्ष के अन्त पर सारे वर्ष भर में किये गये कर्मों की पर्यालोचना करते थे। इस प्रकार कृत कर्मों का विचार,

आलोचना, पर्य्यालोचना करते रहते थे और दण्ड और प्रायश्चित लेते थे, व्रत और प्रतिज्ञा करते थे।

जीवन हमारा देख कर सुर, इन्द्र भी अनुचर हुये;
प्रति कर्म में जो थे अथक सहयोग दे सहचर हुये।
ऐसे अनूठे कर्म प्राणी क्या कहीं हैं हो गये?
बस मोक्ष-जेता, भवविजेता हम हमी से हो गये ॥१२०॥

हमारा आदर्श जीवन देखकर देवता और इन्द्र भी हमारे भक्त बने और उन्होंने हर कार्य में यथाशक्ति सहयोग दिया। ऐसे कर्मवीर पृथ्वी के अन्य किस भाग में हुये हैं। संसार को जय करने वाले और मुक्तिलोक में अधिकार स्थापित करने वाले हमारे समान हम ही हैं।

क्या हो गया जो आज हैं भवपंक में हम सड़ रहे;
आकादि के जो शुष्क उड़कर पत्र हम पर पड़ रहे।
यह पुष्पजल से जिस समय सरवर भरा हो जायगा;
हम पंक में पंकज खिलेंगे, आवरण खो जायगा ॥१२१॥

यह निश्चित हैं कि आज हम कमल पापाचरण के दलदल में डटे हुए है और आकादि के समान तुच्छ श्रेणी के पुरुष पत्र और वे भी शुष्क होकर हमारे ऊपर पड़ रहे हैं। परन्तु जिस समय पुष्पजल से हमारा समाज रूपी सरोवर भर जायगा, उस समय आकादि के शुष्क पत्र रूपी तुच्छ पुरुषों का आवरण खो जायगा और दलदल में सड़ते हुए हम कमल पुनः खिल उठेंगे।
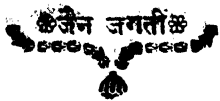
ये गर्व इतना कर रहे हैं 'रेडियो' नभयान पर;
यह तो बतादे—ज्ञान इनका है मिला किस स्थान पर।
है 'शब्द' रूपी, यह कहो किसने तुम्हें पहिले कहा ?
सुरयान यदि होते नहीं, नभयान क्या बनते यहाँ ॥१२२॥

आज ये लोग एक रेडियो जैसी वस्तु तैयार कर अपनी विज्ञानोन्नति का ढिंढोरा जग में पीट रहे हैं। परन्तु कृपा करके यह तो बतावे कि इनको ये भाव कहाँ से प्राप्त हुये। 'शब्द' रूपी है, शब्द का आकार होता है, वह ग्रहण किया जा सकता है, यह पहिले संसार के समक्ष किसने सिद्ध करके रक्खा ? हमारे ग्रन्थों में अगर देवविमानों की चर्चायें नहीं होती तो क्या इनमें वायुविमान बनाने की भावनायें उत्पन्न होतीं ?

हम भवन पर बैठे हुये जग बदरवत थे देखते;
है क्या, कहाँ पर हो रहा ? सब मुकुरवत थे पेखते।
तन-मन-वचन में, कर्म में सब के हमारा वास था;
अज्ञेय हो, ऐसा न कोई दीखता नर-वाम था ॥१२३॥

हम अपने घरों में बैठे हुये भी संसार को हस्ततली में रक्खे हुये आमलफल की भाँति भलिभाँति अवलोक रहे थे। किस स्थान पर क्या हो रहा है दर्पण सदृश हमको दिखाई देता था। संसार के सर्व प्राणियों के तन, मन, वचन हमारे प्रभाव से अन्वित थे। ऐसा कोई प्रदेश नहीं था, जिसकी हलचल हमसे अज्ञात हो।

पूर्व भव को देख कर थे पद हमारे पड़ रहे;
हम जानते थे मोक्ष में कितने चरण हैं वट रहे।

हम हाय ! दंभी आज हैं प्रति दिवस पीछे हट रहे;
छाया प्रलय की पड़ गई या भाग्य खोटे घट रहे ॥१२४॥

पूर्व भव को देख कर हम आगे के भव को और वर्तमान भव को अधिक आदर्श, पुण्यशाली बनाने का सतत् प्रयत्न कर रहे थे और हमको यह अच्छी प्रकार विदित था कि अब मोक्ष की प्राप्ति में कितना अन्तर रह गया है। परन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हम इस समय में वैसा अपने को दिखाने का मिथ्या दंभ कर रहे हैं और प्रति दिन पीछे हटते चले जा रहे हैं। हे भगवान ! ये महाशान्ति के लक्षण हैं या दुर्भाग्य अधिकाधिक घना होता जा रहा है।

क्या नाथ ! नरसंहार हित विज्ञान निर्मापित हुआ ?
पश्चिम दिशा में देखिये, इस रूप में विकशित हुआ ?
आकाश, ग्रह, त्रयलोक के सब तत्व हमको ज्ञात थे;
फिर भी कभी यों दीन पर करते न हम उत्पात थे ॥१२५॥

हे भगवान् ! क्या मनुष्यों के सर्वनाश के लिये ही विज्ञान की सृष्टि हुई है ? आप देखिये, यूरोपादि पाश्चात्य प्रदेशों में विज्ञान के बल पर सर्वनाश सहज बनाया जा रहा है। आकाश, ग्रह, तारे और तीनों लोकों के सर्व तत्त्व हमको विदित थे; परन्तु हमने तो कभी भी दीन, हीन प्राणियों पर उनका दुष्प्रयोग नहीं किया।

शिव शान्ति जग में हो नहीं सकती कभी संहार से;
क्या भूप कोई कर सका है शान्ति अत्याचार से ?

वर्त्तन अहिंसा वाद का जब विश्वभर में होयगा;
तब अभिलषित शिव शान्तिका साम्राज्य विकशित होयगा॥१२६॥

संसार में विश्वव्यापी शांति संहार करके न हो स्थापित, हो सकती है और न ऐसा कोई हमारे समक्ष दृष्टान्त ही है कि किसी सम्राट ने संहार एवं अत्याचार करते हुये साम्राज्य में शान्ति स्थापित की हो। शिव एवं कल्याणकारी शान्ति का प्रसार तो उस समय होगा जब संसार में अहिंसा वाद का प्रचार एवं अनुशीलन एकमत एवं एक प्रकार का होगा।

क्रिमि कीट तक भी बस हमारे राज्य में स्वच्छन्द थे;
पशुपूर्ण कालीरात्रि में निश्चित थे, निष्फन्द थे।
हम ईश-नियमों की कभी अवहेलना करते न थे;
हम स्वार्थबस पर-अर्थ का यों अपहरण करते न थे॥१२७॥

हमारे राजत्वकाल में कीड़े, मकोड़े तक पूर्ण सुखी एवं निरापाध थे। अमावश्या के घोर अन्धकार में भी पशु निडर होकर और निर्बन्ध होकर फिरते रहते थे। ईश्वरीय नियमों की हम कभी अवहेलना नहीं करते थे। अपने स्वार्थ संपादन्न के लिये हम दूसरों के स्वार्थपर कुठाराघात कभी भी नहीं करते थे।

कृषिकर्म को करते हुये थे भरण-पोषण कर रहे;
हम उदर-पोषण इस तरह संसार भर का कर रहे।
पर आज तो गोमांस ही अधिकांश का आधार है;
शुभ्रांशु के पश्चात् क्या आता सदा तमभार है?॥१२८॥

कृषि करना हमारा प्रमुख कर्म था। कृषि करके हम अपना

और संसार के सर्व प्रदेशों का पेट भर रहे थे। परन्तु आज के अन्य प्रदेशों का मुख्य भोजन और स्वयं भारत भूमि के भी कितने ही मनुष्य का भोजन गौमांस ही है। क्या वस्तुतः प्रकाश के पश्चात् घोर तिमिर का ही प्रादुर्भाव होता है ?

आस्ट्रेलिया और एशिया, यूरोप अरबीस्थान को,
दुनिया नयी औ अफ्रीका, ईराक औ ईरान को[1],
हम पूर्व तुम से जा चुके, इतिहास देखो खोलकर।
तुमने नया है क्या किया दुनिया नयी को खोजकर ?॥१२९॥

हे नये नये प्रदेशों की शोध करने का दम्भ भरने वालो ! तुम्हारे से बहुत पहिले हमने आस्ट्रेलिया, एशिया, यूरोप, अरब अफ्रीका, अमेरीका, ईराक, ईरान आदि प्रदेशों से संबंध स्थापित कर लिये थे। अमेरीका की शोध कर तुमने ऐसा कौन सा नवीन कर्म कर डाला ?

जो तुम पुराने ग्रन्थ कुछ भी नेत्र भर तक देख लो;
संबंध कैसे थे हमारे तुम परस्पर पेखलो।
हम भूप थे, वे थीं प्रजा, थे प्रेम बंधन लग रहे;
हो बहन भाई धर्म के ज्यों रस परस्पर जग रहे ॥१३०॥

---

१ अगस्त सन् १९३४ को प्रकाशित हुए 'बम्बई समाचार' में एक यूरोपयात्री ने लिखा है कि अमेरिका और मगोलिया में एक समय जैनियों की घनी आबादी थी। आज इन उक्त देशों में भूगर्भ से ऐसी जैन-मूर्तियों के खण्डहर उपलब्ध होते हैं कि जिनसे इस बात की पुष्टि होती है। देखिये 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास प्र० पंचम।
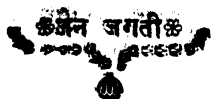
अगर आप प्राचीन ग्रन्थों का कुछ भी अवलोकन करें तो आपको हमारे और इन देशों के निवासियों के बीच क्या संबंध थे का पता लग जायगा। राजा प्रजा का संबंध होने पर भी हम परस्पर ऐसे पावन प्रेम बंधनों में बंधे थे कि मानो धर्म के भाई भाई हों। परस्पर में आनंद की ज्योति जगमगा रही थी।

सम्पन्न होकर भी नहीं हम भोग में आसक्त थे,
हम दान जीवन दे रहे थे, आप जीवन-मुक्त थे।
जीवन-मरण के तत्त्व सारे थे करामलवत हुये;
सत्कर्म करने में तभी हम इस तरह उन्नत हुये ॥१३१॥

वैभवपति होकर भी हम महात्यागी थे। संसार को हम असार समझते थे और इस मानव जीवन से विरक्त हो चुके थे, फिर भी अन्य देशवासियों का जीवन सरस और उनके लिये संसार को संसार बना रहे थे। जीवन और मृत्यु के सर्व भेद हमको भली भाँति ज्ञात थे। इसीलिए पुण्य कर्म करने में हम आगे बढ़े हुए थे।

हम आदि करके कर्म को थे मध्य में नहि छोड़ते;
सागर हमारा क्या करे! हम शुष्क करके छोड़ते।
हम पर्वतों को तोड़ कर समतल धरातल धरा कर डालते;
भू, अनल, नभ, वायु जल आदेश भलिविध पालते ॥१३२॥

हम किसी भी कार्य को उसका प्रारम्भ करके मध्य में अड़चन एवं विपदाओं से घबरा कर नहीं छोड़ देते थे। स्वयं

सागर एवं महापर्वत व इनके समान भयंकर संकट हमारे बाधक बन कर अपना अस्तित्व ही खो बैठते थे। अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, नभ, पवन और जल हमारे पूर्ण अनुवर्ती थे।

परमार्थ हित ही ये हमारे कर्म सारे हो रहे;
कैत्रिम्यता पर इस तरह मे थे नहीं हम मर रहे।
यूरोप के अब देश जो उन्नत कहे हैं जा रहे;
संस्कार, शिक्षा पूर्व इसके थे कहाँ से पा रहे॥१३३॥

हमारा प्रत्येक कर्म प्राणीमात्र के लिये कल्याणकारी भावों से पूर्ण होता था। इस प्रकार के दम्भात्मक दिखावे पर हम प्राणप्रण से प्रयत्न नहीं कर रहे थे। इस युग में जो देश अपने को उन्नत मानता है, कृपया उससे यह तो पूछिये कि वे सुसंस्कार और वे सुशिक्षा ये तुमको सर्वप्रथम कहाँ से प्राप्त हुई जिसका एक मात्र परिणाम तुम्हारी यह उन्नति है।

विद्वान थे, गुणवान थे, तप, दान में हम शूर थे;
हम नीति, नय, विद्या, कला में तिमिरनाशक सूर थे।
हमने कभी भी समर का पहिले निमन्त्रण नहिं दिया;
क्या काल ने हमसे अकड़ कर अन्त अपना नहिं किया॥१३४॥

हम विद्वान, गुणी, तपस्वी और दानवीर थे। नीति, न्याय, विद्या और कला में सूर्य और चन्द्र थे। हमने कभी भी प्रथम रिपु से युद्ध का प्रस्ताव नहीं किया। इतने पर भी अगर कृतांत भी गर्व में चूर्ण होकर हमसे आ ही भिड़ा तो उसका अस्तित्व

ही सदा के लिये ही मिट गया अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति पर का फिर कोई भय नहीं रहता है।

पर ये नपुंशक आज हैं निंदा हमारी कर रहे;
बक्काल, बणिया हैं हमें ये वक्रस्वर से कह रहे।
पर तोष इतने से नहीं है हाय! इनको हो रहा;
भारत 'अहिंसावाद' से ये कह रहे, है रो रहा ॥१३५॥

ये स्वयं कायर एवं पुरुषत्वहीन पुरुष हमारी निन्दा करते है और हमको अपमान जनक शब्दों से संबोधित करते हैं। अपमान जनक शब्द बोल कर ही ये चुप नहीं रह जाते, ये कहते हैं कि भारतवर्ष का यह पतन अहिंसा वाद मत के प्रचार का कारण है।

गजराज को भी भूँकता कुक्कुर सदा लेखा गया;
ये सब समय के चक्र से सब काल में पेखा गया।
'गान्धी' अहिंसा सत्य पर हैं जोर कितना रख रहे;
अवहेलना से आज इनकी जन कुफल हैं चख रहे ॥१३६॥

यह अनुभव सिद्ध बात है कि समय आता है जब हस्ति सदृश बली पशु को कुत्ता भी भूँक सकता है। हमारे मुख्य सिद्धान्त अहिंसा और सत्य हैं और महात्मा गान्धी जो इस युग में विश्व के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष माने जाते हैं इन दोनों सिद्धान्तों के एक मात्र प्रचार को ही विश्वव्यापि शान्ति के स्थापन होने का परम कारण समझते हैं। जो देश या जो समाज आज सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों का तिरस्कार कर

रही है, वह इस अवहेलना का भयंकर कटु फल चख रही है—यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

हमारी प्राचीनता

❀उन पर दया आती हमें जो बौद्ध हमको कह रहे;
हैं कौन सा आधार वह जिस पर हमें यों कह रहे।
'हम बौद्धमत की शाख हैं' थे मूर्ख जो कहने लगे;
वे मत नये अब देख कर हैं, देखलो, छिपने लगे ॥१३७॥

जो अर्ध विद्वान हमको बौद्ध या बौद्धमत की शाखा कहते थे वे समझ में नहीं आता किस आधार पर ऐसा मत स्थिर कर रहे थे। हमें उनकी इन बालचेष्टाओं पर दया आती है। वे अब अन्य विद्वानों के नये एवं सत्य मत देखकर अपना मुँह ढक रहे हैं।

पुस्तक [१] पुरातन देखिये, इनमें हमारा लेख है;
श्रुति वेद में, स्तोत्रादि में भी उल्लिखित लेख है।

❀"यह निर्विवाद सिद्ध है कि बौद्ध के प्रवर्तक गौतम बुद्ध से पहिले जैनियों के तेवीस तीर्थंकर हो चुके हैं"—एनसाईक्लो पीडिया व्याहाल्यूम २१।

१—देखो 'जैन जातिमहोदय' प्रथम प्रकरण (मुनिज्ञानसुन्दर जी विलिखित)

(अ) यजुर्वेद—ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो।
(ब) यजुर्वेद—ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा।
(अध्याय २६)

संतोष फिर भी हो नहीं, मनुनीति को भी देखलो;
गीता, महाभारत कथित तुम सार पहिले लेख लो॥१३८॥

वेद, संहिता, श्रुति, पुराण, गीता, महाभारत, मनुनीति और अनेक प्रसिद्ध अति प्राचीन ग्रंथों में हमारी अति प्राचीनता के प्रमाण उल्लिखित हैं। आप उन्हें पढ़कर विश्वास कर सकते हैं।

ब्राह्मण कलेवर की कहो काया पलट किसनेकरी ?
हिंसामयी[२] थी वृत्ति उसकी वीर विभुवर ने हरी

(स) श्री ब्रह्माण्डपुराण—

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं, मरुदेव्यां मनोहरम्।
ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्यपूर्वकम्॥

(द) मनुस्मृति-कुलादि बीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः
चक्षुष्मांश्च यशस्वी वाभिचन्द्रोथ प्रसनेजित॥

(इ)—महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान् क्या कहते हैं—
'आरोहस्व रथे पार्थ गांडीवं च करे गुरु।
निर्जिता मेदिनी मन्ये निग्रन्था यादि सन्मुखे॥'

२ 'परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय जैनधर्म ही के हिस्से में है।' उक्त वाक्य पं० बालगंगाधर तिलक ने ३० नवम्बर सन् १८९४ को बड़ौदा में व्याख्यान देते हुए कहा था। जैन जाति महोदय प्र० प्रकरण से उद्धृत।

पाकर हमारा योग ब्राह्मण विप्र सच्चे रह सके;
हो भिन्न हम से बौद्धजन कब के किधर हैं बह चुके ॥१३९॥

भगवान् महवीर ने हिंसक बनी हुई ब्राह्मण जाति को पुनः अहिंसा का पाठ पढ़ाया। भगवान् के पश्चात्वर्त्ती आचार्य बराबर ब्राह्मणों की अहिंसक वृत्तियों का घोर विरोध करते रहे। उसका परिणाम आज यह है कि ब्राह्मण जगत अपने सच्चे रूप में विद्यमान है। बौद्धजनों ने हमसे दुषित कशाकसी करके यहाँ से अपना सदा के लिये अस्तित्व ही खो दिया।

व्याख्यान में अपने 'तिलक' भी लीजिये क्या कर रहे ?
प्राचीनतम सब से हमारे जैन दर्शन कह रहे।
व्याख्यान में ये मिश्र जी हैं देखिये, दिखला रहे—
'प्राचीनतम हैं जैन दर्शन' स्पष्ट है बतला रहे ॥१४०॥

गोविन्द, वरदाकांत के मन्तव्य भी तुम लेख लो;
फिर कृष्ण शर्मा आदि का भी मान्यताएँ पेख लो।
गिरनार हर्टालजान्स के मन्तव्य भी तुम देखना;
फिर आदि के संवत् विषय में ध्यान से परिलेखना ॥१४१॥

कृपया उक्त सर्व महोदयों के हमारी प्राचीनता के सम्बन्ध में मत देखकर आप फिर ध्यान पूर्वक अपना मत स्थिर करें।

पौष शुक्ला १ सं० १९६२ को काशी में व्याख्यान देते हुये पं० स्वामीराममिश्रजी शास्त्री, भूतपूर्व प्रोफेसर सं० कालेज बनारस ने कहा, "मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्व का है।" जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

प्राचीनता को नष्ट जो भी हैं हमारी कर रहे;
वे द्वेष या अज्ञानता से इस तरह हैं कर रहे।
स्वाध्याय औ सद्भाव वे ज्यों ज्यों बढ़ाते जायँगे;
हमको अगाऊँ पायँगे, वे गुण हमारे गायँगे ॥१४२॥

इतना होने पर भी जो हमारी सिद्ध प्राचीनता को नष्ट

पं० बालगंगाधर तिलक का भी यही मत था कि जैन-धर्म अनादि है। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

"ऋषभ देव जैनधर्म के संस्थापक थे यह सिद्धान्त अपनी भागवत से भी सिद्ध होता है।........महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं। वे २४ तीर्थंकरों में से एक प्रचारक थे।" ये वाक्य गोविन्द आप्टे बी० ए० इन्दोर निवासी ने अपने एक व्याख्यान में कहे थे।

"लोगों का भ्रम-पूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ जैन-धर्म के संस्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेव ने किया था। इस की पुष्टि के प्रमाणों का अभाव नहीं है।" ये वाक्य श्री० वरदान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० ने अपने बंगला लेख में लिखे थे, जिसका हिन्दी-अनुवाद नाथूराम प्रेमी ने किया है। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

"सबसे पहिले इस भारतवर्ष में "ऋषभदेवजी" नाम के महर्षि उत्पन्न हुए।.....इनके पश्चात् अजितनाथ से लेकर महावीर तक २३ तीर्थंकर अपने-अपने समय में अज्ञानी जीवों का मोहान्धकार नाश करते थे।" ये वाक्य तुकारामकृष्ण शर्मा लट्टू बी० ए० पी० ऐच० डी० इत्यादि प्रोफेसर क्वींस कालेज बनारस ने 'स्याद्वाद महाविद्यालय

६

करने का प्रयास कर रहे हैं, वे या तो द्वेषी हैं या अज्ञ हैं। ज्यों ज्यों उनका स्वाध्याय, अनुभव एवं मनन बल बढ़ेगा त्यों त्यों वे हमको अधिकाधिक प्राचीन पायेंगे और हमारा यशोगान करेंगे।

श्रुति, वेद हमको पूर्वतम हैं सिद्ध देखो कर रहे;
यह विज्ञ, कोविद, वेदविद स्वीकार सब है कर रहे।
ज्यों ज्यों अधिक भूगर्भ जन उद्खनित करते जायेंगे;
षड्खण्ड में पदचिह्न वे हर स्थल हमारे पायेंगे ॥१४३॥

श्रुतिशास्त्र एवं वेद सर्व ही हमको प्राचीनतम प्रकट कर रहे हैं। विद्वान, नैयायिक, वेदान्ती भी इन शास्त्रों के इस

काशी के दशम वार्षिकोत्सव के अवसर पर अपने व्याख्यान में कहे थे। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

"पार्श्वनाथ एक ऐतहासिक व्यक्ति हो गये हैं। इसमें कोई शंका नहीं है। जैन मान्यतानुसार उनकी आयु १०० वर्ष की थी और महावीर से २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ है। इस प्रकार पार्श्वनाथ ईसा से आठ शताब्दि पूर्व उत्पन्न हुए सिद्ध होते हैं। महावीर के माता पिता पार्श्वनाथ के धर्मानुयायी थे।" ऐसा गिरिना का मन्तव्य है। 'उत्तर हिन्दुस्तान में जैनधर्म' नामक इतिहास पृ० ११ से उद्धृत (ले० चिमनलाल के० चन्दशाह)।

"ज्यों-ज्यों मैं जैन धर्म और उसके साहित्य को समझता हूँ त्यों-त्यों मैं उसे अधिक पसन्द करता हूँ।" ये शब्द जान्सहार्टल ने अपने एक पत्र में लिखे थे।
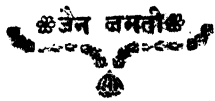
अभिमत को मानते हैं। प्राचीन शोध करने वाले भूगर्भ वेता जहाँ जहाँ पृथ्वी के गर्भ में अधिकाधिक पढ़ कर शोध करेंगे, वे छः ही खण्डों में हर स्थल पर हमारे चिह्न देखेंगे।

हमारे विद्वान—कलाविद्

हम आप मुँह से क्या कहें कितने बड़े विद्वान थे;
पर आज कहना ही पड़ेगा—सब तरह गुणवान थे।
जब हीन हमको देशवासी बंधु भी कहने लगे;
तब क्यों न हम प्रतिकार में उत्तर जरा देने लगे ॥१४४॥

हम सर्व प्रकार से गुणवान थे, यह हमको अपने ही मुख से नहीं कहना चाहिये था; लेकिन जब हमारे देशबन्धु ही हम निर्दोषियों को भारत के पतन का प्रमुख कारण बतला रहे हैं और हमको दीन प्रकट कर रहे हैं ऐसी दशा में आज कुछ तो उत्तर के रूप में कहना ही पड़ेगा।

ये मन्त्रविद्या, तन्त्रविद्या यंत्रविद्या, भूत वा;
वैक्रिय-असुर-सुर-यक्षविद्या, दुष्ट अन्तभूत वा।
ये मृत्यु-जीवन-चार विद्या, रस-रसायन पाक भी;
ज्ञात थी ज्योतिष, ऐन्द्रजालिक, गणित विकला सभी ॥१४५॥

जल-वह्नि-बंधन, पवनस्तंभन, चित्र-वर्षण स्वर-कला—
हैं आज प्रथित मिल रही ये इस तरह बहत्तर कला।
इन नरकलाओं के सिवा नारीकलायें और थीं;
नारी कला में नारियें सब भाँति से शिरमौर थीं ॥१४६॥

वाणिज्य, नर्तन, चित्र, नय, संगीत, सद्विज्ञान वा,
आतिथ्य, वैद्यक, काव्य, व्यंजन, दंभ, जल्पन, ज्ञान वा,
आकार गोपन, हस्तलाघव, धर्ममय सब नीतियाँ,
इनमें कलाविद थीं हमारी नारियाँ, नवयुवतियाँ ॥१४७॥

मन्त्र, तन्त्र और यंत्रविद्या, भूत-प्रेत की विद्या, इच्छानुसार देह धारण करने की विद्या, देवता, राक्षस और यक्षों की विद्या, अन्तर्धान और प्रकट होने की विद्या, मारने, जीवित करने और रक्तशोषण करने की विद्या, औषधियाँ, रसायन, पाक बनाने की विद्या, ज्योतिष, गणित, शरीर के अवयवों को अलग करना और पुनः जोड़ने की विद्या, जादू, जल के प्रवाह और अग्नि को बाँधने की विद्या, पवन को रोकने-छोड़ने की विद्या, चित्र वर्षण की विद्या, मनमाना विभिन्न पशु पक्षियों का स्वर जानने बोलने की विद्या, अंगभंग करने और अंगसंलग्न करने की विद्या इस प्रकार हमारी मातायें और बहने भी ६४ चौषठ प्रकार की स्त्रीकलाओं में निपुणा थीं। व्यापार करना, नाचना, चित्र-विद्या, न्याय करना, संगीत, विज्ञान, आतिथ्य सेवा, चिकित्सा, ग्रन्थरचना, भोजनविद्या, पाखण्ड, मिथ्या भाषण एवं वाकपटुता जिनका प्रयोग एक मात्र संकटापन्न, स्थिति उत्पन्न होने पर ही स्त्रियें करती थीं, देह का बढ़ाना, घटाना, हाथ की कारीगरी, और धर्म सम्मत साम, दाम, दण्ड भेद की नीतियाँ आदि चौषठ स्त्रीकलायें होती हैं।

विद्वान—

जग में अधिक विद्वान हमसे था नहीं कोई कहीं;
हम ही नहीं हैं कह रहे, है कह रही सारी मही।
पर हाय ! हमसे अनुग, अंगज क्यों सदा जलते रहे
कलिकाल मदिरारमण से मतभ्रष्ट हो बकते रहे ॥१४८॥

सर्व से अधिक विद्वान हम थे, यह बात केवल हम ही नहीं कहते हैं, समस्त संसार कह रहा है। फिर भी हमारे सहवर्त्ती बन्धु और पश्चात्‌वर्त्ती बन्धु हमसे सदा विरक्त और जले-भुने ही रहे, इसका क्या कारण है ? कलियुग के प्रभाव के कारण वे विमूढ़ होकर मनपड़ा बकते रहे हैं।

पुज्यापराजित, नन्दि, नन्दिल, भद्रभुज, श्रुत केवली,
सब थे, चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता धुरंधर निर्मली।
श्री आर्य रक्षितसूरि के सुमनेश सेवक थे रहे;
ये योग चारों आज उनका पूर्ण परिचय दे रहे ॥१४९॥

पूज्यपाद अपराजित, नंदिमित्र, नंदिल, भद्रबाहुस्वामी, श्रुत केवली थे और अतीत चौदह भवों के ज्ञाता थे। श्रीमद् आर्य रक्षितसूरि जम्बू स्वामी के प्रमुख शिष्य थे। ये आचार्य बड़े तेजस्वी थे। इन्द्र इनका परम भक्त था। इन्होंने ४ प्रसिद्ध योग-शास्त्र लिखे हैं जो इनकी प्रखर विद्वत्ता का परिचय दे रहे हैं।

गणधर हमारे एक दश कैसे प्रखर विद्वान थे;
उनके विनिर्मित देखलो ये ग्रन्थ वे गुणवान थे !

थे ग्रन्थ ऊमास्वाँति ने शतपंच संस्कृत में लिखे;
थे चैत्य तक भी सूत्र मुँह से बोलते उनके सखे ! ॥१५०॥

इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सौधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्प, अचलाभ्राज, मेतारज और श्रीप्रभास ये ११ भगवान महावीर के गणधर थे। ये सब ही प्रकाण्ड पंडित व विद्वान थे। जैन-धर्म के सब शास्त्र इन ११ गणधरों ने लिपिबद्ध किये हैं।

उमास्वातिवाचक–ये संस्कृत प्राकृत के अद्वितीय विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत में ५०० ग्रन्थ लिखे हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' इन्हीं का रचा हुआ है। एक बार इन्होंने सरस्वती की पाषाण-मूर्ति से भी अपने श्लोकों का उच्चारण करवाया था।

श्री कुंदकुंदाचार्य का साहित्य कितना श्लिष्ट है !
देवर्धिगणि ने शास्त्र विस्मृत सब रचे फिर इष्ट हैं !
कविराज शेखर चक्रपति से याद जब हमको नहीं !
निर्लज्ज कितने हाय ! हैं, बोलो पतन क्यों हो नहीं ॥१५१॥

कवि राजशेखर–ये आचार्य महाकवि थे। ये वि० सं० १४०५ में विद्यमान थे। इन्होंने श्रीधरकृत 'न्यायकंदली' की टीका लिखी है, तथा 'प्रबन्धामृतदीपिका' नाम का सात हजार श्लोकों का एक ग्रंथ लिखा है।

कुन्दकुन्दाचार्य–ये महान आचार्य विक्रम की प्रथम शती में हुए हैं। इन्होंने 'प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार, नियमसार, द्वादशा-

किस भाँति मूत्राधार से श्री पादलिप्ताचार्य ने—
कंचन किया रज-धूल का; माना जिन्हें नागार्य ने।
शिवकोटि, वासवचन्द्र को जब हा! नहीं तुम जानते!
सीमा कहाँ बोलो सखे! अब हो पतन की मानते! ॥१५२॥
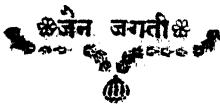
ऐसे ऐसे प्रखर विद्वान, प्रकाण्ड तेजस्वी, महान् आदर्श महाकवियों को पूज्याचार्यों को जब हम नहीं जानते हैं या भूल चुके हैं तो बतलाइये हमारा अधः पतन क्यों नहीं होवे और ऐसे अधोपतन की सीमा भी कहाँ होगी? हमारे लिये यह कितनी निर्लज्जता की बात है।

नुप्रेक्षा और दर्शनप्राभृतादि प्राकृत ग्रंथ लिखे हैं। ये आचार्य अधिक प्रसिद्ध हैं।

देवर्द्धीगणिक्षमाश्रमण—ये विक्रम की छठी शती में मौजूद थे। ये लोहिताचार्य के शिष्य थे। इनके समय में जैन-शास्त्रों का अस्तित्व नाम मात्र को रह गया था। वल्लभीपुर में पुनः इन्होंने समस्त जैन-ग्रंथों को पुस्तकबद्ध किया। इनके समय में केवल एक पूर्व का ज्ञान रह गया था।

पादलिप्ताचार्य—ये महाविद्याओं में पारगामी थे। इन्होंने 'तरंग-लोला, निर्वाणकलिका तथा प्रश्नप्रकाश' नाम का ज्योतिष शास्त्र लिखा है। नागार्जुन ने भी इन्हें अपना गुरु माना था। नागार्जुन आयुर्वेद के धुरन्धर ज्ञाता हो गये हैं। ये जड़ी बूटियों से स्वर्ण बनाते थे। इस का इन्हें बड़ा गर्व था। एक दिन आप पादलिप्ताचार्य जी से मिलने

नवरत्न विक्रम भूप के पाण्डित्य में प्रख्यात हैं;
साहित्य रचना आज भी जिनकी अनूठी ख्यात है।
लेकिन दिवाकर सेन की प्रतिभा नहीं ये सह सके;
सम्राट विक्रम जैन फिर होये बिना नहिं रह सके ॥१५३॥

वादीन्द्र, वादी, हेम, हरि, श्रीपाल, परिमल हो चुके;
कविवर धनंजय, वज्रस्वामी से विशारद हो चुके।
ज्योतिष, गणित, श्रुति; शास्त्र के ये सब प्रवर पण्डित हुये;
इनका सदय साहित्य पाकर आज हम मण्डित हुये ॥१५४॥

गये, लेकिन उन्हें वन्दन नहीं किया। पादलिप्ताचार्य ने अपने मूत्र से एक पत्थर को स्वर्ण-खण्ड बना दिया, यह देखकर नागार्जुन बड़े लज्जित हुए और पादलिप्ताचार्य को वंदन किया।

शिवकोटि—ये प्रसिद्ध समन्तभद्र के शिष्य थे। इन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्र की टीका की है।

वासवचन्द्र—चालुक्य नरेश ने इनके प्रखर पाण्डित्य एवं प्रतिभाशौर्य्य से मुग्ध होकर इनको सरस्वती की उपाधि प्रदान की थी।

सिद्धसेन दिवाकर—ये संस्कृत के बड़े शक्तिधर विद्वान हो चुके हैं। राजा विक्रम के प्रसिद्ध नवरत्न भी इनके आगे निस्तेज हो गये थे और विक्रम ने जैन-धर्म स्वीकार किया था। इन्होंने कल्याणमन्दिर-स्तोत्र रचकर महाकालेश्वर के लिंग में से भगवान पार्श्वनाथ की मूर्त्ति उद्घटित की थी।

वादीन्द्र देवसूरि—ये आचार्य सौराष्ट्रपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। राजा ने खुश होकर इन्हें वादीन्द्र की उपाधि अर्पण करी।

उक्त सर्व महापुरुष प्रखर विद्वान्, महाकवि, अनेक विषयों के धुरंधर ज्ञाता और अनेक विविध विषयों के शास्त्रों के कर्त्ता हो चुके हैं। इनके कल्याण कारी भावों से परिपूर्ण साहित्य को प्राप्त कर आज हम अपना गौरव व शोभा स्थापित कर सके हैं।

'स्याद्वादरत्नाकर', 'प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार' जो समस्त संस्कृत साहित्य में अद्वितीय ग्रन्थ माने जाते हैं। इन्हीं आचार्य के बनाये हुए हैं।

वादी देवसूरि—देवसूरि नाम के एक आचार्य मुगल सम्राट जहाँगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान आचार्य थे और इन्हें 'वादी' की उपाधि थी।

हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हें 'मलधारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने जीव-समास, भवभावना, शतकवृत्ति, उपदेश मालावृत्ति' आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान थे। ये विक्रम की छटी शती में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दशवैकालिकवृत्ति, ज्ञानचित्रिका; लग्नकुण्डलिका योगदृष्टिसमुच्चय, पंचसूत्र वृत्ति इत्यादि।

एक इसी नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगोतम कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रबोधादि' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

अकलंक, कविपति वाग्भट को भूल हम किस विधि सकें ?
क्या बौद्ध उनके सामने शास्त्रार्थ में थे टिक सके ?
कविभूप कालिदास हल जिस प्रश्न को नहिं कर सके ?
उस प्रश्न को धनपाल कविवर सहज हल थे कर सके ॥१५५॥

श्रीपाल—यह सौराष्ट्र पति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा संमान करता था।

परिमल—ये बड़े भावुक कवि और विद्वान थे।

धनंजय—इस नाम के एक महाकवि विक्रम की ९ वीं शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्यिक-संसार जानता है। इनके बनाये हुए अनेक ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं। 'द्विसंधानमहाकाव्य' जिसके प्रत्येक श्लोक से दो-दो कथाओं का अर्थ निकलता है तथा 'धनंजय-नाममाला' आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

वज्रस्वामी—इनकी स्मरण शक्ति बड़ी प्रबल थी। आठ वर्ष की आयु तक इन्होंने श्रवणमात्र से ११ अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। पश्चात् आचार्य सिंहगिरि के पास इन्होंने व्रत ग्रहण किया। ये १० पूर्व के ज्ञाता और वैक्रियलब्धि-धर थे। इनका स्वर्ग-गमन महावीर सं० ५८४ में हुआ।

अकलंक—ये प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने अनेक बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था और जैन-धर्म का अतिशय उन्नति की॥

वाग्भट—ये महाकवि थे। वाग्भटालंकारसटीक, नेमिनिर्माण-काव्य, काव्यानुशासनसटीक इनके रचे हुए ग्रन्थ हैं। संस्कृत-साहित्य-जगत् में इनका सम्मान महाकवि कालिदास के समतुल है।

धनपाल—महाकवि धनपाल महाकवि कालिदास के समकालीन

कविवर दिवाकर ग्रंथ कितने कुल मिलाकर लिख गये?
इतने कि संभव में कोई नहीं हैं लिख गये।
कविभूप, कालीदास, होमर, शेक्सपीयर मान्य हैं;
श्रीमाल, मण्डन, चक्रवर्ती भी न पर अब मान्य हैं॥१५६॥

ऐसे महान विद्वान एवं महाकवियों को कैसे भूला जा सकता है जिन्होंने हठाग्रही बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया, कालीदास जैसे महाकवि की प्रतिभा को भी चकित किया और जिन्होंने ५००-५०० ग्रंथ लिखे। संसार के सर्व विद्वानों एवं महाकवियों का हम मान करते हैं परन्तु हमारे उल्लिखित नामों के विद्वानों एवं महाकवियों को तिरस्कृत, विस्मृत होते कैसे सहन कर सकते हैं।

हैं। 'तिलक मञ्जरी' जो कादम्बरी के जोड़ का ग्रन्थ है आपने लिखा है।

श्रीमाल—ये प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। आपने भी संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

मण्डन—ये शक्तिधर संस्कृत एवं प्राकृत के पंडित थे। इन्होंने अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता था। इनकी स्त्री भी बड़ी विदुषी थी। ये माँडू (माण्डवगढ़) के रहने वाले थे।

जयशेखरसूरि—ये आचार्य महेन्द्र प्रभसूरि के शिष्य थे और विक्रम की १५ वीं शती में विद्यमान थे। इन्होंने उपदेश-चिन्तामणि, प्रबोधचिन्तामणि, जैनकुमारसंभवमहाकाव्य आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। इनको तत्कालीन साहित्य-संसार ने कवि चक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की थी।

आनंदघन के काव्य की रसयुक्त रचना देखिये;
बस सूर-तुलसी सा मजा इनके पदों में लेखिये।
कविराज जटमल की लता है आज भी फहरा रही;
श्रीमान् लोंका शाह की है यशध्वजा फहरा रही ॥१५७॥

हिन्दी साहित्य संसार में आनन्दघन की विशेष ख्याति है। महाकवि सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं में जो

आनंदघन—ये महान आध्यात्मिक विरक्त साधु थे। ये विक्रम शती १७ वीं मे विद्यमान थे। इनके पद्य बड़े प्रसिद्ध हैं। सूरदास के सदृश इन्होंने कितने ही पद्य रचे हैं। आनंदघन का सम्मान अब दिन-दिन बढ़ रहा है।

जटमल—ये जैन नाहर गोत्र के थे। ये हिन्दी की खड़ी बोली के आदि लेखकों में गिने जाते हैं। 'गोरा बादल की बात' इन्होंने खड़ी बोली में लिखी है जो अधिक प्रसिद्ध है। प्रेमलता भी इनकी अधिक प्रसिद्ध है। अब धीरे धीरे इनकी अनेक फुटकल रचनाओं का पता लग रहा है। ये १६ वीं शती में हुए हैं। (कवि जटमल का परिचय वीणा मासिक पत्रिका के श्रावण माह ६ सं० १९९५ के अंक में प्रकाशित पं० सूर्यकरण पारीक एम० ए० के लेख के आधार पर दिया गया है।)

लोंकाशाह—अरहटवाड़ा (सिरोही) के धनी शाह हेमाभाई के पुत्र थे। माता पिता की मृत्यु के पश्चात् वे अहमदाबाद जाकर रहने लगे। बादशाह मुहम्मदशाह इनकी प्रतिभा से बड़ा मुग्ध हुआ और इन्हें अपना प्रमुख कोषाध्यक्ष बना दिया। स्वार्थी अमीर, उमरावों ने

आनन्द है वही आनन्द इनकी रचनाओं में भी निहित है। जट-मल भी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। प्रेमलता नामक ग्रन्थ इनका अधिक प्रसिद्ध है। श्रीमान्लोंका शाह ने बत्तीश जैनागमों की प्रतिलिपियाँ करके युगांतर उपस्थित कर दिया।

शास्त्रज्ञ आत्माराम, हुक्मीचन्द्र, लवजी हो गये;
पंडित यशोपाध्यायजी शतग्रन्थ कर्ता हो गये।

बादशाह मुहम्मदशाह को विष देकर मार डाला, इससे इनको संसार से घृणा उत्पन्न हो गई और ये नौकरी छोड़कर पाखण्ड एवं आडंबर के विरुद्ध प्रचार करने लगे। जैन यतियों में फैले हुये मिथ्याडंबर का इन्होंने घोर विरोध किया। बत्तीस जैनागमों की इन्होंने प्रतिलिपियाँ कीं। स्थानकवासी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक ये ही हैं। अलवर में इनका स्वर्गवास हुआ। कहते हैं विरोधियों ने इनको भोजन में विष दे दिया था।

आत्मारामजी—इनके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। ये महान आचार्य अभी हाल में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती के ही समय में हो चुके हैं। आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं और आज आपके नाम से कितनी ही सभाएँ, संस्थाएँ चल रही हैं। इनका विस्तृत जीवन-चरित्र भी निकल चुका है। इनका स्वर्गगमन सं० १९४० में हुआ है।

हुकमीचन्द्रजी—ये आचार्य सं० १९१६ में स्वर्गस्थ हुये थे। ये

क्या सूरिवर राजेन्द्र को यह जग नहीं है जानता ?
इनका विनिर्मित कोष है प्रत्येक जनपद मानता ॥१५८॥

कठोर तपस्वी एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। इनके अनुयायियों की संप्रदाय इंनके नाम से प्रसिद्ध है।

लवजी—लवजी ऋषि के नाम से विख्यात हैं। इन्होंने अपना अलग सम्प्रदाय स्थापित किया। विरोधियों की प्रेरणा से इन्हें विषमिश्रित आहार दिया गया और उससे इनकी मृत्यु हुई।

यशोविजय जी उपाध्याय—ये महान पण्डित साधु थे इन्होंने लगभग १०० ग्रंथों की रचना की है। ये १७ वीं शती में हुए हैं। 'ज्ञान बिंदुप्रकरण, ज्ञानसार, नयप्रदीप, अध्यात्मसार द्रव्यानुयोग तर्कना, प्रतिमाशतक', आदि इनके अनुपम ग्रंथ हैं।

राजेन्द्रसूरि—ये महान् आचार्य अभी हो गये हैं। इनका जन्म सं० १८८३ में हुआ था। इन्होंने एक 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' लिखा है जो सात भागों में छपकर तैयार हुआ है। दुनियाँ के समस्त सर्वश्रेष्ठ विद्याप्रेमियों ने इस ग्रंथ की मुक्त कण्ठ से प्रसंशा की है।

जर्मन विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि इस ग्रंथ को हम बर्लिन के मुख्य पुस्तकालय में लाकर हम समूचे जैन धर्म को ही नहीं वरन् भारत के अधिकांश धर्मों को जर्मनी में ले आये हैं। सातों भागों की पृष्ठ संख्या १०७४६ है और प्रथम संस्करण का मूल्य रु० २३७ है। ये आचार्य कालिकाल सर्वज्ञ की उपाधि से अलंकृत हैं। आपकी जीवनी छप चुकी है।

हमारा साहित्य

साहित्य सरवर है हमारा कमल भावों से भरा;
जिसमें अहिंसा जल तरंगे लहरती हैं सुन्दरा।
शुचि शील सौरभ से सुगन्धित हो रही है भारती;
सद्ज्ञान परिमलयुक्त है सलिलोर्मि करती आरती ॥१५६॥

हमारा साहित्य रूपी निर्मल सरोवर कमल रूपी सुन्दर भावों से परिपूर्ण है। उसमें अहिंसा रूपी सुन्दर लहरें नर्तन करती रहती हैं। परम पवित्र शील रूपी कमलगंध से सारा भारतवर्ष सुगन्धित हो रहा है और सद्ज्ञान रूपी कमल पराग से युक्त होकर अहिंसा रूपी लहरें सर्वदा सरोवर में अभिवादन करती रहती हैं।

उस आदि प्राकृत में हमारा बद्ध सब साहित्य है,
पर आज प्राकृत भाषियों का अस्तमित आदित्य है।
ऐसे न हम विद्वान हैं—अनुवाद रुचिकर कर सकें!
जैसा लिखा है, उस तरह के भाव में फिर रख सकें ॥१६०॥

हमारा अधिकांश प्राचीन मूल साहित्य प्राकृत भाषा में है और आज प्राकृत भाषा विज्ञों का एवं भाषियों का नितांत अभाव-सा है। हम ऐसे विद्वान भी नहीं हैं कि मूल प्राकृत ग्रन्थों का अर्थपरिवर्तन न करते हुए अक्षरशः अनुवाद कर सकें।

है बहुत कुछ तो मिट गया, अवशिष्ट भी मिट जायगा;
हो जायगा वह नष्ट जो कर में हमारे आयगा!

हे आदि जिनवर! आपके ये वाक्य हितकर मिट रहे,
उद्दाम होकर फिर रहे हम, हैं परस्पर लड़ रहे! ॥१६१॥

हमारे मूल साहित्य का अधिकांश भाग तो नष्ट हो चुका है और जो कुछ अंश बचा हुआ है, वह भी हमारी अपहेलना के कारण नष्ट हो जायगा। हम कुपुत्रों के करों में जो भी आ पड़ेगा, वह नष्ट ही होगा। हे भगवान आदिनाथ! आपके ये कल्याकारी वाक्य इस प्रकार नष्ट होते जा रहे हैं। हम उच्छृंखल होकर जीवनयापन कर रहे हैं और परस्पर लड़ रहे हैं।

भण्डार जयसलमेर, पाटण, के हमारे लेख्य हैं;
क्रिमि, कीट, दीमक खा रहे हैं, हाय! यह भी पेख्य हैं।
मुद्रित करा जे आप हम, यह भाव भी जगता नहीं!
भवितव्यता कैसी हमारी, जान कुछ पड़ता नहीं॥ १६२॥

जयसलमेर और पाटण के जैन ज्ञान भण्डार अति विपुल हैं। परन्तु दुःख है कि ऐसे महान और साहित्य के समृद्ध भण्डारों की सम्यक व्यवस्था नहीं है। इन भंडारों में रक्खे हुये हस्तलिखित ग्रन्थों को हम प्रकाशित करावें यह भावना भी उत्पन्न नहीं होती! हे भगवान्! हमारा भविष्य कैसा है? कुछ समझ में भी नहीं आता है।

आगम—

हा! लुप्त चोदह❀ पूर्व तो हे नाथ! कब से हो गये।
हा! कर्म दर्शक शास्त्र ये कैसे मनोहर खो गये!

❀चौदह पूर्वग्रंथ—१ उत्पाद २ अग्रायणीय ३ वीर्यप्रवाद ४ अस्तिनास्ति-

जब नाम उनका देखते हैं, हाय! रो पड़ते विभो!
कैसे मनोहर नाम हैं! सिद्धान्त होंगे क्या प्रभो? ॥ १६३॥

जब हम नष्ट हुये चौदह पूर्व ग्रन्थों के नाम पढ़ते हैं तो हमारा हृदय विदीर्ण हो उठता है। प्रत्येक पूर्वग्रंथ का नाम ही जब इतना सारगर्भित है तो उस ग्रन्थ में कैसे अपूर्व सुन्दर सिद्धान्त होंगे।

कितने हमारे शास्त्र थे हा! शेष आधे भी नहीं;
इन अर्ध शास्त्रों में कहें क्या अंश पूरे भी नहीं।
द्वादशिक वत्सर विभुवर! रुग्ण पर श्रावण हुआ;
अवशिष्ट सब साहित्य का भी अन्त फिर पूरा हुआ ॥१६४॥

हमारा साहित्य इतना समृद्ध एवं विशाल था कि आज सहस्रों ग्रंथ खोकर वह आधा भी नहीं रहा है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त जैन के समय में १२ वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा और उस दुष्काल में रहा-सहा साहित्य भी नष्टप्रायः हो गया। रोगी का रोग श्रावणमाह में प्रवेश कर जिस प्रकार चरमता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार हमारा क्षीण होता हुआ साहित्य द्वादश वर्षीय दुष्काल को प्राप्त कर चरम विनाश को प्राप्त हो गया।

देवर्धिगणि आगमनिगम हैं नव्य विधि से लिख गये;
परिलुप्त होते जिन वचन को प्रकट फिर से कर गये।

प्रवाद ५ ज्ञानप्रवाद ६ सत्यप्रवाद ७ आत्मप्रवाद ८ कर्मप्रवाद ९ प्रत्याख्यानप्रवाद १० विद्यानुप्रवाद ११ अवंध्य १२ प्राणायुः १३ क्रियाविशाल १४ लोकबिंदुसार।

अनुवाद, टीका, भाष्य फिर पाकर समय बनते रहे;
नव नव्य इन पर ग्रन्थ फिर विद्वान जन लिखते रहे ॥१६५॥

देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने जो कुछ ग्रन्थ या ग्रंथांश कंठस्थ रह गये थे, उनको लिपिबद्ध किया और इस प्रकार जैन साहित्य को पूर्व नष्ट होने से बचाया। समय समय पर फिर इन ग्रन्थों पर टीकायें होती रहीं, इनका अनुवाद और भाष्य होते रहे और अनेक विद्वानों ने इनका सार चुन-चुनकर अनेक नवीन ग्रन्थों की रचनायें कीं।

विश्रुत पुरातन वेद जिन साहित्य के ही अंश हैं;
अब जिन वचन से हो विलग वे हो गये अपभ्रंश हैं।
यो छिन्न होकर भी अभी साहित्य है पूरा अहो!
जीवन जगाने के लिये है आज भी शूरा अहो! ॥१६६॥

जैन साहित्य के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों की रचना भगवान् आदिनाथ के गणधरों ने की थी। कालान्तर में वेदों में परिवर्तन होता चला जाता रहा और फल यह हुआ कि आज वे जैन साहित्य से सर्वथा भिन्न प्रकार के प्रतीत होते हैं। इस प्रकार आज हमारा साहित्य छिन्न-भिन्न होता ही रहा फिर भी जो कुछ साहित्यांश अविशष्ट है जीवन को पावन-पवित्र बनाने के लिये तो समर्थ है।

दुनियाँ हमारे दर्शनों को देख विस्मित हो रही;
इन दर्शनों से ज्ञान की विकशित कलायें हो रही
उन पूर्वजों ने दर्शनों में तत्त्व कैसा है भरा!
अन्यत्र ऐसा आज तक कोई किसी ने नहिं करा ॥१६७॥

हमारे दर्शन शास्त्रों को पढ़कर आज संसार के विद्वान आश्चर्य करते हैं। इन दर्शन शास्त्रों में जिन तत्त्वों का जिस प्रकार का विवेचन, व्याख्यान हैं, उन तत्त्वों का वैसा विवेचन-व्याख्यान संसार में अन्य किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलेगा।

सिद्धान्त ऐसे जटिल हैं, हम समझ भी सकते नहीं;
इस हेतु, तो इनकी उपेक्षा अज्ञ हम करते नहीं ?
सिद्धान्त जिन सिद्धांत-से पाश्चात्य स्थिर है कर रहे;
वे देख लो, हैं जीवशोधन तरु लता में कर रहे ॥१६८॥

हमारे आगमों के सिद्धान्त ऐसे जटिल हैं कि हम उनको सहज समझ नहीं सकते। संभव है हमारी यही अज्ञानता उनके प्रति हमारी अवहेलना का कारण हो। पश्चिम प्रदेशों के विद्वान अब वे सिद्धान्त स्थिर कर रहे हैं जो युगों पुर्व निश्चित कर चुके हैं। वृक्ष और लताओं में वे पहिले प्राण नहीं मानते थे, अब वे इनमें प्राणों का होना सिद्ध कर रहे हैं।

यह मत अहिंसावाद का शिव शान्ति का सन्देश है;
हर ग्रन्थ को तुम देखलो, उसमें यही आदेश है।
हम कह चुके थे ये कभी से पूर्व लक्षों वर्ष ही;
है कर रहा उपदेश फिर भी आज भारत वर्ष ही ॥१६९॥

आप हमारे प्रत्येक ग्रन्थ का मनन कीजिये। प्रत्येक ग्रन्थ में आपको हर स्थल पर वही आदेश मिलेगा कि विश्व व्यापी शान्ति की स्थापना करने के लिये आहिंसात्मक आचरण व्यवहार का सर्वत्र एक-सा प्रचार होना अनिवार्य है। लाखों

वर्ष पूर्व भी हमने संसार को यही उपदेश दिया, आज भी भारतवर्ष के महापुरुष महात्मा गांधी यही उपदेश पुनः संसार को दे रहे हैं।

अंग—

साहित्य कितना उच्च है ? तुम अंग पढ़कर लेखलो;
आचार का, व्यवहार का सब मर्म इनमें पेखलो।
व्रत, सत्य संयम, शील का उपदेश इनमें है भरा;
अवलोकते ही कह पड़ोगे-क्या विवेचन है करा। ॥१७०॥

जब आप हमारे अंगशास्त्रों को पढ़ेंगे और उनमें आचार पर, व्यवहार पर तप, व्रत, संयम, शील आदि धर्मव्रतों पर जब हमारा विवेचन, व्याख्यान पढ़ोगे तो आप मंत्रमुग्ध हो जावेंगे और कहेंगे कि कितना उत्तम श्रेणी का साहित्य है।

तुम ग्रन्थ आचारांग से कुछ शोध कर तो दो बता;
सूत्रोत्तराध्ययन हम देंगे बाद में तुमको बता।
अनुयोग, नन्दीसूत्र का हरिद्वार तुमको खोल दें;
ये मुक्ति-माणिक-रत्न-भूत हैं, आपको अनमोल दें ॥१७१॥

सूत्रोत्तराध्ययन की चर्चा को तो अभी छोड़ देते हैं। आप कृपा करके आचारांगसूत्र की समानता का अन्य ग्रंथ तो

अंग—१ आचार २ सूत्रकृत ३ स्थान ४ समवाय ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति ६ ज्ञाताधर्मकथाः ७ उपासकदशाः ८ अन्तकृतदशाः ९ अनुत्तरौपपातिकदशाः १० प्रश्नव्याकरणानि ११ विपाकसूत्र १२ दृष्टिवाद (लुप्त हो गया)।

शोध करके बतलाइये। अनुयोग और नन्दीसूत्र को आप पढ़कर और उनमें बताये हुये मार्ग का अनुशरण कर आप मोक्ष के द्वार में प्रवेश कर सकते हैं। ये सर्व सूत्र कल्याणकारी, सुखद एवं सुन्दर भावों से भरे पड़े हैं, हम इनका वाचन आपके लिये निष्शुल्क कर देते हैं।

उपाङ्ग —

सद्भाव कहते हैं किन्हें? क्या रूप उनका सत्य है?
तप, दान, ब्रह्माचार क्या हैं? क्या अहिंसा कृत्य है?
अपवर्ग, ग्रह, नक्षत्र का यदि विशद वर्णन चाहिये।
तब द्वादशोपांग तुमको आद्यन्त पढ़ने चाहिए ॥१७२॥

आपको हमारे उपांगशास्त्रों में सद्भावों के सत्य स्वरूप पर, तप, दान, शील और अहिंसा पर विस्तृत विवेचनात्मक व्याख्यान और सौरजगत का पूर्ण सुन्दर वर्णन मिलेगा। आपको हमारे १२ उपांग अवश्य पढ़ना ही चाहिये।

पयन्ना—

ये दश पयन्ना ग्रंथ तुमने आज तक देखे नहीं;
जिनराज, त्यागी, सिद्ध के क्या रूप हैं, पेखे नहीं,

उपांग—१ औपपातिक २ राजप्रश्नीय ३ जीवाभिगम ४ प्रज्ञापना ५ सूर्यप्रज्ञाप्ति ६ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ७ चन्द्रप्रज्ञप्ति ८ निरयावलिका ९ कल्पावतंसिकाः १० पुष्पिकाः ११ पुष्पिचूलिका १२ वृष्णिदशाः।

पयन्ना—१ चतुश्शरण २ आतुरप्रत्याख्यान ३ भक्तपरिज्ञा ४ संस्तार

स्याद्वाद कहते हैं किसे ? क्या मोक्षका सद्रूप है ?
ये मोक्ष-जिनपद-मर्म के साहित्यदर्पणरूप हैं ॥१७३॥

आपने हमारे पयन्ना ग्रंथों का अभी तक अवलोकन नहीं किया है। इन पयन्ना ग्रंथों में तीर्थंकर, आचार्य, सिद्धपदों की व्याख्या की गई है और अनेकान्तवाद और मुक्तिलोक पर अत्यंत गहरा व्याख्यान है।

छेद-सूत्र—

काठिण्य साध्वाचार का छः छेद-सूत्रों में पढ़ो,
इनमें कथित आचार को तुम पाल जिनपद पर चढ़ो।
जब अंगचालन सूक्ष्म भी सावद्य है माना गया;
तब पार्थमय व्यवहार पर कितना लिखा होगा गया ॥१७४॥

छेदसूत्रों में साधु के करने योग्य आचारों का विशद वर्णन है; जिनको पाल कर साधु केवलीपद तक जा सकता है और मोक्षगतिप्राप्त कर सकता है। अंगोंका निरर्थक सूक्ष्म संचालन तक में जब पाप माना गया है तो वैभव एवं भौतिक पदार्थों की भोगक्रियाओं से होने वाले पापों पर कितना गहरा एवं विस्तृत विचार-किया गया होगा। इसकी स्वयं पाठकगण कल्पना कर सकते हैं।

---

५ तंडुलवैतालिक ६ चन्द्रवेध्यक ७ देवेन्द्रस्तव ८ गणितविद्या ९ महाप्रत्याख्यान १० वीरस्तव।

छेदसूत्र— १ निशीथ २ महानिशीथ ३ व्यवहार ४ दशाश्रुतस्कन्धे ५ बृहत्कल्प ६ पंचकल्प।
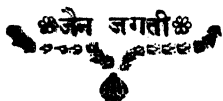
संसार के सब साधुओं का एक सम्मेलन करो,
फिर त्याग किसका है अधिक, निष्पक्ष हो चर्चा करो।
इन छेदसूत्रों से इतर हर ग्रंथ की तुलना करो,
सिद्धान्त जिनका श्रेष्ठ हो; सब जन उसे स्वीकृत करें ॥१७५॥

एक अखिल जगतीय साधु सम्मेलन करके हम निष्पक्ष होकर यह शोधने का प्रयत्न करें कि इनमें वह कौन सा साधु वर्ग है जो त्याग में अन्य सर्व साधुवर्गों से अधिक है और साथ में ही हमारे इन छेदसूत्रों की अन्य साध्वाचार पर लिखे गये ग्रंथों से भी तुलना करें और फिर जिन ग्रंथों के सिद्धान्त अधिक महत्व के घोषित हो इनका पालन करने की सब प्रतिज्ञा करें।

चार मूल व दो चूलिका सूत्र—

चत्वार सूत्रों में हमारे तत्त्व सारे आ गये;
जीवन, मरण भेद वर्णित चूलिका में आ गये।
बस सूत्र अंगोपांग में कर्त्तव्य वर्णन आ गया;
इनमें विवेचन पूर्ण साङ्गोपाङ्ग जग का आ गया ॥१७६॥

चार मूल सूत्रों में सर्व धर्म तत्त्वों का विशेष परिचय है और चूलिका सूत्रों में जीवन और मृत्यु पर सविस्तार विवेचन व्याख्या है। अंग और उपांग सूत्रों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार है। इस प्रकार हमारे ग्रन्थों में चराचर लोक का धार्मिक एवं भौतिक दृष्टियों से सर्व प्रकार का वर्णन दिया हुआ है।

चार मूलसूत्र—१ उत्तराध्ययन २ आवश्यक ३ दशवैकालिक ४ पिंडनियुक्ति।

धर्मग्रंथ—

इस ग्रंथ 'गोमठसार' के सम ग्रन्थ दूजा है नहीं;
अतिरिक्त इसके मोक्षपद का वर्त्म दूजा है नहीं।
श्रुतिवेद, गीताग्रन्थ के सब सार इसमें भर गये;
सम्पूर्ण मानव धर्म के सिद्धान्त इसमें भर गये ॥१७७॥

जैन धर्म साहित्य में गोमठसारग्रन्थ एक अमूल्य रत्न है। सर्व धर्म सम्प्रदाय इसका अति मान करते हैं। श्रुति, वेद और गीता जिस मानव धर्म का उपदेश करते हैं और मोक्षप्राप्ति का जो साधन बतलाते हैं, वे सब बातें इस एक ग्रंथ के पठन-मनन से प्राप्त हो सकती हैं।

'नवतत्त्व' दृश्यादृश्य जग का एक सत्तम ग्रन्थ है;
इस ग्रन्थ में नव तत्त्व जग के कह गये निर्ग्रन्थ हैं।
यदि सूत्र 'तत्त्वार्थाधिगम' तुमने न देखा हो कभी;
तुम मनुज नहीं, खर मूर्ख हो विद्वान होकर भी अभी॥१७८॥

जैन साहित्य का नवतत्त्व ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है आश्रव, संवर आदि नव तत्त्वों का इसमें विशद वर्णन है। वह विद्वान ही एवं मुमुक्षु ही कैसा अगर उसने 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' का अध्ययन नहीं किया हो। ये दोनों ग्रंथ भारत के दर्शनग्रन्थों में ही नहीं, संसार के दर्शनग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान रखते हैं।

जिन राजवाङ्मय कोष में ऐसे अनेकों ग्रन्थ हैं;
आत्माभिसाधन के लिये बस एक वे शिवपंथ हैं।

दो चूलिकासूत्र—१ नंदीसूत्र २ अनुयोगद्वार सूत्र।

भव भावना, आत्मानुशासन, पुष्पमाला लेखिये;
द्वादशकुलक, निर्वाणकलिका, भावसंग्रह देखिये ॥१७६॥

जैन धर्म साहित्य में ऐसे अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, जिनके मनन, अनुशीलन से हम आत्मा का चरम विकाश कर मोक्ष साधन कर सकते हैं।

न्याय—

हम सप्तभंगीग्रन्थ का यों कर रहे अभिमान हैं;
उपहास के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है ?
इस लोक के परलोक के सब मर्म इसमें हैं भरे;
यह पार्थमय संसार में आलोक स्वर्गिक है अरे! ॥१८०॥

हम सप्तभंगीन्यायग्रन्थ को पाकर गौरव का अनुभव करते हैं। परन्तु संसार ने इसकी अधिकांश में अवहेलना ही की है। इस ग्रन्थ में लोकालोकों का रहस्योद्घाटन किया गया है। इस

भवभावना, पुष्पमाला—ये दोनों ग्रन्थ प्रसिद्ध विद्वान मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि कृत हैं। प्रथम उच्चकोटि का आध्यात्मिक ग्रन्थ एवं द्वितीय धार्मिक उपाख्यानों, उपदेशों का प्रशस्त संग्रह है।

आत्मानुशासन—यह गुण भद्राचार्यकृत एक उत्तम श्रेणी का आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

द्वादशकुलक—यह प्रसिद्ध जिन वल्लभ कृत धार्मिक ग्रंथ है।

निर्वाणकलिका—आचार्य पादलिप्तसूरिकृत अमूल्य ग्रंथ रत्न है।

भावसंग्रह—देवसेनभट्टारक कृत यह भारतीय साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

भौतिक संसार में यह ग्रन्थ स्वर्गिक प्रकाश का उदय करने वाला है।

संसार भर के ग्रंथगिरि पर चाह से पहिले चढ़ो;
पाषाण, तरुवर, पात पर उत्कीर्ण भावों को पढ़ो;
नयवाद जगती में हमारी उतर कर विश्राम लो;
निःकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ फिर है कौन ? उसका नाम लो ॥१८१॥

संसार भर के सम्पूर्ण साहित्य रूपी पर्वतों का पदाचरण करिये, प्रबंध रूपी शिलाओं में निबंध रूपी वृक्षों में और वाक्य रूपी पल्लवों में ग्रन्थित भावों का सूक्ष्म अध्ययन करके हमारी नयवादजगती में आकर विश्राम करिये और फिर बतलाइये कि कौन-सा स्थल किस श्रेणी का है।

साहित्यजग में जैन दर्शन न्याय अति विख्यात है;
पच्चास पुस्तकें इस विषय की उत्तमोत्तम ख्यात हैं।
स्याद्वाद, न्यायालोक औ मार्त्तण्ड विश्रुत ग्रन्थ हैं;
कादम्बरी, रघुवंश के ये जोड़ के सब ग्रन्थ हैं ॥१८२॥

संसार के साहित्य में जैन दर्शन न्याय का अति उच्च स्थान है। हमारे भंडारों में न्याय के केवल उत्तमोत्तम ५० ग्रन्थ ऐसे उपलब्ध हैं जिनकी समता करने वाले ग्रन्थ मिलना कठिन हैं। भाषादृष्टि से वादीदेवसूरिकृत स्याद्वाद रत्नाकर यशोविजयकृत न्यायालोक और प्रभाचन्द्राचार्यकृत प्रमेयकमल-मार्त्तण्डग्रन्थ कादम्बरी एवं रघुवंश की समता के हैं।

रचना*पुराणों की कहो कितनी मनोहर गम्य है!
अन्तर्जगत, संसार का लेखा यहाँ पर रम्य है!
इतिहास, आगम, नरचरित इनको सभी हम कह सकें;
सद्चित्र इनको भूत भारतवर्ष के हम कह सकें ॥१८३॥

हमारे पुराणों की रचना बड़ी ही मनोहर एवं सुबोध है। इनमें सांसारिक आभ्यंतर एवं बाह्यंतर विषयों का अच्छा वर्णन है। ये पुराण भारतवर्ष के अतीत के विशद चित्र हैं, इतिहास हैं, धार्मिक ग्रंथ हैं और महापुरुषों के आदर्श जीवन चरित्र हैं।

चरित्र—

जीवन चरित्रों की कमी भी है न कुछ हमको यहाँ;
हो श्रेष्ठ पुरुषों की कमी इनकी कमी तब हो यहाँ।
जीवन, कथानक, रास से साहित्यगृह भरपूर हैं;
हमको दिखाने के लिये पथ तिमिर में ये सूर हैं ॥१८४॥

हमारे यहाँ अगर महापुरुषों की कमी हो तो जीवनचरित्रों की भी कमी होवें। हमारे साहित्य भण्डार रासों से, जीवनचरित्रों एक कथाग्रन्थों से भरे पड़े हैं। अन्धकारपूर्ण पथ में वे हमको प्रकाश देने वाले सूर्य हैं।

अवकाश तुमको है नही, फिर भी हा! हो नहीं कभी;
पर मात्र कहने से हमारे तनिक तो पढ़लो अभी।

---

*पुराण—आदिपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण, महावीरपुराण, शांतिनाथपुराण, चामुण्डरायपुराण, आदि उच्चकोटि के १२ पुराण हैं।

त्रयषठ शलाका चरित मौलिक अधिक विश्रुति ग्रंथ है;
पौराण, रामायण, महाभारत व गीता ग्रंथ है ॥१८५॥

नहीं तो आप को इस समय ही अवकाश है और नहीं संभवतः फिर कभी मिलेगा; लेकिन हमारी प्रार्थना स्वीकार करके आप हमारे त्रयशठ शलाका चरित्र को कुछ पढ़लें। इस एक ही ग्रन्थ में सर्व पुराणों का, तुलसीकृत रामचरितमानस का, वेदव्यासकृत महाभारत का और कृष्ण की गीता का सम्पूर्ण रहस्य मिल जायगा।

नीति—

सब नीतियों का मर्म चाहो नीति अर्हन् पेखलो;
मनुनीति-सा ही स्तुत्य इसमें नीति वर्णन लेखलो!
यही मजमूआ फौजदारी; हिन्दताजीरात था;
कानून सायर का यही, कानून कर का ख्यात था ॥१८६॥

श्री हेमचन्द्राचार्यकृत अर्हन्नीति को पढ़िये। इसमें मनुनीति का सा ही वर्णन किया गया है। गुजरातपति सम्राट कुमारपाल के राज्य का यही प्रमुख विधान ग्रंथ था। आयातनिर्यात कर, कृषी कर दंडदान आदि सर्व इसी के विधानों के आधार पर निश्चित किये जाते थे तथा न्यायाधिकरण का भी यही प्रमुख विधानग्रंथ था।

जिनराज, मुनि, आचार्य को जब पात्र कर सकते नहीं;
ऐसी दशा में नाट्यलेखन क्या कठिन बनते नहीं?

धर्माभ्युदय, विक्रान्त कौरव, मैथिली कल्याण-से;
फिर भी यहाँ उपलब्ध हैं नाटक मनोहर प्राण से ॥१८७॥

जैन कथानक को लेकर नाटक की रचना करना बड़ा कठिन है। क्योंकि तीर्थंकर, आचार्य एवं साधु का स्वरूप पात्र धारण नहीं कर सकते और ऐसी कोई घटना नहीं, जिसमें कहीं भी इन तीनों का या तीनों में से एक का भाव न हो। ऐसे विकट प्रतिबंध होने पर भी उदय प्रभसूरिकृत महाकाव्य और नाटक और विक्रान्त कौरव और मैथिलो कल्याण जैसे मनोहर भावमयी नाटक विद्यमान हैं।

चंपू—

नाटक जहाँ हमने लिखे, चंपू लिखे थे साथ में;
साहित्य का यह अंग है, कैसे न रखते हाथ में ?
पुरुदेव, चंपू, यशतिलक उत्कृष्ट हैं सब भाँति से;
जिनवाक्कलन सम्पन्न है साहित्यकी सब जातिसे। ॥१८८॥

चंपू साहित्य अपना एक स्थान रखता है। नाटकों की रचना के साथ ही साथ हमने चंपू भी लिखे। पुरुदेव चंपू एवं सोमदेवकृत यशतिलक चंपू उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। जैन साहित्य सब ही प्रकार के साहित्य ग्रन्थों से अलंकृत एवं भरापूरा है।

व्याकरण—

छोटे-बड़े चालीस लगभग व्याकरण के ग्रन्थ हैं;
साहित्य वर्णाकीर्ण गिरे के ये सभी हरिपंथ हैं।

सम्पन्नता सब भाँति ये साहित्य की बतला रहे;
साहित्य सर के पार हमको यान ये पहुंचा रहे ॥१८६॥

जैन साहित्य में चालीस के लगभग व्याकरण ग्रन्थ होंगे। व्याकरण ग्रंथों का स्थान प्रत्येक साहित्य में प्रमुख होता है। क्योंकि बिना व्याकरण का ज्ञान हुये कभी भी सत्य अर्थ समझ में आ ही नहीं सकता अर्थात् व्याकरण ग्रन्थ साहित्य पर्वत के राजपथ हैं; साहित्य सरोवर से पार कराने वाले ये जलयान हैं।

यह शाकटायन व्याकरण सबसे अधिक प्राचीन है;
श्री हेमचन्द्राचार्यकृत व्याकरण उपमा हीन है।
व्युत्पत्ति से हर शब्द की उत्पत्ति हमने है करी;
संस्कृतसुता है मातृभाषा आदि प्राकृत है खरी ॥१९०॥

हमारा शाकटायन व्याकरण एक प्राचीनतम व्याकरण है और हेमचन्द्राचार्य का व्याकरण भी अद्वितीय है। हमारे यहाँ शब्दों की उत्पत्ति एक विशेष उत्पत्ति विधि से की गई है। हमारी प्राकृत भाषा निश्चय से संस्कृत भाषा की माता है।

शाकटायनव्याकरण—महर्षि शाकटायन वैयाकरण विरचित है जो पाणिनि से भी पूर्व हो चुके हैं। दुनिया इन्हें अब तक जैनेतर विद्वान मानती थी लेकिन अब यह सर्व प्रकार सिद्ध हो गया कि शाकटायन जैन थे। मद्रास कालेज के प्रोफेसर मी० गुस्ताव आपटे शाकटायन को जैन मानते हैं और पाणिनि से पूर्व इनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थकार बोपदेव का भी ऐसा ही मंतव्य है।

कोष—

कुछ हेमकृत उस कोष की भी जटिलता तो देखिये;
प्रत्येक अक्षर के वहाँ बस अर्थ नाना पेखिये।
राजेन्द्रसूरीश्वररचित 'अभिधान' नामाकोष-से—
है कौन विश्रुत कोष जग में? शोध लो संतोष से ॥१६१॥

हेमचन्द्रकृत प्रसिद्ध अनेकार्थ शब्द कोष की आप जटिलता देखकर स्तब्ध रह जावेंगे। राजेन्द्रसूरि कृत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के समान संसार में कोई कोष कोटि प्रयत्न करिये, नहीं मिलेगा।

छंदोऽलंकार—

काव्यानुशासन: नाट्यदर्पणवृत्ति कैसे ग्रन्थ हैं;
साहित्य पुष्पित हो रहा कर प्राप्त ऐसे ग्रंथ हैं।
अवयव सभी साहित्य के तुमको यहाँ मिल जायेंगे;
आवाल*जिन साहित्य को साहित्य तरु का पायेंगे ॥१६२॥

हमारा जैन साहित्य सर्वांग सुन्दर है। इसमें सभी प्रकार के ग्रंथ विद्यमान हैं। काव्यानुशासन और नाट्यदर्पणवृत्ति छंद और अलकार के अद्वितीय ग्रन्थ हैं। यह कथन अतिशय नहीं कि साहित्यवृक्ष का आवालस्थल जैन साहित्य है।

महाकाव्य—

उत्कृष्ट काव्यों में भरा साहित्य भूषित जग रहा;
ज्यों पद्मसंकुल रम्य सरवर हो मनोहर लग रहा।

*आवाल—जिस स्थान में वृक्ष पनपता, अपना खाद्य प्राप्त करता है, उसको आवाल स्थल कहते हैं।

है जोड़ के रघुवंश संभव, मेघदूतेत्यादि के;
क्या शब्द परिचय दें यहाँ 'परिशिष्टपर्वे'त्यादि के ॥१६३॥

जिस प्रकार कमलों से पूर्ण सरोवर रम्य लगता है, उसी प्रकार जैन साहित्य उत्कृष्ट महाकाव्यों से पूर्ण सुशोभित हो रहा है। 'परिशिष्ट पर्व' आदि रघुवंश एवं मेघदूत महाकाव्यों की समता रखने वाले महाकाव्य जैन साहित्य में विद्यमान हैं। उनका यहाँ क्या परिचय दे सकते हैं।

ज्योतिष-शिल्प—

श्री जैनज्योतिष, भुवन दीपक से न ज्योतिष ग्रंथ हैं;
ज्योतिष करण्डक विश्व ज्योतिष में अनूपम ग्रन्थ है।
विज्ञान ज्योतिष का भला कैसे न आविष्कार हो;
जब लग्न मुहुर्त का रहा लेखन यहाँ व्यापार हो ॥१६४॥

ज्योतिष साहित्य में श्री जैनज्योतिष ग्रंथ, भुवन दीपक और ज्योतिषकरण्डक ग्रन्थ का प्रमुख स्थान है। हमारे यहाँ वह निमिष, पल, घंट और दिवस की नोंध करने की परिपाटी सदा से चलती आ रही है जिसमें हमने कोई कार्य प्रारम्भ किया और उसका संपादन व अन्त सफलता एवं विफलता पूर्वक हुआ हो। इस प्रकार की लेखन परिपाटी से शुभ अशुभ पलों, दिवसों का एक विस्तृत लेखा तैयार हो गया। इससे प्रेरित होकर फिर हमने ज्योतिष विज्ञान का पूर्ण आविष्कार किया।

मंत्रग्रन्थ—

यह मंत्रबल तो बस हमारा देखने ही योग्य था;
मंत्रबल से सुरभवन में गमन हमारा योग्य था।

अतएव विद्यारत्न, अद्भुतसिद्धि पुस्तक लेख्य है;
आकाशगामी पुस्तिका सब भाँति से समपेख्य है ॥१६५॥

हमारी यंत्रशक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। मंत्रबल से हम देवलोकों में भ्रमण करते थे। विद्य रत्नमहानिधि, अद्भुतसिद्धि विद्या मंत्र और आकाशागामिनी विद्याग्रंथ प्रसिद्ध मंत्रग्रन्थ हैं

हाँ, ग्रन्थ चाहे आपको वैसे कहीं मिल जायेंगे,
पर भाव, भाषा में अधिक कल वे न इनसे पायेंगे।
नख-शिखविवेचन जिस तरह हर तत्त्व का इनमें हुआ;
वैसा न वर्णन आज तक अन्यत्र ग्रंथों में हुआ ॥१६६॥

वैसे तो ग्रंथ आपको सर्वत्र ही मिलेंगे; परन्तु, उनमें न तो ऐसी भाव और भाषा ही होगी और न इस प्रकार पूर्ण और सर्वाङ्ग विवेचन ही होगा।

ऐसा न कोई है विषय, जिस पर न हमने हो लिखा;
जिस पर कलम थी चल गई, बाकी न फिर उसको रखा।
इतिहास, ज्योतिष, नय, निगम, छंदागमालंकार से;
साहित्य संकुल है हमारा, पूर्ण है रसचार से ॥१६७॥

हमने सर्व विषयों पर ग्रंथ लिखे हैं और हर विषय का लेखन चरमांत तक किया है। हमारा साहित्य रसपरिपूर्ण है और इतिहास, ज्योतिष नीति, आगम, निगम, छंद, अलंकारादि सर्व प्रकार के विषयों के ग्रंथ उसमें विद्यमान हैं।

जितने हमारे ग्रन्थ हैं, सबको गिनाने यदि लगें;
संक्षेप में प्रत्येक का कहने विषय कुछ यदि लगे।

८

ऐसे बड़े कितने खड़े पुस्तक नये हो जायँगे,
नामावली विषयावली के ग्रन्थ शत हो जायँगे ॥१६८॥

अगर हमारे सर्व ग्रन्थों की गणना की जाय और साथ में उनके विषयों का भी गणनाक्रम से परिचय दिया जाय तो इस पुस्तक जैसे १०० सौ ग्रन्थ बनेंगे।

कला-कौशल

कितनी कलायें थी हमारी पूर्व हम बतला चुके;
दशचारविद्याविज्ञ पूर्वज पार जिनको पा चुके।
चोषठकलाविद थे पुरुष, बहतर कलाविद नारियाँ;
कौशलकला में देवियाँ थी उस समय सुकुमारियाँ ॥१६९॥

कलाओं का वर्णन जिनका पूर्ण ज्ञान हमारे चौदहविद्याओं के पूर्ण निधान पूर्वजों ने प्राप्त किया था, पूर्व किया जा चुका है। मनुष्य चौषठकल के ज्ञाता थे और स्त्रियाँ बहत्तरकलाओं में दक्ष थीं। ये कोमलांगी ललनायें देवियों के सदृश कला कौशल में दक्ष एवं निपुणा थीं।

शिल्पकला—

ये सब कलायें आज केवल पुस्तकों में सो गईं।
जब थे कलापति मर गये, सतियें कलायेंहो गईं।
कुछ खण्डहरमें रह गईं दब कर तथा भूगर्भ में।
विषण्ण वदन होकर पड़ी कुछ वक्र विकृत दर्भमें ॥२००॥

आज इन कलाओं का केवल मात्र वर्णन पुस्तकों में ही रह

गया है। या कलापतियों की मृत्यु पर ये सब भी सतियें हो गईं हैं कि जिनकी केवल कहानी मात्र रही है। कुछ कलाओं के चिह्न खण्डहरों में और कुछ कलाओं के दर्शन दलदल में फँसी पड़ी खण्डित वस्तुओं में मिलते हैं।

ये आपको भग्नांश, पेखो दूर से ही दीखते;
हा! हंत! जिनमें चील कौवे निडर होकर चीखते।
जो अभ्रभेदी थे कभी, वे आज रजमय हो गये;
आख्यान माण्डव, लक्ष्मणी के हाय! विस्मृत हो गये ॥२०१॥

माण्डवगढ़—यह नगर अति प्राचीन है और मालवा में आया है। इसके अनेक नाम हैं—मण्डपाचल, मण्डपदुर्ग, श्रीमंडप, मंडगिरि आदि। वर्त्तमान् में यह मांडू के नाम से प्रसिद्ध है। मुसलमान शासकों के समय में यह नगर बड़ा अभिराम था। इसमें तीन लाख तो मात्र जैनियों के ही घर थे। इसमें छोटे बड़े ८३ सौधशिखरी जैन-मन्दिर थे। प्रसिद्ध विद्वान मंडन इसी नगर के रहने वाले थे। विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग चतुर्थ पृ० १६६।

लक्ष्मणी-तीर्थ—यह तीर्थ अलिराजपुर स्टेट में आया है। इसके नाम से पता चलता है कि यह लक्ष्मण के समय में अगर नहीं था तो भी लक्ष्मण के नाम के पीछे अवश्य इसकी स्थापना हुई है। वैसे इसके भूगर्भ में से निकलती हुई वस्तुओं के अवलोकन से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है इस तीर्थ के स्थल को ज्यों-ज्यों खोदा जाता है, अनेक अद्भुत-अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। देखो श्री० य० वि० दि० भा० ४ पृ० २३०।

माण्डवगढ़ एवं लक्ष्मणीतीर्थ के खण्डहर देख कर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होता होगा। जिनके विशाल भवन कभी बादलों का मार्ग अवरुद्ध करते थे, आज वे खण्डित होकर धूल में मिले पड़े हैं। दुःख की बात है, आज वहाँ कल कंठध्वनि के स्थान पर चील एवं कौओं की डराने वाली कर्कश ध्वनि सुनायी पड़ती है। ये देखिये, आप को दूर से ही उनके खण्डहर दिखायी दे रहे हैं।

सुरकेत अर्बुदशृङ्ग के, गिरिनार पर्वत के अहो!
तारंग पर्वत, सिद्धगिरि के चैत्यगृह कैसे अहो!

अर्बुदगिरि—यह विशेष कर अभी आबू-पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जैन-तीर्थ की दृष्टि से इसका इस समय भी कितना महत्त्व है। वस्तुपाल तेजपाल का बनाया हुआ जैन-मन्दिर अब भी अपनी प्रकृत दशा में ही विद्यमान है। अनेक यूरोपीय शिल्प-शास्त्री इस मन्दिर की शिल्प-कला देखकर दंग रह गये हैं। इस मन्दिर के बनाने में साढ़े बारह कोटि सुवर्ण मुद्रायें खर्च हुई थीं। ऐसा भव्य मन्दिर विश्व में भी अन्य कठिनतया ही उपलब्ध होगा।

गिरिनारपर्वत—यह जूनागढ़ के पास आया है। भगवान् नेमिनाथ की दीक्षा, उनको केवल ज्ञान और उनका निर्वाण इसी पावन गिरि पर हुआ है। 'यह तीर्थ मूलतः जैनियों का है, बौद्धों का नहीं', ऐसा डा० फर्ग्यूसन मानता है। देखो 'उत्तर हिन्दुस्तान मां जैन-धर्म' पृ० २१६।

तारंग-गिरि—यह तीर्थ मध्य गुजरात में आया है। महेषाणा से रेल जाती है। यहाँ पर भगवान् अजितनाथ का अतीव प्राचीन मन्दिर

सम्मेत शेखर के अभी भी चैत्यगृह सब हैं नये !
वर्षा सहस्रों झेलकर यों रह सके कितने नये ? ॥२०२॥

आबू, गिरिनार, तारंग, शत्रुंजय और सम्मेत शेखर पर बने हुये मंदिर आज भी अभी बने हुए से नवीन प्रतीत होते हैं। कोई बतलावे तो सहस्रों वर्षाकाल के आक्रमण यों सहन कर कितने भवन अब तक अपना अस्तित्व स्थिर रख सके हैं ?

उदयाद्रि का औ खण्डगिरि का नाम तो होगा सुना;
कैसे कलामय स्थान हैं, यह भी गया होगा सुना।

दर्शनीय एवं शिल्प-कला का ज्वलंत प्रमाण है।

सिद्ध गिरि—इसे शत्रुंजय और सिद्धाचल भी कहते है। पालीताणा नगर इसकी उपत्यका में निवसित है। इस तीर्थ की जैन-शास्त्रों में महिम महिमा है। अनंत कोटि साधु एवं केवली इस पर मोक्ष गये हैं। इसकी मंदिरावलि देखते ही ऐसा प्रतीत होता है, मानों अमरपुरी साक्षात् मर्त्यलोक में अवतरित हो गई हो। इस तीर्थ की छटा को देख कर यूरोपीय विद्वान भी कह पड़ते हैं—'ये स्मारक देव-विनिर्मित हैं, मानवी प्रयत्नों से नहीं बने हैं'—देखो उ०हि० मां० जै०धर्म पृ० २१६।

सम्मेतशेखर—यह तीर्थ अति प्राचीन है। इसकी प्राचीनता का अभी कुछ भी पता नहीं चला है। इस पर्वत पर २० तीर्थंकर मोक्ष गये हैं। यह तीर्थ बंगाल में आया है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्रगुप्त, सम्राट संप्रति, कुमारपाल एवं खारवेल ने करवाया है। इस तीर्थ के सब ही मंदिर, स्तूप शिल्पकला के उच्चकोटि के नमूने हैं।

उदयगिरि—ओरिसा की उदयगिरि—इस नाम से यह गिरि प्रसिद्ध है। इस गिरि में रानी और गणेश गुफायें शिल्प कला की

एलोर, ऐजैंटा गुफायें ऐतिहासिक चीज हैं;
ये करकला के कोष हैं, ये सुरविनिर्मित चीज हैं ॥२०३॥

उदयाद्रि, खण्डगिरि की गुफायें तथा ऐलोरा एवं ऐजैंटा की गुफायें अपनी शिल्पकला एवं चित्रकारी के लिये विश्व भर में अति प्रसिद्ध हैं। ये हस्तकला के अद्वितीय आदर्श हैं। आश्चर्य होता है, देवताओं से बनने योग्य ये गुफायें साधारण मानवों के करों से कैसे बनी होंगी।

दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध है। दूसरी इसी गिरि में एक हाथी-गुफा भी है। यह गुफा प्राकृतिक है। डा० फर्ग्युसन लिखता है कि उदयगिरि की गुफाओं की भव्यता, शिल्प की लाक्षणिकता, और स्थापत्य की विगत ये सब इनकी प्राचीनता प्रमाणित करती हैं। देखो उ० हि० मॉ० जैन धर्म पृष्ठ २२१। ये गुफायें कलिंगपति सम्राट खारवेल की बनवायी हुई हैं। इसमें ४४ गुफायें हैं।

खंडगिरि—उदयगिरि की गुफाओं के पश्छिम में खंडगिरि की १६ गुफायें हैं। ये भी सम्राट खारवेल की ही बनवायी हुई हैं। शिल्प की दृष्टि से इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ एवं शिल्प विशारद आमोली, मनमोहन, चक्रवर्त्ती, ब्लोच, फरग्यूसन, स्मिथ, कुमार स्वामी आदि इन्हें जैन गुफा स्वीकार करते हैं। देखो उ० हि० मां० जैन धर्म पृ० २२२।

एलोर-अजंता गुफायें—अब तक सब इतिहासकार इन गुफाओं को बौद्ध गुफायें एक स्वर से बताते आये हैं लेकिन अब ज्यों-ज्यों पुरातत्त्व वैज्ञानिक शोध करते जाते हैं उन्हें अब अपने प्राक्कथन

मथुरा, बनारस, ओरिसा की वह न शोभा है कहीं;
पावापुरी, अमरावती भी रम्य वैसी हैं नहीं।
पर चिह्न इनमें शिल्प के जो भी पुराने शेष हैं,
हा ! गतहुई उस भारती के अंश वे अवशेष हैं ॥२०४॥

में भ्रम होता है और कतिपय शिल्प-विशारद तो यह भी मानने लगे गये हैं कि ये गुफायें भी जैन गुफायें हैं।

मथुरा—वर्तमान मथुरा नगर से ३-४ मील के अन्तर पर अभी कंकाली-टीला का पता लगा है और उसकी खुदाई भी हुई है। इस टीले में से ई० सन के पूर्व की जैन-मूर्तियें, आयागपट्ट, स्तूपखंड निकले हैं। महाक्षत्रपों के राज्य में मथुरा की बड़ी उन्नति थी। क्षत्रप सब जैन-धर्मी थे। देखो 'प्राचीन भारतवर्ष' भाग ३ रा, पृ० २४५ त्रिभुवनदास लहेरचंद्र रचित।

बनारस—यह २३ वे तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की राजधानी थी। उस समय के कितने ही शिल्प-कला के नमूने आज भी भूगर्भ में से देखने को मिलते हैं और यह ऐतिहासिक रूप से भी सिद्ध हो चुका है कि भगवान पार्श्वनाथ की राजधनी काशी (बनारस) थी।

ओरिसा—यह सम्राट महामेघवाहन खारवेल के समय कलिंग राज्यान्तर्गत एक प्रान्त था। इसकी उदयगिरि, खण्डगिरि की गुफायें उस समय के जैन-धर्म की समृद्धि की आज भी पूरी २ झलक देती हैं। देखो उ० हि० मा० जैन धर्म, पृ० २२२।

पावापुरी—यह जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहाँ २४ वें तीर्थंकर प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ है। उनका यहाँ स्मारक मंदिर है। वह अति प्राचीन है और शिल्प-कला का उत्कृष्ट नमूना है।

मथुरा, बनारस, ओरिसा, पावापुरी, अमरावती की आज वह जाज्वल्यता नहीं है। फिर भी प्राचीन शिल्प के कुछ नमूने मिलें हैं और मिलते रहते हैं जो उस विगत हुई जाज्वल्यता का परिचय देते रहते हैं।

यह एक प्रस्तर का बना चौवीस गज का चैत्य है;
यह नर कला तो है नहीं, देवीकला का कृत्य है।
इससे बड़ा संसार में है बिंब कोई भी नहीं;
अनुकूल इसके एक दिन जिन धर्म की सीमा रही ॥२०५॥

मैसूर राज्यान्तर्गत बेलग्राम में एक जैन मूर्ति ७२ फीट ऊँची है [इस मूर्ति की प्रतिष्ठा १० वीं शती में हुई है। इससे हमारी शिल्प-कला की उत्कृष्टता का तो पता लगता ही है लेकिन साथ में यह भी विचारने को मिलता है कि जैन-धर्म प्राचीन काल में दक्षिणी भारतवर्ष में भी समधिक रूप में फैला हुआ था। ऐसी ही एक जैन मूर्ति ५७ फीट ऊँची ग्वालियर राज्य में भी है। यह भी अति प्राचीन है। देखो प्रा० भा० वर्ष का इतिहास

अमरावती—जैन इतिहास की दृष्टि सेअमरावती एक प्रसिद्ध नगरी थी। परन्तु अभी तक अमरावती के ऐतिहासिक स्थल का पता नहीं लगा है डा० स्मिथ अमरावती को मथुरा के पास कहते हैं; देखो उ० हि० मां जैनधर्म पृष्ट २२५। डा० त्रिभुवनदास लहेरचंद्र अपने इतिहास 'प्राचीन भारतवर्ष' के प्र० भा० पृ० १५१ पर लिखते हैं कि वर्तमान में जो अमरावती नगर है यह वह प्राचीन अमरावती नहीं है जिसका जैन इतिहास की दृष्टि से भारी महत्व है।

भाग २ रा० पृ० ३७३, ३७४ पर] इसको देखकर सहसा यही कहा जा सकता है कि यह कर्म मनुष्यों के हाथों संभव नहीं हो सकता, यह तो देवों का कर्म है। इससे ऊँची मूर्ति और कहीं भी संसार में नहीं मिलेगी। जिस प्रकार यह मूर्ति आकाश में बहुत ऊँचाई तक उठ कर सुदूर-दूर की भूमि को अपने प्रभाव से अन्वित रखती है, उसी प्रकार एक समय जैनधर्म भी अपने प्रभाव से सुदूर प्रदेशों को आकर्षित करने वाला होगा।

हा खो गये भूगर्भ में लाखों नमूने शिल्प के !
जब भी मिलेंगे, सिद्ध होंगे पूर्व अगणित कल्प के।
कुछ खो गये, कुछ दूसरों ने छीन हमसे भी लिये;
कुछ यवन अत्याचारियों ने नष्ट खण्डित भी किये ॥२०६॥

हमारी शिल्प कला के लाखों ज्वलंत नमूने तो समय की क्रूरता से भूमि में समा गये, कुछ नष्ट हो गये, कुछ अन्य धर्मावलम्बियों ने अपहृत कर विकृत बना दिये और कुछ मुसलमान आक्रमणकारियों ने नष्ट भ्रष्ट कर डाले। फिर भी ज्यों ज्यों शोध गहरी की जावेगी, हमारे नष्ट प्रायः लुप्त, खण्डित चिह्न त्यों त्यों प्रकाश में अधिकाधिक आवेंगे और वे अगणित वर्षों पूर्व के बने हुये सिद्ध होंगे।

कैसी कलामय थी भला यह शिल्प-कौशल की कला;
कैसे कलायुत टंक होंगी शिल्पशास्त्री की भला।
जब इंच भर के शिल्प में भी माह लगता था अहो !
फिर वस्तु का भी मूल्य कितना सच भला होगा कहो ?॥२०७॥

जब हमारे यहाँ के कारीगर एक इंच भर प्रस्तर भाग में शिल्प करते हुये एक एक माह व्यतीत कर देते थे, वह वस्तु कितनी अमूल्य होगी और वह शिल्पी भी कितना कलावान होगा और वह शिल्प कौशल भी कितना विचित्र होगा और उसकी टाँकी भी कितनी पैनी होगी ?

आयागपट के खण्ड तुम मथुरापुरी में लेख लो;
कर दो तुम्हें भी हैं मिले कर की कला तो पेख लो।
वे मनुज थे या और थी वह नर कला या सुर कला ?
थे कर कलामय या प्रभो थी उन करों में वरकला ? ॥२०८॥

मथुरा के कंकाली टीले से जो आयागपट्ट के दो खण्ड निकले हैं, इन्हें यूरोपीय शिल्प-विशारद भी देखकर चकित हो गये हैं। आयागपट्ट की कोरनी को देखकर यही मानना पड़ता है कि यह दैवी-कृत्य है, मानव-कृत्य नहीं।

हे बंधुओ! आप भी दो हाथ रखते हैं। कुछ कष्ट उठा कर वह दो हाथों का भी कौशल तो देख लीजिये। इस पट्ट को विनिर्मित करने वाले मनुष्य थे या और कुछ थे और वह पुरुष कला थी या देवकला और यह कौशल करने वाले हाथ कलामय थे या उन हाथों में कला का वास था।

चित्रकला—

वह चित्र कौशल आज हा! नरके न कर में रह गया!
कर में भला कैसे रहे ? कल में विचारा दह गया!
चलचित्र चलते देखकर हैं हम अचम्भित हो रहे;
पड़कर चमक के चक्र में हैं भूल हम जिन को रहे ॥२०९॥

आज के चित्रकार प्राचीन चित्रों की समता करने वाले चित्र चित्रित नहीं कर सकते। करे भी तो कहाँ से ? यंत्रों ने इनका कौशल अपहृत कर लिया है। आप आज चलते हुये चित्र देख कर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं और अपने आप को भूल जाते हैं। आपके यहाँ किस उच्च कोटि के चित्र बनते थे यह आप को उस समय स्मृत नहीं हो आता है।

खलु चित्र प्रिय हम थे सभी, बिन चित्र गृह था ही नहीं;
उन मंदिरों का चित्र धन हम कह सके कुछ भी नहीं।
प्रत्यक्ष था या चित्र था, कुछ था पता चलता नहीं;
थे चित्र चलते, बोलते, भ्रम क्यों भला उठता नहीं ?॥२१०॥

हमको चित्रों से बड़ा प्रेम था। बिना चित्र के कोई घर ही नहीं था। मन्दिरों में चित्रों का वैभव वर्णनातीत था। चित्र इतना सजीव होता था कि वह मूल है या चित्र, पहिचानने में भ्रम उत्पन्न हो जाता था। चित्र भी तो चलते और बोलते और संकेत करते थे, फिर शंका उत्पन्न हो, इसमें आश्चर्य ही कौनसा ?

प्रेमी मनुज को प्रिय-प्रिया की याद जो होती नहीं,
यह चित्र कौशल की कला निःसृत कभी होती नहीं।
हम भक्त दृढ़ थे ईश के, परिवार से अनुराग था;
बढ़ता गया लाघव, यथा बढ़ता गया शुचि राग था॥२११॥

प्रेमी स्त्री एवं पुरुषों को अपने प्रेमी जनों की स्मृति अगर नहीं सताती तो चित्रकला का आविष्कार ही नहीं हुआ होता।

हम ईश्वर के परम भक्त थे, परिजनों के परम स्नेही थे। ज्यों २ हमारा राग और प्रेम विकशित और पुष्ट होता गया, त्यों त्यों इस चित्रकला का अधिकाधिक सत्य विकाश होता गया।

मूर्तिकला—

करते न आविष्कार यदि हम मूर्ति जैसी चीज का;
मिलना कठिन होता अभी कुछ धर्म के भी बीज का।
हो प्राण व्याकुल मूर्ति में हैं देखते भगवान को;
यह मूर्ति है भगवान की, यह शास्त्र है अज्ञान को ॥२१२॥

मूर्ति के आविष्कार ने धर्म की स्थापना एवं स्थायीत्व में कितना योग दिया, अविदित नहीं है। यदि मूर्ति का आविष्कार नहीं हुआ होता तो आज अधिकांश धर्मों का बीज तक भी देखने को नहीं मिलता। हमारी आत्मायें भगवान के विरह से विह्वल होकर मूर्ति में भगवान के दर्शन करती हैं। पण्डित शास्त्रों का पढ़न-मननकर भगवान के दर्शन कर सकते हैं, उनके चरित्रों का अध्ययन कर सकते हैं और अपने चरित्र को शास्त्र प्रणीत मार्ग के अनुसार ढाल सकते हैं। लेकिन अपठितों को शास्त्र इतने सीधे उपादेय नहीं है।

उनको तो भगवान की मूर्ति ही भगवान का भान और भगवान के चरित्रों का स्मरण करा सकती है। इस प्रकार अपठितों के लिये मूर्ति शास्त्र का काम करती हैं।

हमको मनोविज्ञान का होता न यों सद्ज्ञान रे!
शिव भाव लाना मूर्ति में क्या है कभी आसान रे?

रसधार करुणा प्रेम की रे ! मूर्ति से बहती रहे;
वह भव्य भावोद्भाविनी तन, मन बचन हरती रहे ॥२१३॥

अगर हम मनोवैज्ञानिक नहीं होते तो हम मूर्ति पर कभी भी उन सर्व ईश्वरीय गुणों का भाव अंकन करने में सफल नहीं हुए होते और स्त्री और पुरुषों के हृदय में मूर्ति के प्रति कल्याण कारी भावनाएँ उत्पन्न करने में कभी भी कृतकार्य नहीं हुए होते। मूर्ति से करुणा और वात्सल्य का स्रोत बहता रहता है। यह सुन्दर एवं कल्याण कारी भावनाओं को जगाने वाली मूर्ति हमारा, तन मन और बचन हरण करती रहती है !

सब भाँति भक्तों के लिये यह मूर्ति ही आधार है;
योगीजनों के तो लिये भगवान यह साकार है।
कितना रसद लगता हमें है चित्र अपने बंधुका;
फिर क्यों न सबको हो सुखद यह बिंब करुणासिंधुका॥२१४॥

भक्तजनों का जीवन ही भगवान की मूर्ति पर निर्भर है और योगनिष्ठ जनों के लिये तो भगवान की मूर्ति ही सर्वस्व है। हमको अपने भ्राता का चित्र कितना प्रिय लगता है फिर आश्चर्य ही क्या अगर परम पिता करुणा के सागर परमेश्वर का बिंब आह्लादजनक लगता हो ?

भगवान कायोत्सर्ग में कैसे लवण हैं लग रहे;
शिव भाव-सरवर बिंबतल पर क्या सुभग हैं जग रहे।
वर्षा सुधा की दर्शकों के ये हृदय पर कर रहे;
पाषाण-उर के भाव प्रस्तर भाव पंकज कर रहे ॥२१५॥

कायोत्सर्ग करते हुये भगवान की मूर्ति कितनी सुन्दर है और मूर्ति के अंग अंग पर कैसे कल्याण कारी भावों का दर्शन हो रहा है। दर्शक गणों की आत्माओं पर ये कल्याणकारी भाव अमृत की वर्षा करते हैं और पत्थर के सदृश कठोर हृदय के पत्थर के समान कठोर भावों को कोमल कमल के समान बनाते हैं।

संगीतकला—

संगीतमय जड़, जीव हैं, संगीतमय सब लोक हैं;
संगीत का तो मनुज तो क्या, इन्द्र तक को शौक है।
अवहेलना हम इस कला की कर न सकते थे कभी;
संगीत, कीर्तन, नृत्य से विभु को रिझाते थे सभी ॥२१६॥

क्या जड़ पदार्थ और क्या जीव, सर्व की ध्वनि एवं स्वरों में कुछ न कुछ राग रहा हुआ है। समस्त संसार ही संगीत के प्रभाव से न्यूनाधिक मात्र में ओतप्रोत है। मनुष्य को संगीत से अति प्रेम हो, इसमें आश्चर्य ही क्या ? देवताओं के स्वामी इन्द्र तक को संगीत अधिकतम प्रिय है। भजन स्तवन एवं नर्तन करके हम ईश्वर का गुणगान करते थे, फिर भला संगीत कला का मान अधिक बढ़ा हुआ क्यों नहीं होता।

गंधर्व सारी जाति का संगीत ही व्यापार था;
इसने किया जग में प्रथम संगीत-आविष्कार था।
यदि मात्र पल भर के लिये यह स्वर-कला कलभग्न हो;
हत कांति बस हो जायगी यह भूमि नग्न हो ॥२१७॥

संगीत कर्म ही गंधर्व नामक जाति का मुख्य कर्म था और इस गंधर्व जाति ने ही सर्व प्रथम संसार में संगीत विद्या का आविष्कार एवं प्रचार किया था। संगीत विद्या में से इसका कलात्मक रूप कुछ पलों के लिये अगर लुप्त हो जाय तो भारतभूमि नग्न सी कांतिहीन प्रतीत होगी।

संगीत बिन नाटक, सभा, परिषद अलोनी दीखती;
हम देखते हैं तान पर धुनती मृगी शिर दीखती।
संगीत पर उन पूर्वजों ने ग्रंथ गहरे हैं लिखे;
संगीत जीवन मित्र है जग-चर-अचर का हे सखे!॥२१८॥

जिस सभा, परिषद और नाटक में संगीत का न्यूनाधिक प्रदर्शन न हो वे सभा, परिषद नाटक आकर्षण हीन ही होंगे। हमारे पूर्वजों ने संगीत विषय पर बड़े २ गहरे ग्रंथ लिखे हैं। क्या जड़ पदार्थ क्या प्राणी, सर्व के जीवन में जो मधुरता है वह संगीत ही का प्रभाव है।

जैन धर्म का विस्तार

यह जैनमत था विश्वमत माना हुआ संसार में—
हैं चिह्न ऐसे मिल रहे कुछ ठौर, कंदर गार में।
वत्सर अनन्ता पूर्व ही हम दिग्विजय थे कर चुके;
हा! बहुत करके चिह्न तो अब तक हमारे मर चुके!॥२१९॥

एक समय था जब यह जैन धर्म संसार भर में विश्व धर्म माना जाता था। गिरि, कन्दराओं एवं भूगर्भ में से अब शोध-

खोज पर ऐसे कुछ चिन्ह मिलते हैं जो इसको कभी विश्वधर्म होना प्रमाणित करते हैं। आज से लक्षों वर्ष पूर्व हमने समस्त संसार को विजित किया था। दुःख है कि इन ऐतिहासिक तथ्यों की प्रभाविकता बतलाने वाले अधिकांश चिह्न मिट चुके हैं।

कुछ चिह्न ऐसे हैं मिले आस्ट्रेलिया इत्यादि में;
जिन से पता चलता हमें, जग धर्म था यह आदि में।
यह भूमि भारतवर्ष इसका आदि पैतृक वास है;
अतिरिक्त भारत के सभी जनपद रहे उपवास हैं ॥२२०॥

आस्ट्रेलिया आदि विदेशों में कुछ ऐसे चिह्न मिले हैं। जो जैन धर्म को सर्व अन्य धर्मों से प्राचीन धर्म सिद्ध करते हैं। जैन धर्म की मूल. उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई थी और संसार के अन्य प्रदेशों में इसका प्रचार रहा है।

आस्ट्रेलिया में कुछ ऐसी मूर्तियाँ निकली हैं जिन्हें लोग बौद्ध-मूर्तियाँ कहते हैं। जब तक किसी भी परीक्षक, निरीक्षक को जैन-मूर्तियां के चिन्ह, लक्षण भली भाँति विदित न हों वर तो प्रत्येक ध्यानस्थ एवं कायोत्सर्गस्थ मूर्ति को बौद्ध ही कहेगा क्योंकि इस समय बौद्धमत का प्रभाव विशेष है। लेकिन अब कोई-कोई लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि किसी समय में जैन-धर्म दुनियाँ के अधिकांश भाग में महात्मा गोतम बुद्ध के पूर्व ही फैला हुआ था। अतः ढाई सहस्र पूर्व की प्रत्येक ऐसी मूर्ति या स्तम्भ निर्विवाद रूप से जैन है।

थे राम रावण से हमारे धर्म के नायक अहो!
रावण सरीखे भक्त क्या जन्मे कहीं है कुछ कहो?
सब बंधु यादववंश के छप्पन कोटी जैन थे;
कितने मुरारी काल में भाई हमारे जैन थे? ॥२२१॥

रामचंद्र और रावण जैसे धर्मनायक थे। क्या रावण के समान अन्य कोई भक्त हुआ है? एक यादववंश के छप्पन गोत्रों के लाखों स्त्री पुरुष जैनधर्मी थे। तो अनुमान लगाइये श्रीकृष्ण या नेमिनाथ भगवान के समय में कितने जैन धर्मावलम्बी होंगे।

मुख धर्म चारों वर्ण का था आदि से जिन धर्म ही,
क्षात्रमत था, विप्रमत था, था शूद्रमत जिन धर्म ही।
अवतार इसके सब सही हैं, क्षात्रकुल में से हुये;
आचार्य, गणधर साधु श्रावक वर्ण चारों से हुये ॥२२२॥

जैन धर्म ही ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्रों का आदि धर्म था। सर्व जैन तीर्थंकर क्षत्री थे और गणधर, आचार्य साधु और श्रावक चारों वर्णों के थे और आज भी हैं।

उन ऋषभ जिन पति को सभी हैं अन्य मत भी मानते;
अवतार खलु हम ही नहीं, अवतार वे भी मानते।
वे चक्रपति महिभूप थे—पुस्तक, पुरातन देखलो;
जिन धर्म के वे थे प्रवर्तक चक्रधारी, पेखलो ॥२२३॥

आदिनाथ भगवान को जैन एवं सर्व भारतीय जैनेतर धर्म अवतार मानते हैं। आप पुराणों को, वेदों को और जो प्राचीन ग्रंथ हों उन सर्व को देख लीजिये, भगवान ऋषभ देव सार्वभौम सम्राट थे और जैन धर्म के प्रवर्तक अर्हत् थे।

९

द्वादश हमारे चक्रपाणी विश्वजय हैं कर चुके;
अमरेश, किन्नर देव भी जिनकी चरणरज छू चुके।
त्रेषठ शला का ग्रंथ में उनके कथानक मिल सके;
हंसते रहे जो आज तक, वे सत्य अब क्यों कह सके ॥२२४॥

हमारे १२ सार्वभौम (चक्रवर्ती) सम्राट आज तक हो चुके हैं जिन्होंने समस्त संसार को विजित किया था। जिनके इन्द्र किन्नर और देवगण आज्ञापालक थे। इन महाभूपों का परिचय इस समय भी उपलब्ध है। परन्तु, आज तक जो जैन धर्म का उपहास ही करते रहे, वे भला सत्य को कब स्वीकार करेंगे ?

फूटे सभी के हैं नयन या भ्रष्टमति सब हो गये;
शत्रुत्व, मत्सर, द्वेष के वचन, मन, रंग गये;
वे मूर्ख हैं या अज्ञ हैं, प्रत्यक्ष मिथ्या कह रहे;
क्यों बौद्ध-वैदिक धर्म की शाखा हमें हैं कह रहे ?॥२२५॥

वे आँखों के अंधे हैं या मतिहीन हैं या साम्प्रदायिकता के रागद्वेष एवं मत्सर भरे भावों से उनके मन-वचन रँगे हुये हैं या मूर्ख हैं या अज्ञानी हैं जो प्रत्यक्ष हलाहल मिथ्या कह रहे हैं कि जैन धर्म बौद्धधर्म की, वैदिकधर्म की ही एक शाखा है।

इतिहास जाति विशेष का क्या दूसरी का हो सके ?
संबंध दोनों में रहे हो मान्य इतना हो सके।
शाखा किसी मत की नहीं हम सिद्ध अब यह हो गया;
अब कौन वैदिक जैन में है ज्येष्ठ—इतना रह गया ॥२२६॥

एक जाति के इतिहास में अगर किसी अन्य जाति का भी वर्णन आता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह इतिहास ही उस दूसरी जाति का है वरन अर्थ यह है कि उस अन्य जाति का उससे न्यूनाधिक संबंध रहा है। अब तो भली भाँति यह सिद्ध हो गया है कि जैन धर्म किसी अन्य धर्म की शाखा नहीं है। अब तो इतना सिद्ध करना अवशिष्ट रहा है कि वैदिक धर्म और जैन धर्म इन दोनों धर्मों में कौनधर्म अधिक प्राचीन है।

निज देश के इतिहास में इतनी पुरानी जाति का—
उल्लेख कुछ भी हो नहीं इतिहास वह किस भाँति का।
इतिहास भारतवर्ष के तुम आधुनिक सब देखलो;
उन में तनिक भी है नहीं वर्णन हमारा लेखलो ॥२२७॥

इतनी प्राचीन जैन जाति का भारतवर्ष के आधुनिक इतिहासों में कुछ भी उल्लेख का न होना बड़ा आश्चर्य की बात है। आप स्वयं उनको पढ़कर विश्वास कर सकते हैं।

श्रीमन्त, दानी, वीर, नृप हममें अनंता हो गये,
विद्या, कला-कौशल सभी के ज्ञान धारी हो गये।
इतने नरों में से हमारे लेख्य क्या कोई नहीं ?
पर द्वेष से मत भ्रष्ट किसकी हो भला सकती नहीं ॥२२८॥

जैन समाज में आज तक धन कुबेर को भी लज्जित करनेवाले श्रीमंत, दानी; वीरवर, राजा, सम्राट, विद्वान, कलाविद और महाज्ञानी अनंत हो गये हैं। आश्चर्य होता है कि इतने महा-

पुरुषों में से क्या एक भी पुरुष भारत के इतिहास में स्थान पाये योग्य नहीं है? बात तो यह है कि साम्प्रदायिक भावों ने भला किसकी बुद्धि को भ्रष्ट नहीं किया है।

हम जैनियों में आज ऐसा एक नहिं विद्वान है;
शुकलाल, बेचर दास, दो से क्या कहीं सम्मान है?
इतिहास लिखने की कला पर है न उनके पास में;
क्यों दाँव इतरों के लगे ऐसे न फिर अवकाश में ॥२२६॥

हमारी जैन समाज में ऐसा कोई भी विद्वान नहीं है जो जैन जाति का इतिहास लिख सके। पंडित शुकलाल एवं बेचर-दास के नाम सुने जाते हैं; परन्तु इतिहास लिखने के लिये वे भी इतने योग्य नहीं। फिर ऐसी स्थिति में इतर इतिहास लेखक मनमाना लिखें और हमारी ऐतिहासिक संपत्ति को भी अन्य जाति की सम्पत्ति लिख दें तो आश्चर्य ही क्या है?

हमारा राजत्व

राजत्व की भी स्थापना हमने प्रथम जग में करी;
नर धर्म के रक्षार्थ हमने स्थापना इसकी करी।
सब आत्मियों का आत्म का जब रूप ही है एक सा;
फिर राव, राजा, रंक में यों भेद होता कौन सा ॥२३०॥

संसार में शासन प्रणाली सर्व प्रथम भगवान आदिनाथ ऋषभदेव ने स्थापित की थी। इसकी स्थापना मनुष्य धर्म की रक्षा और पोषण के लिये की गई थी। सब प्राणियों की आत्मायें एक है जब यह भाव अनत: अनादि काल से स्थिर

होता हुआ आया है, तब भला राजा और रंक के मान में अंतर कैसे होता। दीन, हीन, निर्बल, असहाय प्राणियों की आततायी, दुष्ट, बली के अत्याचारों से रक्षा करने की दृष्टि से शासन विधान क्यों नहीं बनता ?

हम थे पितावत, हर तरह थी पुत्रवत हमको प्रजा;
द्विज को न लेने में हिचक थी शूद्र की भी आत्मजा।
फिर क्यों प्रजापति को कहो प्यारी प्रजा लगती नहीं ?
क्यों मनुज मानसद्वीप में रसधार फिर बहती नहीं ?॥२३१॥

राजा और प्रजा में पिता और पुत्र का प्रेम भरा एवं घनिष्ठ सम्बन्ध था। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों का शूद्र कन्याओं के साथ विवाह होता था। ऐसी स्थिति में प्रजा राजा को क्यों नहीं प्यारी लगे ? और मनुष्यों के हृदय स्थलों में प्रेम की नदियें क्यों नहीं बहे ?

परमार्थ हित राजत्व क्या, अपवर्ग यदि तजना पड़ा—
सब कुछ तजा, सुखसे दिया यदि प्राण भी देना पड़ा।
हमको न माया, मोह था, राजत्व से नहिं लोभ था;
राजत्व तजते भूप को होता न कुछ भी क्षोभ था॥२३२॥

दूसरों का कल्याण करना हमारा परम उद्देश्य था। पर कल्याण करने में अगर राज्य, स्वर्ग, सर्वस्व और प्राण तक त्यागने की आवश्यकता पड़ी तो वह सब हमने सहर्ष किया। न हमको राज्य में लोभ था, न प्राणों से मोह था और न इस सांसारिक माया-वैभव में अनुराग था। सार्वभौम साम्राज्य तक को छोड़ने में किंचित मात्र भी विचार नहीं होता था।

राजत्ववर्त्ती मात्र थे, पर भोगवर्त्ती थे नहीं;
होते हुये उपलब्ध वैभव लीन वैभव थे नहीं।
वह भरत❀ चक्री पुरुष पति कैसा सदाशय भूप था;
होता हुआ वह राजभोगी राजयोगी भूप था ॥१२३॥

हम मात्र राजा और राजसी वैभव के स्वामी थे; परन्तु उन

❀भरत—यह भगवान ऋषभदेव का पुत्र था और प्रथम चक्रवर्त्ती हुआ है। यह राज-कार्य करता हुआ भी विरक्तात्मा था। एक समय किसी ने यह शंका की कि भरत चक्रवर्त्ती होकर कैसे विरक्तात्मा रह सकता है। जब इस बात का पता भरत को मिला तो भरत ने उस आदमी को बुलाया और उस आदमी के हाथ में दही से भरा हुआ पात्र देकर कहा, "जाओ तुम समस्त शहर में यह पात्र अपने हाथ में लिये हुए भ्रमण करके आओ; लेकिन यह ध्यान रखना कि एक बूंद भी अगर दही का नीचे गिर पड़ा तो प्राणग्राहक तुम्हारा शिर वहीं पर धड़ से अलग कर देंगे।"

जब वह आदमी समस्त नगर में भ्रमण करके लौटकर भरत के पास आया तो भरत ने देखा कि दही में से एक बूंद भी नहीं गिर पाई है। भरत ने उसे पूछा, 'भाई, तुमने नगर में क्या देखा और क्या सुना?'

उस पुरुष ने उत्तर दिया, 'न मैंने कोई पुरुष या वस्तु देखी और न मैंने कुछ सुना ही मेरी तो सब ही इन्द्रियें इसी पात्र पर लगी हुई थीं'। तब भरत ने उसे समझाया और कहा, 'भाई मैं इस दहीपात्र के समान मोक्ष को देखता हुआ इस असार संसार के मध्य रहता हूँ।'

अलौकिक वैभवों में कभी भी अनुरक्त नहीं थे। अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिये उनका उपभोग नहीं करते थे। भरत चक्रवर्ती का नाम तो सबने सुना होगा वह कैसा महाशय नरेश्वर था। वह राज्य का स्वामी होकर भी योगीश्वर था।

यों दीन दलितों पर न अत्याचार था हमने किया,
पापीजनों को भी न बढ़ने विश्व में हमने दिया।
उपदेश को हम दंडनय से अधिक हितकर मानते,
सद्मार्ग लाने की कला थे बहुत सुन्दर जानते ॥२३४॥

आज के शासकों की भाँति हमने कभी भी दीन, अनाथ असहायों पर अत्याचार नहीं किये और न दुष्टों का दल ही बढ़ने दिया। दण्डनीति को हम सदा से घृणित समझते रहे हैं। अपराधी को हम उपदेश देकर, समझा कर पुनः सद्मार्ग में प्रवृत करते थे। पथभ्रष्ट को मार्ग में लगाने की शैली हमारे पास में बड़ी सुन्दर थी।

हमारी वीरता

हम आप जाकर के किसी से कर रहे नहिं युद्ध थे,
शोणित अकारण हम बहाते यों न होकर क्रुद्ध थे,
थे चक्रवर्ती भूप, किंचित गर्व पर हमको न था;
सुरलोक, वैभव प्राप्त कर होता बधिर कोई न था ॥२३५॥

आज के सार्वभौम सम्राटों की भाँति न तो हम अकारण ही युद्ध छेड़ते थे और न किसी का अकारण रक्त ही बहाते थे। हम सार्वभौम सम्राट होकर भी गर्व से सदा दूर थे। देव लोक

और सर्व वैभव हमको प्राप्त थे, फिर भी हम इतने अतिशय अनुरक्त न थे कि अपना कर्तव्याकर्तव्य भी भूल जाते।

था वीर विभु के जन्म पर गिरिनाथ देखो, हिल गया,
आसन लखा था अमरपति का भी उसी क्षण डिग गया।
इस भाँति के अगणित हमारे वीर नरपति हो गये;
यदि युद्ध उनमें छिड़ गया, थे एक जल-थल हो गये ॥२३६॥

एक भगवान् महावीर का ही पराक्रम और तेज देखिये। महावीर के जन्म लेते ही सुमेरु पर्वत कंप उठा और देवलोक में इन्द्रासन डगमगा उठा। ऐसे एक नहीं अनेक महावीर हो चुके हैं, जिनके समर में उतरने पर प्रलय मच जाता था।

हमने समर अगणित किये, पर प्रथम लड़ने नहिं गये;
उन्मुख हुये हम भूप को पहिले मनाने ही गये।
उपयोग हमने नीतियों का अंत तक भलि विध किया;
माना न जब अरि ने कथन, होकर विवश रण फिर किया ॥२३७॥

यद्यपि हमने आज तक सहस्रों युद्ध किये हैं; परन्तु युद्ध का प्रस्ताव कभी भी हमारी ओर से नहीं हुआ। बल्कि युद्ध पर उतारू हुये शत्रु को हमने प्रथम समझाने का ही प्रयत्न किया। चारों नीतियों का अंत तक प्रयोग करने पर भी अगर शत्रु युद्ध किये बिना पीछे नहीं हटा, तब हमने युद्ध किया।

सज्जन, महाशय, सहृदय रिपु रुष्ट होकर आ गया;
वह बल हमारा तोलकर भूला हुआ सा गृह गया।

था बज्र-सा यदि कुंठहृदयी, काल-सा विकराल था ;
लख वह हमारा आत्मबल होता तरल तत्काल था ॥२३८॥

अगर कोई बुद्धिमान, विवेकशील राजा सिखाने, भड़काने से क्रुद्ध होकर हमारे उपर चढ़ आया तो वह हमारा बल शौर्य देखकर लौट गया। यदि वह बज्र के समान कठोर हृदयवाला और यमराज के समान भयंकर हुआ तो हमारे आत्मबल के तेज से मोम के समान पिघल कर द्रवित हो गया।

रणक्षेत्र में भी पहुँच कर गलबाँह देकर मिल रहे;
थे रोकने को रक्त निर्झर यत्न भरसक कर रहे।
दोनों परस्पर युद्ध पति करते कभी द्वौ ओर के;
इस भाँति के प्रस्ताव से कटते न दल द्वौ ओर के ॥२३९॥

समरभूमि में भी पहुँच कर हम रिपु को प्रेमपूर्वक समझाकर रक्तपात को रोकने का भरसक प्रयत्न करते। रिपु के किसी भी प्रकार न मानने पर फिर दोनों दलपतियों में द्वन्दयुद्ध का ही निश्चय कराकर दोनों ओर के दलों का अकारण होता रक्तपात रोकते। इस प्रकार निरपराधियों के अकारण रक्तपात को हम सर्वथा रोकने का या कम से कम करने का प्रयत्न अंत तक करते।

आवेश हममें था नहीं, यह विश्व क्या नहिं जानता;
हमको क्षमाधर, शान्त यह जग आज भी है मानता।
निर्बल सबल कहते किसे ? यह प्रश्न हैं हम पूछते;
हैं घट छलकता अधभरा या सुखभरा ? हम पूछते ॥२४०॥

क्रोध हममें नाम को भी न था। हम क्षमावान, शान्त प्रकृति हैं यह समस्त संसार युगों से जानता है और मानता है। बलहीन और सबल किसको कहते हैं? मुखपर्यंत भरा जल का घट छलकता है या अर्ध भरा?

तलवार का उपयोग करना निर्बलों का काम है;
हर बात में असि को दिखाना वीर का क्या काम है?
है आत्मबल, चरित्र नहीं; तलवार साधन है उसे;
आत्माढ्य चरित्री कहो, सकता न कर वश है किसे?॥२४१॥

वीर पुरुष बात-बात में तलवार नहीं दिखाते,यह तो कायरों का कृत्य है। तलवार का प्रयोग करना तो उस पुरुष के लिये उपयुक्त है जो चरित्रवान और महात्मा नहीं है। महात्मा और चरित्रवान पुरुष भला किसको वश में नहीं कर सकते हैं?

था युद्ध जिस दिन छिड़ गया, वह दिन प्रलय का आ गया;
जल, थल, अनल, नभ, वायु में भूकंप उस दिन आ गया।
जल, थल अनलमय हो गये, जल, थल पवन मय हो गये;
जब चक्रपाणी चक्रियों के चक्र चालित हो गये॥२४२॥

जिस दिन क्रुद्ध होकर हमारे चक्रवर्त्ती सम्राटों ने सुदर्शन चक्र को घुमाना प्रारंभ किया, वह दिन प्रलयंकारी ही था। पृथ्वी और समुद्रों में अग्नि लग गयी, पर्वतों को ढाहने वाला पवन बहने लगा, पृथ्वी और समुद्र एकमेक हो गये। अर्थात् उस दिन पृथ्वी, समुद्र, वायु, आकाश और अग्नि सर्व अशांत हो उठे और परस्पर भिड़ उठे।

सागर, स्वयंभू, अर, अचल, जयनाम, मघवा, भद्रसे
द्विपृष्ट कैसे थे बली ? त्रिपृष्ट नृप बलभद्र से !
निष्कुम्भ तारक से बली अरि क्या हमारा कर सके ?
दर्शन, विजय बलदेव का क्या बाल बाँका कर सके ?॥२४३॥

चक्रवर्ती सम्राट सागर, अरनाथ मघवा, जयनाम और बलदेव अचलनाथ, विजय, भद्र, सुदर्शन और वासुदेव त्रिपृष्ट द्विपृष्ट और स्वयंभू अद्वितीय महाबली थे। निष्कुम्भ और तारक जैसे महापराक्रमी प्रति वासुदेव भी सुदर्शन और विजय वासुदेव के आगे रणस्थल में नहीं टिक सके थे।

उस मौर्यपति भूपेन्द्र की तलवार में क्या तेज था।
क्या ग्रीक सैन्याधीश से लेना सुता, जय सहज था ?
जग कोटिभट श्रीपाल का बल जानता है क्या नहीं ?
श्रीपाल को पर कोटि भट थे जीत सकते क्या कहीं ॥२४४॥

मौर्यपति जैन सम्राट चन्द्रगुप्त की तलवार के प्रहार को ग्रीक सैन्याधीश शिल्यूकस नहीं संभाल सका। अंत में हमारे सम्राट की विजय हुई और शिल्यूकस ने सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ अपनी प्यारी पुत्री का विवाह कर चिर संधि की। कोटि भट श्रीपाल के बाहुबल से संसार भली भाँति परिचित है। उस अकेले महावीर में एक साथ एक कोटि योद्धाओं को परास्त करने की सामर्थ्य थी।

राजर्षि उदयन को कहो इतिहास क्या नहिं जानता ?
इसको नपोलिन कह रहा है कौन यह नहिं मानता ?

सम्राट श्रेणिक नंदिवर्धन राष्ट्रपति चेटक अहो !
नृप चण्ड थे कैसे विजेता बीर थे कैसे कहो ? ॥२४५॥

राजर्षि उदयन—यह वीतभवनगर का राजा था। बड़ा प्रतापी था। इसने अनेक युद्ध किये और सबमें विजयी हुआ। अन्त में इसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपने भागिनेय को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली।

सम्राट श्रेणिक—यह मगध का सम्राट था और भगवान महावीर का परम भक्त था। इसके विषय में अनेक दन्तकथायें प्रसिद्ध हैं जिन का यहाँ वर्णन स्थानभाव से असम्भव है। इसकी रानी चेल्लणा राष्ट्रपति चेटक की पुत्री थी और महासती थी।

नंदिवर्धन—ये भगवान महावीर के भाई थे और भगवान के परमानुयायी थे। इनकी रानी जेष्ठा राष्ट्रपति चेटक की कन्या थी। नंदिवर्धन का राम-राज्य प्रसिद्ध है।

राष्ट्रपति चेटक—यह बड़े नीति कुशल नरेश थे। समस्त आर्यावर्त के राज्यों में इनका भूरि सम्मान था। ये दृढ़ जैन धर्मी थे। इनके सात कन्यायें थीं और सात में से छह का भारत के सर्वश्रेष्ठ एवं महान राजाओं से विवाह हुआ था। एक बाल ब्रह्मचारिणी ही रही थी। इनके परिवार ने जैन धर्म का इतना विस्तार किया कि राष्ट्रपति चेटक को उप महावीर कहना चाहिये। इनकी कन्याओं का यह दृढ़ व्रत था कि जैन राजा से ही उनका विवाह होगा। और ऐसा ही हुआ।

नृप चण्डप्रद्योत—यह उज्जैन का राजा था और बड़ा वीर था। राष्ट्रपति चेटक की एक कन्या शिवा का विवाह इसके साथ हुआ था।

उस खारवेल नृपेन्द्र की तलवार में क्या शक्ति थी ?
सम्राट मगधाधीश की क्या फल सकी कुछ शक्ति थी ?
कंदर गुफायें आज भी ये ओरिसा की पेखलो !
सम्राट के यशकीर्ति की ये हैं पताका लेखलो ॥२४६॥

हम युद्ध में अरि से कभी अपधर्म से लड़ते न थे,
बाहर सदा रणक्षेत्र के हम शत्रु रिपु गिनते न थे।
रिपु झुक गया, रणक्षेत्र से यदि या पलायन कर गया,
वह शत्रु से मिटकर हमारा बंधु सब विध बन गया ॥२४७॥

युद्धक्षेत्र में हम छल-कपट-पाखण्ड का व्यवहार नहीं करते थे। हमारे युद्ध एक शुद्ध धर्म युद्ध होते थे। समर भूमि में ही हमारा शत्रु शत्रु था। समर भूमि के बाहर वह सदा हमारा परम बंधु था। विनत हुये एवं रणक्षेत्र से भागे हुये शत्रु को हम सदा अभयदान देकर उसके साथ बंधुत्व का व्यवहार करते रहे हैं।

सम्राट खारवेल—यह कलिंग-सम्राट था। यह महामेघवान खारवेल के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत कुछ अंशों में इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर आ चुका है। मगध-सम्राट नंद-वर्धन को इसने परास्त किया था। आंध्रभूपतियों को भी हराया था। यह अपने समय का महान राजा हुआ है। इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं। अब तो सम्राट खारवेल पर (गुजराती में) बहुत पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

ओरिसा की गुफायें—देखो पृष्ठ ११६।
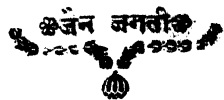
वैश्यवीर—

उस तोरमाण महाबली से युद्ध था हमने किया;
उसको भगाकर देश से कल था कहीं हमने लिया।
गिरते हुये इस काल में भी वीर, मानी, धनि हुये;
जिनके सुयश के गीत गाकर भाँति सब हम धनि हुये॥२४८॥

तोरमाण के वंशजों को भारत भूमि से बाहर निकालने का श्रेय एक मात्र वैश्यवीरों को है। यह सच है कि यह काल हमारा पतनकाल है, फिर इस पतनकाल में अनेक वीर धनि, मानी पुरुषवर हो चुके हैं जिनके सुयश के प्रताप से आज हम इतने गौरवान्वित हैं।

अब वागभट-से, नागभट-से वीर बालक हैं कहाँ;
सौराष्ट्र तेरे लाल ये अनमोल हीरे हैं कहाँ!

तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल का राज्य अवंती-प्रदेश पर ई० सन् की छठी शती में अच्छी प्रकार जम चुका था। लेकिन हूण लोग प्रजाजनों को अतिशय कष्ट देते थे। निदान सर्वप्रजाजन आबू पर्वत पर एकत्रित हुए और सबने हूणों से मन्दसोर के पास भारी रण किया और हूणों को सौराष्ट्र से बाहर निकाल दिया। डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्दशाह अपने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास भाग ३ रा० पृष्ठ ३६० पर लिखते हैं कि इस युद्ध में श्रीमाल, ओशवाल एवं पोरवालों ने शस्त्रास्त्र ग्रहण किये थे और इन तीनों से सबसे अधिक वीरता दिखाई थी।

वागभट—यह सौराष्ट्रपति महाराजा कुमारपाल के आमात्य उद-

आमात्य आँबू, विमल, उदयन, शांतनु महेता तथा;
होते न यदि सौराष्ट्र में, सौराष्ट्र होता अन्यथा ॥२४६॥
गुजरातपति नृप सिद्ध के, सौराष्ट्र पति नृप भीम के;
थे डालने वाले हमीं साम्राज्य की दृढ़ नीम के।

यन का पुत्र था। नागभट भी इसका छोटा भाई था। वागभट और नागभट दोनों भाइयों ने अपनी अल्प आयु में ही अनेकों युद्ध किये थे। देखिये कुमारपाल चरित्र।

आमात्य आंबू—यह अणहिलपुर के महाराजा भीमदेव द्वितीय का सेनापति था और आमात्य भी रह चुका था। इसने कितनी ही बार मुसलमान आक्रमणकारियों को परास्त किया था।

विमलशाह—यह गुजरातपति भीमदेव का महामात्य था। यह बड़ा वीर और अद्वितीय राजनीतिज्ञ था। इसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं थीं और आबू पर्वत पर एक विशाल जैन-मन्दिर बनवाया था।

उदयन—यह सौराष्ट्रपति महाराज सिद्धसेन का महामात्य था। यह अद्वितीय वीर एवं नीति-प्रवीण था। इसके चार पुत्र थे और चारों पुत्र बड़े रणवीर थे। उदयन और इसके पुत्रों ने ही सिद्धराज का राज्य दृढ़ एवं अत्यधिक विस्तृत किया था। देखो मन्त्री उदयन का चरित्र।

शांतनु—शान्तनुशाह भी महाराजा भीमसेन का महामात्य एवं परम सहायक था। महाराजा भीमसेन को राज्यासन शान्तनु महेता के ही बल से मिला था।

अामात्य वस्तुपाल कहें क्या किस तरह के वीर थे !
इनके सहोदर बंधु भी आमात्य थे, रणधीर थे ॥२५०॥
इन पौरवंशी बन्धुओं के तेग में क्या शक्ति थी !
सुलतान आलम अल्तमस की कुछ न फलती युक्ति थी।
सौराष्ट्र के युवराज के यदि ये अनुग होते नहीं;
सौराष्ट्र के इतिहास, वर्णन दूसरे होते कहीं ॥२५१॥

महागुजरात के अधीश्वर प्रथम और द्वितीय भीम सिद्धराज जयसिंह के साम्राज्यों का विस्तार और दृढ़ संचालन करने वाले हम ही जैन थे। महामात्य वस्तुपाल और महासैन्याधीश तेजपाल के बल-शौर्य्य का वर्णन करते हुये कवि और विद्वान थक जाते हैं। द्वितीय भीम के युवराज वीर धवल के यदि ये महामात्य और सेनापति नहीं होते तो आज गुजरात अन्य रूप में होता।

वस्तुपाल, तेजपाल—ये दोनों सहोदर थे और महाराजा कुमारपाल के महामात्य थे। दोनों भाई अपनी वीरता एवं रणनीति के लिये इतिहास में प्रसिद्ध हैं। एक समय अल्तमस ने सौराष्ट्र विजय करने को अपनी प्रबल सेना भेजी। लेकिन इन दोनों भाइयों की तलवार का वार तुर्क न सह सके और भाग खड़े हुए। ये वीर होने के साथ ही बड़े दानी एवं धर्मात्मा थे। इन दोनों भाइयों ने अपने जीवन काल में १३१३ नव्य जैन मन्दिर बनवाये। ३३०० जैन-मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। ५०० पौषधशालायें बंधवाईं। सात कोटि सुवर्ण मुद्रायें खर्च कर पुस्तकें लिखवाईं और अगणित कुएँ, तालाव धर्मशालाएँ, दानशालाएँ बनवाईं। पैसे का सदुपयोग ऐसा आज तक शायद ही किसी ने किया हो।

भुजदण्ड भैषाशाह के थे नाम के अनुरूप ही,
थे शील रामाशाह उनके वीरवर तद्रूप ही।
श्री कर्मसी; श्री नेत सी, श्री अन्नदाता धर्म-सी,
सब थे अतुल वर वीर भट, समवर्ण्य हो कैसे अभी! ॥२५२॥

बाहुबली भैषाशाह, रामाशाह, कर्मसी, नेत सी, धर्म सी बड़े ही नामांकित शाहूकार थे और महान योद्धा थे। इस पुस्तक में स्थानाभाव के कारण इन सर्व का विशद परिचय पाठकों के समक्ष किसी भी स्थिति में नहीं रखा जा सकता।

भैषा-शाह—ये महापराक्रमी एवं दानवीर शाह थे। ये माण्डू के रहने वाले थ। इनकी हवेली माण्डू में आज भी इनके वैभव की स्मृति कराती है।

रामाशाह—ये भेरुशाह के भाई थे। भूल से इनको भैषाशाह का भाई कहा है। रामाशाह कितने पराक्रमी थ, निम्न पद्य से देखिये जो एक कवि ने इनकी प्रशस्ती में कहा है:—

से षै कछवाहा, जोधक, जादौ, भारथ जोगै भीछ भला।
निरवाण, चौहान, चन्देल, सोलंकी, देल्ह, निसाण, जिके दुजला॥
बड़गूजर, ठाकुर, छेछर, छीमर, गौड, गहेल, महेल मिली।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर सेवै राज छतीस कुली॥
जै० जा० भ० प्र० चौथा।

श्री कर्मसी—निम्न पद्य से श्री कर्मसिंह का भी परिचय पा लीजिये:—

१०

हम दूर जाने की नहीं हैं आप से कुछ कह रहे,
बस ध्यान से पढ़ लीजिये जो पंक्ति दो हैं कह रहे।
गुजरात, राजस्थान, मालव प्रान्त का इतिहास लो;
भूपाल कहते हैं हमें क्यों, हेतु इसका जान लो ॥२५३॥

हमको भूपाल क्यों कहते हैं ? तथा हमारा परिचय सही सही जानना हो तो आप को अधिक श्रम करने की कोई आव-

---

समधर भरगे ताल्हण सुतन, न्याई त्रिहु पखि निर्मला ।
चितोड़ भिड ते चोपड़े, करमचंद चाढ़ी कला ॥
जै० जा० मं० प्र० चौथा ।

श्री नेतसी—वीरवर नेतसी छाजेड़ की भी उदारता देखियेः—

पवन जदि न परवरे, बात्र बागो उत्तर धर ।
धर, मुरधर मानवी, भइ मेभत तासभर ॥
मातपुत परिहरे, विमोह मृगनेनी छारे ।
उदर काजि आपने, देश परदेश संभारे ॥
खित्त, खीन, दीन व्यापी खुधा, नर नीसत सत छंडिया ।
तिण द्योस साह जगमाल के, नेतसीह नर थंभिया ॥
जै० जा० म० प्र० चौथा ।

श्री अन्नदाता धर्मसी—इस श्रील महापुरुष के भी दाक्षिण्य भाव देखियेः—

दीपक दीदा दिसे, प्रथी पदरा परमाणों ।
कडलूनेर कड़ाहि, सिपति साची तुरताणे ॥
इकतीसे सोझती, इला असमै आधारी ।
धर मुजर धरमसी, जुगति दे अन्न जिवाड़ी ॥

श्यकता नहीं। आप मात्र राजपूताना, मध्यभारत और गुजरात के इतिहासों का भलिविध अवलोकन कर जाइये।

हम जैनियों ने क्या किया इतिहास-वेता जानते;
सौराष्ट्र राजस्थान की वे स्नायु हमको मानते।
जयपुर उदयपुर जोधपुर किसकी कृपा से हैं रहे?
यदि हम न होते आज फिर ये राज्य होने से रहे ॥२५४॥

इतिहासज्ञ जानते हैं कि जैनबंधुओं ने सौराष्ट्र और राजस्थान में क्या किया है और इनका इतिहास में क्या स्थान है? जैन बंधुओं का बल और सहयोग नहीं मिला होता तो आज जयपुर, जोधपुर और उदयपुर के कीर्तिशाली दुर्गों पर किन्हीं अन्य वंशों के ध्वज फहरा रहे होते।

हमारी आध्यात्मिकता

कैसा हमारा आत्मबल था, विश्व में था वह नया;
रविदेव का रथ रुक गया, था मेरू जड़ से हिल गया।
राजर्षि मुनिपति मदन अपने प्राण वल्लभ दे चुके;
मुनिराज खंदक भी त्वचा निर्दोष खिंचवा थे चुके ॥२५५॥

हमारा आत्मबल संसार में एक अलौकिक आत्मबल था। प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म मुहूर्त पर सुमेर पर्वत हिल उठा था और इन्द्रासन डोल उठा था। मदन राजर्षि ने प्राण त्याग दिये और मुनिराज खंदक ने खड़े खड़े अपनी त्वचा खिंचवा ली, लेकिन कल्याणमयी अहिंसात्मक अध्यात्मिक शक्ति में रंचक न्यूनता नहीं आने दी।

हम कर्म में अति शूर थे, हम धर्म में रणधीर थे,
हमको न माया मोह था हम त्याग में वरवीर थे।
विपरीत चलना धर्म के हमको न आता था कभी,
दिन को निशा कहना नहीं था भीतिवश आता कभी ॥२५६॥

हम कार्यक्षेत्र में महान परिश्रमी और धर्मक्षेत्र में स्वतंत्र पराक्रमी वीर थे। हम वैभव और कौटुम्बिक स्नेह में लिप्त नहीं थे। त्याग करने में हम अग्रणी थे। धर्म के विरुद्ध अकिंचन कर्म करना भी हमको तनिक भी नहीं आता था। कोई दुष्ट बली अततायी हमको भय देकर धर्म विरुद्ध मार्ग में प्रस्सर नहीं कर सकता था। अर्थात् हम कायर व चाटूकार नहीं थे।

मुनिवृंद के चारों तरफ थी अग्नि वह कैसी लगी!
जग में नहीं अब तक कहीं भी अग्नि है वैसी लगी!
अब तक किसी को भी बिगड़ कर शाप नहिं हमने दिया!
अपकार के प्रतिकार में उपकार ही हमने किया ॥२५७॥

एक समय में सात सौ ध्यानस्थ मुनियों को दुष्टों ने उनके चारों ओर काँटे और तृण डालकर अग्नि लगादी। धन्य है, सात सौ ही मुनि अडिग रहे और अंत में धर्म की विजय हुई। वैसी अग्नि शायद ही संसार में अन्यत्र सुलगी होगी। दुष्टों के करों इतना परिताप एवं कष्ट सहन करने पर भी हमने कभी क्रुद्ध होकर पीड़कों एवं परितापकों को अभिशाप नहीं दिया, वरन अपकार करने वालों का भी हम सदा बदले में कल्पना ही करते रहे।

प्रक्षिप्त करने साधुवर कटु तक्र को लेकर गये;
देखा न प्राणीहीन स्थल; पीकर स्वयं वह मर गये।
मुनिराज ऐसे हो गये किस धर्म में, किस देश में ?
अध्यात्मपद तो साध्य है जिनराज के ही वेष में ॥२५८॥

हम हो दिगंबर फिर रहे थे पुर, नगर हर ग्राम में,
योगीनग्न कोई फिर सके जाकर नगर अभिराम में !
हम आज वैसे हैं नहीं, फिर भी दिगंबरवाद यह;
जय जय दिगंबरवाद वह, पाखण्ड दिग्पटवाद यह ॥२५९॥

हमारे साधु, तीर्थंकर, सिद्ध इतने प्रबल जितेन्द्रीय थे कि सर्व सम्पन्न वैभव शाली महान नगरियों में, नगरों में वस्त्रहीन होने की अवस्था में भी विचरण करते थे और जिनका हृदय नेत्रादि इन्द्रियें कभी भी सविकार नहीं होती थी। इस प्रकार दिगंबर हो कर आज तक किस धर्म के संन्यासी अभिराम नगरों में जितेन्द्रीय जीवनयापन कर सके हैं। यह बात सही है कि आज न हमारे आचार्य और साधु ही इतने जितेन्द्रिय हैं

धर्मरुचि मुनि को किसी श्रावक ने आहार में बहुत दिनों का कड़वी तुंबी का रायता अर्पण किया। मुनिराज आहार लेकर अपने स्थान पर आये। जब आहार करने लगे तो पता पड़ा कि रायता अतिशय खट्टा है। आहार से निवृत होकर मुनिराज उस रायता को पात्र में लेकर बाहर अजीवाकुल स्थान पर प्रक्षेप करने गये। लेकिन उन्हें ऐसा कोई स्थान न मिला जहाँ किसी प्रकार का कोई जीवाणु न हो। निदान आप ही उसे पी गये और मोक्ष को प्राप्त हुए। धन्य है ऐसे महामुनियों को।

और नहीं हम श्रावक ही कि जो नग्न आचार्यादि को देख कर विकार से न्यूनाधिक मात्रा में ग्रस्ते नहीं होते हों। फिर भी हम दिगंबरवाद को अर्थात् आचार्यादि के नग्न रहने की अवस्था का समर्थन कर रहे हैं यह सर्वथा अंधता है वह पूर्वाचार्यों का दिगंबर वाद जयशाली और धन्य था और यह इन आचार्यों का दिगंबरवाद हाँसास्पद और आलोचनीय है।

श्रीमन्त व व्यापार

व्यापार भारत वर्ष का था विश्व भर में हो रहा;
संसार का प्रति भाग था भारत हमारा हो रहा।
हम वैश्य मृत व्यापार से ही आज तक विख्यात;
हैं गिर गये, पर उस समय व्यापार में प्रख्यात थे ॥२६०॥

एक समय था जब कि हमारा वैश्य समाज एक जीवित समाज था और समस्त संसार में यह व्यापार कर रहा था संसार का प्रत्येक जन यह हमारे लिये एक भारत वर्ष सा हो था अर्थात् प्रत्येक देश इतना परिचित और संबंधित हो गया था। हमारे वैश्य समाज का आज पतन हो चुका है परन्तु यह पतित वैश्य समाज किसी समय व्यापार में अग्रणी था और आज तक तो कुछ इसकी कीर्ति थी वह उस व्यापार में अग्रणी के कारण ही था।

संसार भर में घूम कर व्यापार हम थे कर रहे;
सर्वत्र जल थल-व्योमवाहन थे हमारे चल रहे।
थे यान भारतवर्ष से सब अन्न भर कर जा रहे;
मरकत, रजत, मणि हेम भरकर थे वहाँ से ला रहे॥२६१॥

सर्वत्र संसार में हमारा व्यापार फैला हुआ था। जहाज और शकट आदि वाहनों को हम अन्न से भर कर अन्य देशों में ले जाते थे और वहाँ से मरकत, मणी, रत्नादि क्रय कर भारतवर्ष को लाते थे। वायुयानों में भी हम भ्रमण करते थे।

व्यापार से परिचय परस्पर थे हमारे बढ़ रहे;
संबंध कन्या ग्रहण के भी थे परस्पर मढ़ रहे।
सौहार्द, ममता, प्रेम, रस था उत्तरोत्तर जग रहा;
भ्रातृत्व बढ़ने था लगा, था विश्व कुल सा लग रहा ॥२६२॥

अन्य देशों में हमारा ज्यों ज्यों व्यापार उन्नत हुआ और बढ़ा त्यों त्यों अन्य देश वासियों से हमारा परिचय बढ़ा, सौहार्द, ममत्व और प्रेम और आनंद की परस्पर जागृति हुई और परस्पर विवाहादि भी होने लगे। समस्त संसार एक बड़े कुल के समान प्रतीत होने लगा था।

व्यापार में हम से बढ़ा था दीखता कोई नहीं;
जिस ग्राम में हम थे नहीं, वह ग्राम श्रुत था ही नहीं।
सर्वत्र थी संसार में हाटें हमारी खुल रहीं;
सर्वत्र क्रय थे बढ़ रहे, विक्री अतुल थी चल रही ॥२६३॥

व्यापार क्षेत्र में हम सर्व से आगे बढ़े हुये थे। संसार में ऐसा एक भी ग्राम, पुर नहीं था कि जहाँ हमारी दुकान नहीं थी। सर्वत्र संसार में हमारी दुकानें चल रही थीं और क्रय-विक्रय दिनोंदिन अतिशय बढ़ते ही जा रहे थे।

उपकरण स्वर्गिक ऐश का सब हाट में मौजूद था;
सामान सारा निर्धनों को मिल रहा बिन सूद था।
व्यापार सब विधि सत्यता की पीठ पर था चढ़ रहा,
धन, लोभ हमको यों बधिर, अंधा नहीं था कर रहा ॥२६४॥

हमारी दुकानों में सर्व प्रकार की उत्तमोत्तम् सामग्री थी। निर्धनों को बिना व्याज माल उधृत दिया जाता था। सत्यता का पालन व्यापार का प्रमुख मंत्र था। उस समय धन और लोभ हमको इस प्रकार हत्ज्ञान और स्वार्थी नहीं बना सके थे।

रस, केश औ गजदन्त का व्यापार हम करते न थे,
व्यापार पशुओं का नहीं था, लाख, मधु छूते न थे।
सब रत्न, मणि, पट, धातुओं का कुल प्रमुख व्यापार था,
अथवा अलाकृत वस्तु का व्यापार सहविस्तार था ॥२६५॥

हम ऐसा कोई व्यापार नहीं करते थे जिसमें पशु, तिर्यंच जीवों को सामग्री प्राप्त करने के लिये कष्ट देना पड़ता था। रस, केश, हाथी दाँत, मधु ये सब ऐसी सामग्रिये हैं जो पशु आदि जीवों से प्राप्त होती हैं और इनको प्राप्त करने के लिये जीवों को अतिशय सताना पड़ता है। हम कलावस्तुओं का, सर्व धातुओं का रत्न, मणि और मुक्ताओं का ही प्रमुख रूप से व्यापार करते थे।

था देश भारत स्वर्ण की विश्रुत तभी चिड़िया रहा,
यह देश द्रव्यागार था, यह देश रत्नों का रहा।

सम्पन्न हमने देश को व्यापार से जब यों किया;
संतुष्ट होकर देश ने श्रीमंतपद हमको दिया ॥२६६॥

हमारे उस उन्नत व्यापार का ही एक मात्र परिणाम था कि भारत वर्ष स्वर्ण की चिड़िया कहलाने लगा था, सर्व प्रकार की सामग्रियों का भंडार था और रत्नों का अपार आगार था। इस प्रकार जब हमने अपने व्यापार कौशल से भारत वर्ष को समृद्ध बनाया था तब भारत वासियों ने हमको श्रीमंतपद से अलंकृत किया था।

श्रीमंत, शाहूकार शाहा जी हमारे नाम हैं;
महाजन, बणिया, वैश्य भी औ सब हमारे नाम हैं।
प्रथम पद के शब्द त्रय हैं मान, गुण पद कह रहे;
सौहार्द, कौशल, कार्य अक्षर शेष त्रय हैं कह रहे ॥२६७॥

हम लक्ष्मी पति थे और साथ में ही थे सत्य व्यवहारी, और संमानित व्यक्ति। श्रीमंत, शाहूकार और शाह उपाधियें इसका प्रकट प्रमाण है। हम परोपकारी थे, नीतिकुशल थे और थे कार्यदक्ष। महाजन, बणिया और वैश्य शब्द ये सब प्रमाणित करते हैं।

व्यापार में वह धूम थी, होती समर में भी नहीं;
थी बढ़ रही दिन-दिन कृषी, मिलती न जगती थी कहीं।
थे व्योम-जल-थलयान आते हीर पन्नों से भरे;
थे लौटकर फिर जा रहे रस, अन्न वस्त्रों से भरे ॥२६८॥

युद्धक्षेत्र में होने वाली हलचल से भी अधिक हलचल

हमारे व्यापार क्षेत्र में थी। कृषी का भाव दिनोंदिन इतना बढ़ता जा रहा था कि नवीन खेतों के लिये जगह तक नहीं मिल रही थी। हमारे विमान, शकट और जहाज विदेशों से मुक्ता, माणिक, हीरे, पन्ने आदि भरकर भारतवर्ष को लाते थे और भारतवर्ष से अन्न और वस्त्र विदेशों को ले जाते थे।

गणना हमारी मोहरों पर आज तक होती रही;
दश, पांच, द्वादश, बीस कोटीध्वज हमें कहती रही।
निर्धन हमारे सामने वह सार्वभौमिक भूप था;
वे दिन विशद थे भाग्य के, यह दीन का नहिं रूप था ॥२६६॥

श्रीमंतता की गणना स्वर्ण मुद्राओं की संख्या पर होती थी। दश, बीस कोटि स्वर्णमुद्राओं का स्वामी—जो जैसा होता कहलाता था। हमारी रिद्धि और समृद्धि के समक्ष चक्रवर्ती राजा का ऐश्वर्य अकिंचन था। वह सचमुच ही हमारे भाग्य का काल था। उस काल में हम आज जैसे दीन हैं, नहीं थे।

वर शाह हममें पाठ चौदह हो गये श्रुत हैं यहाँ;
सम्राट बंधक 'शाहपद' हैं रख गये जिनके यहाँ।
लगता हमारे नाम के पहिले अतः पद शाह का;
सम्राट के औ बाद में ही सुपद लगता 'शाह' का ॥२७०॥

हमारी समाज में ७४ शाह महान श्रीमंत धनी हो गये हैं, जिनके समक्ष सम्राटों की रिद्धि सिद्धि भी अकिंचन रही है। दिल्ली के मुसलमान बादशाह जिनसे समय समय पर ऋण उधार लेते रहे थे। हम श्रेष्ठियों के नाम के पूर्व जो 'शाह' पद

लगता है, वह किसी सम्राट का बन्धक रक्खा हुआ है।

आनंद से, सद्दाल से, अलकेश हममें हो गये;
महाशतक, चुल्लणीशतक गोपाल गोपति हो गये।
जिनदत्त, धन्ना, शील, जगडूशाह कैसे शाह थे;
उपकार मय था द्रव्य जिनका, दीन की वे राह थे ॥२७१॥

आनंद श्रेष्ठि—ये १६ कोटि स्वर्ण-मुद्राओं के पति थे। इनके गौकुल में ४०००० गाएँ थीं। ये जहाजों द्वारा व्यापार करते थे। ये वाणिज्य ग्राम के निवासी थे और भगवान महवीर के मुख्य श्रावकों में थे।

सद्दालश्रेष्ठि—ये जाति के कुम्भकार थे। भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे। ये तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के अधिपति थे और इनकी दुकानें अनेक देशों में थीं। इनकी बड़ी २ दुकानें ५०० थीं।

महाशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये २१ करोड़ स्वर्णमुद्राओं के स्वामी थे और इनके गौकुल में ८०००० गाएँ थीं। ये राजगृही के रहने वाले थे।

चुल्लणीशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। इनके गौकुल में ८००० गाएँ थीं।

जिनदत्तश्रेष्ठि—ये महा धनकुबेर श्रेष्ठि थे। ये सोपारपुर के रहने वाले थे। ये वज्रसेन सूरि के समय उपस्थित थे।

धन्नाश्रेष्ठि—इनकी कथा सर्वाधिक सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये भी बड़े

जब देखते हैं भूत वैभव, निकल पड़ते प्राण हैं,
इस रिद्धि के सामने समृद्धि सब म्रियमाण हैं।
पाश्चात्य जन के अभिमतों पर हाय! हैं इठला रहे,
हम देश के त्रय भाग धन के स्वामी हैं कहला रहे ॥२७२॥

जब हम हमारे भूतकाल के वैभव पर विचार करते हैं तब हमारा हृदय विदीर्ण हो जाता है। हमारे पास में इस युग में जो धन और रिद्धि है वह उस भूतकाल के ऐश्वर्य के समक्ष नगण्य है। पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि भारत का तीन चौथाई धन वैश्य-समाज के हाथों में है और हम यह श्रवण कर फूल जाते हैं परन्तु यह नहीं सोचते कि यह तीन चौथाई धन उस अतीत काल के वैभव का कौनसा भाग है!

थोथी प्रशंसा का कहो क्या अर्थ होना चाहिये?
गिरते हुये को हाय! कैसे धन्य कहना चाहिए!
लक्षाधिपति उस काल में यों गण्य होते थे नहीं,
इन आज के कोटीश सम उस काल के थे दीन ही ॥२७३॥

धनाढ्य थे। इन्होंने रिद्धि-सिद्धि छोड़ दीक्षा ग्रहण की थी।

शालिभद्र—ये भी अतुल वैभव के स्वामी थे। इन्होंने भी समस्त रिद्धि-सिद्धि को छोड़कर संयम व्रत ग्रहण किया था।

जगडूशाह—ये अणहिलपुर (पाटण) के महाराजा विशलदेव के समय उपस्थित थे। इन्होंने पंचवर्षीय दुष्काल में जो उस समय पड़ा था करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं का अन्न क्रय कर दानशालाएँ भोजनालय खोले थे और दीन, क्षुधित जनता का रक्षण किया था।

इस प्रकार की सराहना मिथ्या है जबकि हम अतीत की अपेक्षा वर्तमान में पतित ही हैं। भूतकाल में इन आज के लक्षाधिपतियों का तो कोई स्थान ही नहीं था और आज के कोटिपतियों जैसे तो भूत काल के निर्धन थे।

क्षत्री सभी थे देशरक्षक, विप्र विद्या, ज्ञान के,
थे शूद्र सेवी देश के, थे वैश्य पोषक प्राण के।
पोषण-भरण यदि आज तक हम देशका करते नहीं,
इस रूप में यह देश तुमको आज यों मिलता नहीं ॥२७४॥

क्षत्रियों का देश की रक्षा करना, ब्राह्मणों का विद्योपार्जन और ज्ञान संपादन करना और कराना, शूद्रों का इतर त्रय समाजों की सेवा करना और वैश्यों इतर का त्रय समाजों का भरण पोषण करना कर्तव्य था। यदि हमारी वैश्व समाज ने तन-मन-धन से अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया होता तो आज यह देश इस रूप में भी नहीं होता ।

व्यापार कला का प्रभाव—

व्यापार से ही जन्म है इस गणित, ज्योतिष का हुआ,
व्यापार की सोपान पर साम्राज्य भी प्रोत्थित हुआ।
श्रुति, वेद, आगम, शास्त्र का उद्भव इसी से है हुआ,
कौशल, कला, विज्ञान का व्यापार स्रष्ठा है हुआ ॥२७५॥

व्यापार ने ही गणित और ज्योतिष को जन्म दिया है, साम्राज्यों की स्थापना की है, कला-कौशल और विज्ञान को उत्पन्न किया है और वेद, आगम, धर्मशास्त्रों के प्रणायन की प्रेरणा की है।

वैश्यकुल की साक्षरता

हाँ, वैश्यकुल में आज भी अनपढ़ न मिल सकता कहीं,
तब सुखद काल सुवर्ण में संशय न है रहता कहीं।
व्यापार करना था हमारा कर्म, है सब जानते,
फिर अज्ञ रहकर, कर सके व्यापार, क्या तुम मानते ?॥२७६॥

इस पतित अवस्था में भी वैश्यसमाज ऐसा संभवतः कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा, जो कुछ भी पढ़ना, लिखना नहीं जानता हो। फिर उस उन्नति काल की तो बात ही अलग है। हमारा प्रमुख कर्म व्यापार करना था, फिर भला हम कैसे अपठित रह सकते थे ?

यतिवर्य्य कुलगुरु वे जिन्हें गुरुराज कहते हैं सभी,
थे ज्ञान हमको दे रहे आगम, निगम जग के सभी।
हर ठौर गुरुकुल खुल रहे थे, छात्र औ थे पढ़ रहे,
दश, चार विद्याविज्ञ हो घर लौट कर थे जा रहे॥२७७॥

यतिवर्ग और कुलगुरुवर्ग आज भी गुरु सदृश माने जाते हैं। ये यति और कुलगुरु ही भतकाल में हमको आगम-निगम और व्यवहारिक विद्यायें पढ़ाते थे। सर्वत्र विद्यालय खुले हुये थे और उन विद्यालयों से विद्यार्थी चौदह विद्याओं में पारंगत होकर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।

वातावरण

हा ! उस समय का और ही कुछ और वातावरण था;
प्रिय पाठको ! सच मानिये वह कलावर्ण सुवर्ण था।

कंचनशिला पर बैठकर हम पो रहे मणिहार थे;
भिक्षार्थ आये भिक्षुको फिर दे रहे वह हार थे ॥२७८॥

भूतकाल में हमारा वैभव अलौकिक ही था। पाठको! सचमुच ही वह काल स्वर्ण-काल था। स्वर्णशिला के आसन पर विराजित होकर हम मणिहार तैयार करते थे और अगर कोई योग्य याचक आ जाता तो वह अमूल्य मणिहार हम उस याचक को प्रदान कर देते थे।

उस समय के स्त्री-पुरुष—

नर देव हैं, हैं नारियाँ मृतवर्ग में सुरदेवियाँ;
नर ज्ञान गरिमागार हैं, हैं नारियाँ गुणराशियाँ।
उपकार प्राण पुरुष हैं, सेवा परायण नारियाँ;
सर्वत्र आनंद-क्षेम हैं, हैं खिल रही फुलवारियाँ ॥२७९॥

देखिये, ये भूतकाल के पुरुष देवता हैं, ज्ञान के सागर हैं, महोपकारी हैं और स्त्रियाँ मृत्युलोक में स्वर्गलोक की देवियाँ हैं, सर्वगुणसंपन्ना हैं, सेवा धर्म परायणा हैं। सर्वत्र आनंदमंगल छा रहा है और जीवन रूपी वाटिका की फूलक्यारियाँ प्रफुल्लित हो रही हैं।

बाहर प्रमुख नरदेव हैं, भीतर प्रधाना नारियाँ;
हैं कर रही कैसी व्यवस्था लेख लो सुकुमारियाँ।
उनमें कलह, शैथिल्य, आलस नाम को भी हैं नहीं;
जो भी मिलेंगे गुण मिलेंगे, दोष मिलने के नहीं ॥२८०॥

घर के बाहर पुरुषों की प्रधानता है और घर के भीतर सर्व प्रकार की व्यवस्थाओं में स्त्रियों की प्रधानता है। शिथिलता, आलस्य, पारस्परिक कलह आदि दोष इन स्त्रियों को छू तक नहीं पाये हैं। इन स्त्रियों में प्रयास करके देख लीजिये कोई दोष नहीं मिलेगा, गुण ही गुण मिलेंगे।

व्यापार में, व्यवसाय में, उद्योग में, राजत्व में—
नर, नारि दोनों हैं कुशल संसार के हर तत्त्व में।
बल-बुद्धि प्रतिभापुंज हैं, सब ज्ञान के भण्डार हैं;
विज्ञान के, कौशल्य के, सौजन्य के आगार हैं ॥२८१॥

स्त्री और पुरुष दोनों व्यापार में, धन्धों में, उद्योग में और राज कार्य में और संसार के अन्य सर्व प्रकार के कार्यादि में कुशल हैं। दोनों में यथेष्ठ बल है, बुद्धि है और प्रखर विचार-शक्ति है। दोनों ज्ञानी, विज्ञानी और कलाविद हैं। दोनों सज्जन और उदार हैं।

हैं नारियाँ या देवियाँ या कल कला प्रत्यक्ष हैं;
सीनो, पीरोना जानती हैं, कार्य कुशला, दक्ष हैं।
पति धर्म है, पति मर्म है, पति एक उनका कर्म है;
वे स्फूर्ति की प्रतिमूर्ति हैं, उनके नयन में शर्म है ॥२८२॥

ये स्त्रियाँ स्त्रियाँ हैं, या देवलोक की देवियाँ हैं या प्रत्यक्ष कलादेवियाँ हैं। सीना, पीरोना आदि हर स्त्री-कर्म में वे अत्यन्त कुशला एवं चतुरा हैं। ये अपने एक मात्र पति को ही धर्म, कर्म और मर्म समझती हैं। सर्व स्फूर्तिमती और लज्जावती हैं।

ये देख लो ये सज रही हैं साज नव रण के लिये;
रुक जाय नर-संहार यह, वे जा रही हैं इस लिये।
दुख है न कोई चीज उनको ऐश क्या ? आराम क्या ?
अवशिष्ट रहते कार्य के उनको भला विश्राम क्या ? ॥२८३॥

यहाँ देखिये, ये स्त्रियाँ वीरांगनाओं का वीर वेष धारण करके नये छिड़ने वाले समर को रोकने के लिये युद्धस्थल को जा रही हैं। ये स्त्रियें दुःख, सुख और आराम की तो तनिक भी परवाह नहीं करती हैं। इनके निकट कार्य का भाव होते विश्राम कोई वस्तु नहीं है।

संतान—

संतान सब गुणवान हैं, बलवान हैं, धीमान हैं;
माता, पिता में भक्ति है, सब के प्रति सम्मान है।
माता, पिता का पुत्र से, अतिशय सुता से प्रेम है;
संतान के कल्याण में माता, पिता का क्षेम है ॥२८४॥

संतान गुणवान, बलवान और बुद्धिमान है। पुत्र माता-पिता का भक्त है, वह अन्य सर्व के प्रति संमान के भाव रखता है माता, पिता का पुत्र और पुत्रियों पर अनंत स्नेह है वे सदा संतान के कल्याण में अपना कल्याण समझते हैं।

जब देव सदृश हो पिता, देवी स्वरूपा मातृ हो;
संतान उत्तम क्यों नहीं, ऐसे सगुण जब पितृ हो।
पति-पत्नि के गुण पुञ्ज का संतान होती योग है;
ये गुण्य-गुणक राशियों का गुणनफल है, योग है॥२८५॥

११

जिन माता और पिता में सर्व दैवी गुण विद्यमान हो, उनकी संतान भला उत्कृष्ट क्यों नहीं होगी। संतान में माता और पिता के गुणों का योग होता है। संतान माता और पिता के गुणों का गुणनफल है।

दाम्पत्य जीवन—

संतान आज्ञापालिनी है, नारि आज्ञाकारिणी;
सब कार्य प्राणाभृत्य है, समृद्धि है अनुसारिणी।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा;
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा?॥२८६॥

गृहस्थ जीवन में स्वर्गिक आनंद है। क्यों नहीं होवे, जब संतान आज्ञाकारी हो, स्त्री आज्ञावर्तिनी हो, सेवक कर्तव्यनिष्ठ हो और रिद्धि और सिद्धि पुरुषों की इच्छानुसार वर्तनेवाली हो। कमलों से पूर्ण निर्मल सरोवर जिस प्रकार सुशोभित होता है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन कमल रूपी निर्मल, आत्मा पुत्र, स्त्री और सेवक को पाकर क्यों नहीं सुन्दर होवे।

कर्तव्याचरण—

हो कूकड़ा का कूक इसके पूर्व ही सब जग गये,
जिनराज का करके स्मरण सब प्रति-क्रमण में लगागये।
आलोचना, पचखाण औ गुरु-देववंदन हो गये,
यों धर्म कृत्यों से निपट गृहकार्य रत सब हो गये ॥२८७॥

सर्व स्त्री, पुरुष मूर्गे की बांग होने के पूर्व ही जाग्रत हो जाते हैं और सर्व प्रथम जिनेश्वर भगवान का ध्यान करते हैं

और प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण में वे अपने किये गये कर्मों की अलोचना और उन पर विचार करते हैं। पापसहित व्यापारों का पच्चक्खाण करते हैं कि उनकी फिर आवृति न हो। प्रतिक्रमण करके सर्व स्त्री, पुरुष गुरु महाराज को वंदन करने के लिये और मन्दिर का दर्शन करने जाते हैं। यो सर्व स्त्री-पुरुष प्रथम धर्मव्रतों से निवृत होकर गृहकार्य में प्रवृत होते हैं।

स्वाध्याय, पूजन, दान, संयम, तप तथा गुर्वर्चना,
कर्तव्य हैं ये नित्य के औ है अतिथ्यभ्यर्थना।
ये देखकर बाधा विविध रुकते न चलती राह हैं,
तन, प्राण की, धन ऐश की करते न ये परवाह हैं ॥२८८॥

शास्त्राभ्यास करना, पूजन करना, दान देना, व्रत, संकल्प करना, तपस्या करना, गुरु की सेवा करना, गुरु का मान करना और आये हुये अतिथियों का सत्कार करना इन स्त्री और पुरुषों के नित्य कर्म हैं। ये अपने धर्म के निश्चित और निर्दिष्ट मार्ग में सहस्रों बाधा, विघ्न आने पर भी चलते हुये नहीं रुकते हैं। धर्म कृत्यों के करने में और धर्म की आराधना करने में ये अपने शरीर, प्राण, धन और वैभव की तनिक भी चिंता नहीं करते हैं।

'वंदित्त' से इनके उरों का सब पता लग जायगा,
व्यवसाय, जप, तप कर्म का सब कुछ पता लग जायगा।
निःराग हैं, निर्द्वेष हैं, निष्क्लेश ये नर नारि हैं,
उपकार कर्ता पुरुष के उतकृत सभी नरनारि हैं ॥२८९॥

'वंदित्त' जैन शास्त्रों में एक आलोचना का अध्याय है। इस अध्याय में ५० श्लोक हैं। इन श्लोकों में कर्तव्याकर्तव्य, कर्माकर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन है। प्रतिक्रमण करते समय आज भी स्त्री, पुरुष इस अध्याय का पाठ करते हैं। सर्व स्त्री और पुरुष रागद्वेषरहित हैं, कलह से दूर हैं, और उपकारी के प्रति कृतज्ञ हैं।

मन्दिरों का वैभव—

ये रव्युदय के पूर्व ही हैं देवमन्दिर खुल गये;
ये ईश के दरबार में सरदार आकर जम गये।
आह्लादकारी घण्टरव थल, व्योम में है छा रहा;
है भक्तजन के कण्ठ से संगीत जीवन पा रहा ॥२६०॥

सूर्योदय के पूर्व ही मन्दिर खुल गये हैं, भगवान की मूर्ति के समक्ष भक्तगणों की सभा लग रही है, आनन्द देने वाली घन्टों की मधुर ध्वनि से आकाश और पृथ्वी पूरित हो रहे हैं और भक्तजन मधुर कण्ठों से ईश कीर्तन कर रहे हैं।

है मन्दिरों का ऐश-वैभव स्वर्गपुर का-सा सही;
नर्तन कहीं सुर-नर्तकी का, गान कण्ठी का कहीं।
रवि, चन्द्र का है मान, मर्दन दीपमाला कर रही;
है भक्तगण के कीर्तनों से गूँजती मण्डप मही ॥२६१॥

मंदिर मालाओं की शोभा और वैभव अमरपुरी की शोभा और वैभव-सी है। कहीं देवाङ्गनाओं का नर्तन हो रहा है, कहीं गायक मधुर कण्ठ से संगीत कर रहे हैं, सूर्य और चन्द्र के

प्रकाश को भी लज्जित करने वाली दीपमालायें जगमगा रही हैं। और भक्तजनों के कीर्तनों की ध्वनि से पृथ्वी मण्डल पूर्ण हो रहा है।

सम्राट सम्प्रति चैत्यवंदन कर रहे हैं लेख लो,
सामन्त पूजा कर रहे हैं भक्ति पूर्वक पेख लो।
वंदन सुदर्शन श्रेष्टि सुत हैं शिर झुकाकर कर रहे;
श्रावक, श्रमण सब वंदना कर लौटकर हैं जारहे ॥२६२॥

सम्राट सप्रति देवदर्शन कर रहे हैं। भक्तिभावों से भरे हुये उनके सामंतगण पूजन कर रहे हैं। सुदर्शन श्रेष्ठि भगवान के बिब को बंदन कर रहे हैं। दर्शकगण दर्शन करके पुनः घर के प्रति लौट रहे हैं।

इन मन्दिरों से प्राण अब तक धर्म हैं पाते रहे;
मस्जिद, मकबरे और गिर्जागृह यही बतला रहे।
पर आज के हा! सभ्यजन इनको मिटाना चाहते;
ये बांध ग्रीवा में उपल हैं डूब मरना चाहते ॥२६३॥

इन देवमन्दिरों ने आज तक धर्म के स्थायीत्व को स्थिर रक्खा है, यह संसार के समस्त मस्जिद, मकबरे और गिर्जागृह स्पष्ट प्रमाणित कर रहे हैं। धर्म के ऐसे स्तंभों को, परन्तु, आज की सभ्यता में पले मनुष्य स्थिर रहने देना नहीं चाहते हैं। ये अपने कण्ठ में शिला बाँधकर संसार रूपी महा सागर में निमग्न होना चाहते हैं।

गुरुकुल—

है ब्रह्मवेला आ गई, हैं घण्ट चहुदिश बज रहे;
गुरुपर्ण कुटि प्रति शिष्यगण सब जाग कर हैं चल रहे।
गुरुदेव को हैं शिष्यगण गुरुदेववंदन कर रहे;
गुरु शिष्य के उसकाल में सम्बंध हैं सुन्दर रहे ॥२६४॥

रात्रि का चतुर्थ प्रहर है। चारों दिशायें घंटों के मधुर कलरव से पूर्ण हो रही हैं। शिष्यमण्डली जाग्रत होकर अपने गुरु की पर्ण कुटि के प्रति जा रही है। शिष्यगण गुरुमहाराज के समक्ष गुरुवंदन सविधि कर रहे हैं। उस समय में गुरु और शिष्यगण में बड़े सुन्दर सम्बन्ध थे।

श्रुति-शास्त्र पढ़ते पाठकों के कलित रव हैं हो रहे;
नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा भूलोक-शिक्षण हो रहे।
देखो, यहाँ हैं शाकटायन शब्द-व्याख्या कर रहे;
चौषठकला, दशचार विद्या शिष्यगण हैं पढ़ रहे ॥२६५॥

विद्यार्थीगण विद्याभ्यास कर रहे हैं। आगम और शास्त्रों का पठन कर रहे हैं। उनकी ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही हैं। गुरुगण भूगोल, ज्योतिष का शिक्षण दे रहे हैं। प्रसिद्ध वैय्याकरणी शाकटायन व्याकरण पढ़ा रहे हैं। विद्यार्थी चौषठ कलायें और चौदह विद्याओं का शिक्षण पा रहे हैं।

ऐकान्त आये स्थान में अब शस्त्रशिक्षण पेखलो,
ऐपुष्पवत गुरुराज को लगते हुये शर लेखलो।

कुछ लक्ष्य भेदन, शब्दभेदन, द्वन्द्वरण हैं कर रहे,
रविदेश को ढकने किसी के कर कलावत चल रहे ॥२६६॥

शहर से दूर एकान्त निर्जन स्थान में विद्यार्थीगण को गुरुगण शस्त्रास्त्र का प्रयोग सिखा रहे हैं। सामने विराजमान गुरु पर शिष्यगण बाण चला रहे हैं और वे बाण गुरु को पुष्प के समान छूकर गिर रहे हैं। कुछ विद्यार्थी निश्चित लक्ष्य पर, कुछ शब्द के घोष पर बाण चला रहे हैं। कुछ द्वन्द्वयुद्ध कर रहे हैं और कुछ विद्यार्थियों के हाथ सूर्यदेव को बाणों से आच्छादित करने की दृष्टि से यंत्रगति से चल रहे हैं।

हे पाठको! अब बाण ये सब एक पर चलने लगे,
जाकर उधर शरचक्र से कच-व्याल से कटने लगे।
गिरिराज का कोई गदा से चूर्ण मर्दन कर रहा,
करतल लिये अगखण्ड कोई चक्रवत घूमा रहा ॥२६७॥

हे पाठक वृंद। व्यक्तिगत अभ्यास हो जाने के पश्चात अब सब विद्यार्थी एक साथ एक अद्वितीय धनुर्धर विद्यार्थी पर बाणवर्षा कर रहे हैं और वह विद्यार्थी चक्र को यंत्रगति से घुमा रहा है और सर्व बाण चक्र से सर्पों के सदृश सहज कट कट कर भूपर पतित हो रहे हैं। कोई विद्यार्थी पर्वत का खण्ड लेकर ही उसे अपनी करतली पर घुमा रहा है।

उपाश्रय—

हैं मंच पर बैठे हुये उपदेश गुरुवर दे रहे,
इसलोक के परलोक के ये मर्म हैं समझा रहे।

सबसुर, असुर, देवेन्द्र हैं व्याख्यान में बैठे हुये,
परिषद् विसर्जित हो गई जिनराजजय कहते हुये ॥२६८॥

गुरु महाराज आसनारूढ़ होकर इसलोक और दैव लोक और मोक्ष लोक की बातें समझाते हुये व्याख्यान दे रहे हैं और देवता इन्द्र, राक्षस सभी ही व्याख्यान में संमिलित हैं। 'जिनेश्वर भगवान की जय' कह कर सभा विसर्जित हो गई।

अरिहंत का स्वागत—

कर बद्ध करके चरण नंगे भूपति हैं चल रहे;
चतुर्विध सजकर सैन्य हैं सामंत पीछे चल रहे।
वाद्यंत्र के निर्घोष से है व्योम पूरित हो रहा;
जिन स्वागतोत्सव देवतरुवर के तले है हो रहा ॥२६६॥

त्रयगढ़ मनोहर की अमर हैं रम्य रचना कर रहे;
अरिहंत का सुर मणिजटित आसन यहाँ हैं धर रहे।
लो! देशना देने लगे विभुमन्च पर अब बैठकर;
तिर्यंच तक रस ले रहे हैं मातृजिह्वा श्रवण कर ॥३००॥

भगवान् तीर्थंकर का शुभागमन हो रहा है। स्वागत करने स्वयं सम्राट हाथ जोड़े हुये नंगे चरण आगे आगे चल रहे हैं। उनके सामंतगण चतुर्विध सैन्य के साथ उनके पीछे २ चल रहे हैं। वाद्यंत्रों के घोष से चारों दिशायें व्याप्त हो रही हैं। भगवान का स्वागत सहस्राम्रवृक्ष के नीचे हो रहा है। देवतागण समवोशरण की रचना कर रहे हैं और भगवान् के विराजने के लिये रत्नों का आसन रख रहे हैं। ये देखिये! भगवान् आसन
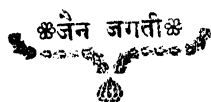
पर विराजमान होकर उपदेश देने लगे हैं। देवता और पुरुष तो क्या तिर्यंच प्राणी तक भगवान के उपदेश का अपनी जिह्वा में श्रवण कर रहे हैं।

भोजनवेला—

हैं देवियाँ देखो, गृहों में पाक-व्यञ्जन कर रहीं;
आकर प्रतीक्षा द्वार पर हैं साधु, मुनि की कर रहीं।
यदि आ गया मुनि, ब्रह्मचारी भाग्य उनके जग गये;
सब को खिला कर खा रहीं, भोजन नवागत कर गये॥२०१॥

देखो, देवियों की समता करने वाली स्त्रियाँ गृहों में पाक और भोजन बना रही हैं। द्वार पर खड़ी होकर साधुमुनि की प्रतिक्षा कर रही हैं। साधु, मुनि, ब्रह्मचारी विद्यार्थी का वे स्वागत कर अपना अहोभाग्य समझ रही हैं। अतिथि, परिजन सर्व भोजन कर चुके हैं। अब वे भोजन कर रही हैं।

हाटमाला—

देखो, यहाँ है हाटमाला स्वर्ण सुन्दर लग रही,
भूषण उधर को, वस्त्र की इस ओर विक्री हो रही।
ग्राहक जुड़े हैं हाट पर, बिन भाव पूछे ले रहे,
हैं शाह जी के सत्य की सुर नृप परीक्षा ले रहे॥२०२॥

देखिये! यहाँ हाटमाला कितनी स्वर्णाभ सुन्दर लग रही है। एक ओर आभूषणों की विक्री हो रही है और दूसरी ओर वस्त्रों का विक्रय हो रहा है। दुकानों पर ग्राहकों की भीड़ लगी है। ग्राहकों का दुकान दारों की सत्यता में पूर्ण

विश्वास है। ग्राहक बिना पूछे वस्तुओं का क्रय कर रहे हैं। देवता गण और राजा दुकानदारों की सत्यता को ग्राहकों में मिलकर परीक्षा कर रहे हैं।

राजप्रासाद—

ये चक्रवर्ती भूप के प्रासद हैं; तुम लेखलो,
आमात्यवर से कर रहें हैं मंत्रणा नृप, लेखलो।
साम्राज्य में मेरे कहींभी चोर, लंपट हैं नहीं,
हो देश जिससे स्वर्गसम, करना मुझे मंत्री! वही॥२०३

ये सार्वभौम सम्राट के राजप्रासाद हैं। सम्राट और महात्मा परस्पर मंत्रणा कर रहे हैं। सम्राट महादात्य से अपने विचार कह रहे हैं। आमात्यवर! मेरी प्रजा को चोर, तस्करों का कोई भय नहीं है, परन्तु इतने से मुझको संतोष नहीं है। स्वर्ग के समान मेरा देश हो और देव और देवियों के समान मेरे साम्राज्य के सर्व पुरुष और स्त्री सुखी, समृद्ध, तेजस्वी, गुणी और पराक्रमी हों मेरा प्रमुख उद्देश्य है।

पारस्परिक व्यवहार—

राजा, प्रजा में प्रेम है, सौहार्द है, अनुराग है,
द्विज शूद्र चारों वर्ण में सब प्रेम का ही भाग है।
वैषम्य, कुत्सित द्वेष का तो नाम तक भी है नहीं;
अपवर्ग भारतवर्ष है, ऐसी न कोई है मही॥२०४॥

राजा और प्रजा में परस्पर सहयोग भावना, प्रेम और प्रीति है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में

परस्पर अगाध प्रेम का संबंध है। राग, द्वेषादि कुत्सित भावनाओं का कहीं भी चिह्न तक नहीं दिखाई पड़ता है। भारतवर्ष मृत्युलोक में स्वर्ग का अवतार है। इसकी समता करने वाला अन्य कोई ऐसा समृद्ध, सुखी देश नहीं है।

कार्यविभाग—

आचार्य धर्माध्यक्ष हैं, क्षत्री सभी रणधीर हैं,
हैं विप्र शिक्षक वर यहाँ, अंत्यज कलाधर वीर हैं।
ये वैश्य सब व्यापार में, व्यवसाय में निष्णात हैं;
उद्योत आठों याम है, होती न तमभृत रात है ॥२०५॥

साधु, मुनि, त्यागी, विरक्तों का प्रमुख कर्तव्य धर्माराधना, करना, कराना और करवाना है। क्षत्रियों का प्रमुख कर्म आततायी, आक्रमण कारियों के विरुद्ध युद्ध का लड़ना है। ब्राह्मणों का मुख्य कर्म विद्याध्यन करना और कराना है। शूद्रों का प्रमुख कर्तव्य इतर वर्णों की सेवा करना और कला-कौशल में दक्ष होना और अवसर पर रण में योद्धा बनकर भाग लेना है। वैश्य कुशल व्यापारी है। रात और दिवस सुख के प्रकाश से प्रकाशित है। दुःख का अंधकार बढ़ाने वाली रात्रि होती ही नहीं है।

दानालय—

नंगे निरन्नों को यहाँ हैं वस्त्र, भोजन मिल रहे;
कहते न उनको दीन, हैं आतिथ्य उनका कर रहे।
हो स्वर्णयुग चाहे भले, पर रंक तो रहता सदा;
तम-तोम का शुचि दिवस में भी अंश तो मिलता सदा॥२०६॥

दानशालाओं में वस्त्रहीनों को वस्त्र और क्षुधितों को भोजन दिये जा रहे हैं। दातागण इनको दीन समझ कर इनके साथ अपमान भरा व्यवहार नहीं कर रहे हैं, वरन् इनके साथ आतिथ्य व्यवहार कर रहे हैं। कोई भी युग भले अधिक से अधिक समृद्ध क्यों न होवे, निर्धन और दुःखियों का फिर भी भाव तो रहेगा ही, चाहे वह भाव न्यूनतम भले हो। दिवस कितना भी प्रकाश पूर्ण क्यों न हो, कहीं न कहीं अंधकार की रेखा तो विद्यमान मिलेगी ही।

गवालय—

आनंद, चुल्लक, नंदिनीप्रिय के घरों को देखिये;
बहती वहाँ दुधि, दुग्ध की व सहस्र धारा लेखिये।
हा ! आज गौ पर हो रहा हर ठौर खंगाघात है;
घृत दुग्ध देती है, उसी पर हा ! कुठाराघात है ॥३०७॥

आनंद, चुल्लक और नंदिनी प्रिय कई कोटि स्वर्णमुद्राओं के स्वामी और सहस्रों गौओं के पति थे। इनके घरों से घी, दूध दही तक की नदियाँ बहती थीं। कितना दुख है आज घी दूध देनेवाली उन्हीं गौ माताओं का वध होता है।

विहंग पश्वालय—

अज, अश्व, गौ, गज, सिंह, मृग हैं एक कुल में रह रहे;
पिक, केकि, कोका, सारिका, पन्नग यहीं हैं रह रहे।
आश्चर्य है, हैं किस तरह सारंग, पन्नग मिल रहे;
उनकी कला वे जानते, हम तो कथा हैं कह रहे ॥३०८॥

बकरी, घोड़ा, गाय, हाथी, सिंह, हिरण और कोयल, तोता, मैना, मोर, सर्प सब एक ही स्थान में निर्बंध प्रेमपूर्वक रह रहे हैं। हम तो मात्र कहानी कह रहे हैं। परन्तु आश्चर्य होता है सिंह और गौ, बकरी आदि और मयूर और सर्पादि कितने अगाध प्रेम से साथ साथ रह रहे हैं। यह कला वे पूर्वज ही जानते थे।

निःशुल्क—

निःशुल्क होती है चिकित्सा, शुल्क कुछ भी है नहीं;
देखो, मनुज, पशु, आदि सब की है चिकित्सा हो रही।
यति कुल लखो है आज भी निःशुल्क औषध दे रहा;
वह भूत भारतवर्ष का औदार्य है झलका रहा ॥२०६॥

चिकित्सालय को देखिये; मनुष्य, पशु सर्व प्राणियों की बिना पैसा दिये चिकित्सा हो रही है। हमारा जैन यतिसम्प्रदाय आज भी अधिकांश में बिना पैसा लिये चिकित्सा कर्म कर रहे हैं। यतिवर्ग को निःशुल्क चिकित्सा करते देखकर भारतवर्ष के अतीत औदार्य भाव की हमको स्मृति हो आती है।

ग्राम-नगर—

हैं ग्राम, पुर, सारे सहोदर, प्रेममय व्यवहार है;
हर एक का दुख, सुख यहाँ दुख भार है, सुख सार है।
सब के भरण-पोषण निमित ये कृषक करते काम हैं;
हैं अस्थियाँ तक घिस गईं, कुछ शेष तन पर चाम है॥२१०॥

ग्रामों और नगरों में परस्पर प्रेम भरा सहयोग का भाव, भावों से भरा व्यवहार है। एक दूसरे का सुख, दुख एक दूसरे को सुख, दुख है। कृषक पुर नगर की सर्व मानव समाज के लिये अन्न उत्पन्न करता है। घोर श्रम करने से उसका शरीर चर्म से ढका हुआ एक मात्र हड्डियों का ढांचा रह गया है।

सब वैश्य साहूकार हैं, वर वीर क्षत्री हैं सभी;
है उर्ध्वरेता विप्रगण, हैं शूद्र जन सेवी सभी।
निज कर्म सब हैं कर रहे,नहि भेद हैं, नहीं द्वेष है;
धर्मान्ध छूताछूत की दुर्गंध का नहिं लेश है ॥३११॥

वैश्य समाज सच्चा व्यापारी है, क्षत्री समाज सच्चा योद्धा है, विप्रसमाज तपस्वी और सच्चा क्रियावान है, शूद्र समाज सच्चा जनसेवक है। प्रत्येक समाज अपने २ कर्तव्य का निर्वाह तन, मन और धनप्रण से कर रहा है। परस्पर ऊँच नीच के भेद, छूत अछूत के भाव और राग, द्वेष का कुत्सित वायु तनिक भी कहीं नहीं है।

सब में परस्पर पाणि पीड़न प्रेम से हैं हो रहे;
योग्या सुता वर योग्य को सर्वत्र सब हैं दे रहे।
योग्या सुता वर मूर्ख को होती न स्वीकृत आज है!
नहिं विप्र का भी विप्र में संबंध होता आज है! ॥३१२॥

चारों वर्णों में परस्पर कन्यासंबंध प्रेम पूर्वक होते हैं। किसी वर्ण की योग्य सुत और सुता का विवाह किसी भी वर्ण की

योग्या सुता और सुत के साथ सरलता से होता है। वर्तमान काल में तो योग्या कन्या को एक मूर्ख पर अस्वीकृत करते विलंब नहीं करता है और अधिक क्या, अब तो एक ब्राह्मण अन्य ब्राह्मण को अपनी कन्या नहीं विवाहता है।

सब ग्राम,पुर धन-धान्यभृत हैं, स्वास्थ्यप्रद जलवायु है;
भूमी अधिक है उर्वरा, सब नारि नर दीर्घायु हैं।
इनमें न ऋण की रीति है, कहते किसे फिर सूद हैं;
उपकरण जीवन के सभी हर ग्राम में मौजूद हैं ॥२१३॥

हर एक ग्राम और नगर धन, धान्य और जीवन के लिये हर आवश्यक सामग्री से पूर्ण है। आबहवा स्वास्थ्यवर्धक है। भूमी उपजाऊ है। स्त्री और पुरुष दीर्घायु हैं। रुपया उधार कोई नहीं लेता है; क्योंकि हर एक पुरुष सम्पन्न है। फिर ब्याज क्या चीज है, कोई नहीं जानता है।

औदार्यचेता भूप हैं, दुष्काल हैं पड़ते नहीं;
षष्ठांश कर से कर अधिक नहिं भूप हैं लते कहीं।
कर भूप हैं ले रहे, हैं व्यय प्रजाहित कर रहे,
अनिवार्य शिक्षा है यहाँ, गुरुकुल यहाँ हैं चल रहे ॥२१४॥

राजा उदारहृदय है। दुष्काल नहीं पड़ते हैं। राजा उपज और पैदावार का छटा भाग लेते हैं और वह भी प्रजा के हितार्थ ही व्यय किया जाता है। पढ़ना लिखना अनिवार्य है। हर ग्राम और नगर में पाठशालायें खुली हुई हैं।

देखो यहाँ होते यों घूँस के व्यापार हैं,
ग्रामीण जन पर आज से होते न अत्याचार हैं।
नृप आप जाकर ग्राम में पूछते 'क्या हाल है' ?
कैसा प्रजापति वह भला काटे न दुख तत्काल है ॥२१५॥

आज जैसा ग्रामीणजनों के साथ असभ्यता और दुराचार का व्यवहार किया जाता है तथा जैसी रिसवतखोरी चलती है वैसी रिसवतखोरी और अत्याचार उस समय में नहीं थे। स्वयं महाराज ग्राम, ग्राम जाकर वहाँ के निवासियों के दुःख दर्द को देखते थे और तत्काल उसको दूर करते थे। वह राजा कैसा जो अपनी प्रजा के दुख दर्द को मिटाने में असमर्थ सिद्ध होता है ?

यों भ्रूणहत्या, अपहरण देखो कहीं होते नहीं,
दुःशीलता की बात क्या ! रतिचार तिल छूते नहीं।
हा ! वृद्ध भारत ! पुत्र तेरे जन्मते थे गुण भरे,
हा ! हंत ! अब तो प्रौढ़ भी हैं दीखते अवगुण भरे !! ॥२१६॥

गर्भ का गिराना, स्त्रियों का उड़ा ले भागना, व्यभिचार उस काल में नहीं थे। होवे भी कहाँ से जब काम वासनाओं का विकाश रति भर भी होने दिया ही नहीं जाता था। हा ! वृद्ध भारतवर्ष ! जहाँ तेरी संतान जन्मते ही सर्व गुण सम्पन्न होती थी, वहाँ आज सर्वदोषविपन्न जन्मती हैं।

पुरुष इतना दान देते थे कि कंकाल, दीन धनी हो जाते थे और उनके शुष्क जीवन हरे-भरे होजाते थे। इन अवसरों पर तीर्थ की छटा अमरावती की शोभा को भी नीचा दिखाने वाली होती थी।

थी देश, जाति, स्वधर्म पर तब मन्त्रणा होती वहाँ;
होते वहाँ प्रस्ताव थे, नियमावली बनती वहाँ।
अपराध थे जिनने किये, वे दण्ड खुद लेते सभी;
उपवास, प्रत्याख्यान, पौषध वे वहाँ करते सभी ॥३२२॥

सभायें होती थीं और उन सभाओं में देश, समाज और धर्म की उन्नतिविषयक चर्चायें होती थीं। प्रस्ताव रखे जाते थे। कार्यक्रम और व्यवस्था संबन्धी नियमावलियें बनायी जाती थीं। अपराधी स्वयं अपने आप दण्ड ग्रहण करते थे। दण्ड रूप में वे कठिन उपवास, व्रत, पौषध आदि तप की क्रियायें करके प्रायश्चित करते थे।

स्थापित सभायें हो गई, जब कार्य निश्चित हो गये;
अध्यक्ष, मंत्री, कार्यकर्ता, सभ्य घोषित हो गये;
जब देश, धर्म, समाज के हल प्रश्न सारे हो गये,
तब संघपति के कथन से प्रस्थान सब के हो गये ॥३२३॥

जब सभाओं की स्थापना, कार्यक्रम का निश्चयीकरण, सभापति, मंत्री, सदस्य और कार्यकर्ताओं का निर्वाचन और देश, समाज और धर्म संबंधी सर्व प्रश्नों का सुलझावन हो चुकता था तब श्री संघ संघपति का आदेश प्राप्त कर तीर्थ से प्रस्थान करता था।

कैसा निकाला संघ था सम्राट संप्रति ने कहो,
शचि, इन्द्र, जिसको देख कर थे रह गये स्तंभित अहो।
गज, अश्व, वाहन, शकट की गिनती वहाँ पर थी नहीं,
नरनारि की गणना भला फिर हो सके संभव कहीं ॥३२४॥

सम्राट संप्रति ने जो संघ निकाला, उसकी महिमा आजतक गाई जाती है। हाँथी, घोड़ों, रथ, वाहनों की उस संघ में गणना ही नहीं थी। स्त्री और पुरुषों की गणना करना किस भी प्रकार संभव नहीं था। उस संघ को अवलोक कर देवलोक के इन्द्र और इन्द्राणी भी आश्चर्यांवित हो गये थे।

श्री चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र ने, भूपेन्द्र कुमारपाल ने—
राजर्षि उदयन, शांतनिक, दधिवाहनाजयपाल ने,
सब ने निकाले संघ थे, उल्लेख मिलते हैं अभी,
सरवर, सुदर्शन निरखलो, है कह रहा वर्णन सभी ॥३२५॥

सम्राट चन्द्रगुप्त ने विमलाचल की संघ-यात्रा की थी। इसी प्रकार महाराजा कुमारपाल ने, उदयन ने, शांतनिक और चंपा-नरेश दधिवाहन ने भी संघ निकाले थे। जूनागढ़ की तलेटी में सरवर सुदर्शन आया हुआ है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्र-गुप्त, संप्रति, कुमारपाल ने करवाया था।

चरम तीर्थंकार भगवान महावीर

प्रभु पार्श्व को इतिहासवेत्ता सब तरह हैं जानते,
पशुयज्ञ का कैसा किया प्रतिवाद, खण्डन जानते।
प्रभु पार्श्वका विभु वीर का यदि जन्म जो होता नहीं,
फिर इस नृसंशाचार का क्या पार कुछ रहता कहीं ॥३२६॥

तीर्थयात्रा—

अब अंत में वर्णन तुम्हें हम तीर्थयात्रा का कहें;
फिर से सभी वातावरण संक्षेप में सारा कहें।
धन, ऐश, वैभव आदि सब का कुछ पता मिल जायगा;
कुछ उक्त में से हो गया विस्मृत, नया हो जायगा ॥२१७॥

पाठको ! अब आपके समक्ष हम अन्तिम वर्णन तीर्थयात्रा का करेंगे। ऊपर वर्णित वातावरण का भी इस प्रसंग में संक्षिप्त परिचय और आपको मिल जायगा और जो विस्मृत हो गया है, वह पुनः ताजा हो जायगा। तीर्थयात्रा के वर्णन से आपको हमारे अतीत धन, ऐश्वर्य्य और वैभव का भी कुछ २ परिचय मिल जायगा।

है तीर्थयात्रा चीज क्या ? श्री संघ फिर क्या है अहो !
जातीय सम्मेलन अहो ! ये घट गये कब से कहो !
क्यों श्रमण, श्रावक उस तरह से आज मिलते हैं नहीं;
क्यों देश, जाति सुधर्म पर सुविचार अब होते नहीं ॥२१८॥

श्री संघ और तीर्थयात्रा किसे कहते हैं, कौन नहीं जानता है ? साधु और श्रावक वर्तमान में उस भाँति मिलकर देश, समाज और धर्म के उत्थान की चर्चा अब क्यों नहीं करते हैं ?

श्री तीर्थयात्रा के लिये हर वर्ष जाते संघ थे;
होते शकट, गज, अश्व के अति भूरि संख्यक संघ थे।
आचार्य होते थे विनायक, संघपति भूपेन्द्र थे;
थे अंग रक्षक क्षत्रपति, जिनके निरीक्षक इन्द्र थे ॥२१९॥

प्रतिवर्ष श्री संघ तीर्थयात्रा करने के लिये निकलते थे।

१२

अगणित वाहन, हाथी, घोड़े उस संघ में होते थे। संघपति राजा आदि महापुण्यवान पुरुष होते थे। संघ के अधिष्ठाता आचार्य महाराज होते थे। सामन्तगण संघ के संरक्षक होते थे और स्वयं इन्द्र अहर्निश संघ का निरीक्षण करते थे।

ये पहुँच कर सब तीर्थ, धर्माराधना करते वहाँ;
सब काटते अघ, कर्मदल, धर्माचरण करते वहाँ
सब से वहाँ पर पहुंच कर नृप क्षेम-शाता पूछते;
आचार्य के थे चरण नृप कौशेय लेकर पूँछते ॥३२०॥

संघ जब निर्दिष्ट तीर्थ पर पहुंच जाता था, संघपति राजा उस संघ में आये हुये सर्व सज्जनों से सुख-शाता पूछकर आचार्य महाराज के चरणों पर मार्ग में पैदल चलने के कारण लगी हुई रज को अपने दुपट्टे से पूँछते थे। तत्पश्चात् सर्व जन पाप-समूह को नष्ट करने वाली धर्म क्रिया के करने में संलग्न हो जाते थे।

पश्चात् इसके दान की गृह त्याग की सु सरी चली;
वह दीन गह्वर, उजड़ जीवन को सरस करती चली।
नित देशना होती वहाँ गुरु राज की अमृत भरी;
यों तीर्थ शोभा देख कर होती नतानन सुरपुरी ॥३२१॥

धर्म क्रिया सामायिक व्रत, उपवास आदि करने के पश्चात् संघ में आये हुए सज्जन अतुल दान देना प्रारंभ करते थे और अनेक सज्जन संसार, घर, परिवार, पुत्र, स्त्री को छोड़कर सन्यास ग्रहण करते थे। सन्यास ग्रहण करने वाले पुरुष और अन्य

मनुष्य आये और उन्होंने भगवान् के कानों में से कीले खींच कर निकाले।

ज्यों वीर अर्कोदय हुआ प्रातः हुआ तम फट गया;
पशु यज्ञ के तिमिरा वरण का जाल कुंठित उड़ गया।
थे दुष्ट, लम्पट छिप गये, गल बंध पशु के कट गये;
आनंद घर घर गया, फिर भाग्य जग के जग गये ॥३२८॥

ज्योंहि भगवान महावीर रूपी सूर्य हुआ, जगती में अज्ञान रूपी छाया हुआ अंधकार विनष्ट हो गया और ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो गया। पशु यज्ञ का वातावरण जो घने अंधकार के समान दृढ़ छाया हुआ था, उन्मूलित हो गया। स्वार्थी, लोभी, कुचर सर्व छिप गये और वध करने के लिये लाये गये मूक पशुओं के बंधन कट गये अर्थात् पशु यज्ञ बंध हो गये। भगवान् के अवतार ग्रहण करने से सर्वत्र आनंद छा गया, संसार का भाग्योदय हो गया।

महावीर का उपदेश—

अपवर्ग की सम्प्राप्ति में यह जाति बाधक है नहीं;
हो शूद्र चाहे राजवंशी, भेद इससे कुछ नहीं।
बाहर भले ही भेद हो, भीतर सभी जन एक हैं;
क्या शूद्र की, क्या विप्र की आत्मा सभी की एक है ॥३२९॥

चाहे भले ही शूद्र हो, सद्भाव का यदि केत है;
बस चक्रपति से भी अधिक हमको वही अभिप्रेत है।
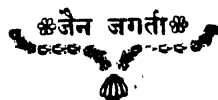
संमोह माया, लोभ जिसने काम को जीता नहीं;
वह उच्च वर्णज हो भले, पर डोम से ऊँचा नहीं ॥३३०॥

है सत्यव्रत जिसका नहीं, घट में नहीं जिसके दया;
शुचि शील व्रत पाला नहीं, नहिं दान जीवन में दिया;
वह भूप हो या विप्र हो हो श्रेष्ठि सुत भी वह भले;
वह मोक्ष पा सकता नहीं, उस ठौर किसका वश चले ॥३३१॥

मोक्ष की प्राप्ति में जाति, वर्ण, पद नहीं तो बाधक है और नहीं साधक। इनका मूल्य संसार में ही है। मोक्ष की प्राप्ति पर इनका कोई अच्छा, बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। मोक्ष की प्राप्ति में भावों का मूल्य है। विप्र की जो आत्मा है, वही आत्मा शूद्र की भी है। फिर भेद कैसा? सत्यहीन, दयाहीन, स्खलित-शील, कठोर हृदय, लोभी, कामी मोह और माया में फँसे हुये राजा, विप्र और शाहूकार से बढ़कर एक सद्भावी शूद्र प्रिय है। पतित विप्र, वैश्य राजादि की सत्ता, पद, वर्ण मोक्ष की प्राप्ति में कुछ भी सहायक नहीं हैं।

महावीर द्वारा जैन धर्म का विस्तार और उसका स्थायी प्रभाव—

सर्वत्र आर्यावर्त्त में यों धर्मध्वज फहरा गई;
तलवार हिंसावाद की यों टूट कर विलमा गई।
सम्राट, राजा, माण्डलिक फिर जैन कहलाने लगे;
विस्तार हिंसावाद के सर्वत्र फिर रुकने लगे ॥३३२॥

अन्त्यज तथा द्विजगण सभी वीरानुयायी हो गये;
गणधर हमारे विप्र थे, वीरावलंबी हो गये।

यह तो प्रायः सभी को विदित है कि भगवान् पार्श्व नाथ के समय में हिंसावृत्ति अधिक बढ़ गई थी और भगवान् महावीर के अवतरण के समय तो यह चरमता को प्राप्त हो गई थी। यहाँ यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि भगवान् पार्श्व-नाथ और महावीर ने इस हिंसा प्रकार को कहाँ तक निःजड़ किया। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि अगर ये विभूतियें नहीं हुई होती तो सम्भव है आज भारतवर्ष समूल हिंसक मिलता।

वे त्याग कर प्रासाद को दुखशैल कंटकयुत चले,
था चण्डकौशिक ने डसा विभुवीर को, क्या मुड़ चले ?
थे तीक्ष्ण कीले कर्ण में विभुवीर के ठोके गये,
इससे हुआ क्या ? कायोत्सर्ग से क्या डिग गये ?॥३२७॥

चण्डकौशिक-यह पूर्व भाव में क्षमक था। यह मर कर फिर कनकखल आश्रम के अधिष्ठाता की स्त्री के गर्भ से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ और इसका नाम कौशिक रक्खा गया। यह अति क्रोधी था अतः इसे तापसगण चण्डकौशिक कह कर पुकारते थे। अपने पिता के मरण के पश्चात् इसने सब तपस्वियों को आश्रम से बाहर निकाल दिया और जोकोई भी नर पशु- जीव उस बनखण्ड में आ जाता यह उसे भारी मार मारे बिना नहीं छोड़ता। इस प्रकार यह अपना जीवन बिताने लगा। एक दिन यह कहीं आश्रम से बाहर गया था कि पीछे से कुछ तापस कुमारों ने इसके उपवन को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। जब यह वापिस आया और अपने उपवन को नष्ट-प्राय देखा

तो हाथ में कुल्हाड़ा लेकर उन तापस कुमारों को मारने दौड़ा। बड़े वेग से दौड़ रहा था कि अचानक ठोकर खाकर गिर पड़ा और कुल्हाड़ा की धार से इसका शिर कट गया। यह तब मर कर सर्पयोनी में उत्पन्न हुआ और इसी बन में रहता था। इसकी भयंकर फुत्कार से वह बन सदा गूंजता रहता था। वृक्ष सब जल गये थे। पशु पक्षी उस बन में पद तक नहीं रखते थे। ऐसे विहड़ बन में जहाँ चण्डकौशिक का एक छत्र साम्राज्य था भगवान् कायोत्सर्ग में रहे। चण्डकौशिक ने भगवान को तीन बार डसा लेकिन फिर भी भगवान को अचल देखकर यह विस्मित हुआ और भगवान से क्षमा-निवेदन करने लगा। निदान भगवान ने इसको ज्ञान दिया और यह फिर मरकर देवलोक में देवता रूप से उत्पन्न हुआ।

एक समय भगवान् महावीर एक बन में कायोत्सर्ग में खड़े थे। वहीं पर एक ग्वाला अपने बैल चरा रहा था। कुछ कार्य वश वह ग्वाला अपने बैलों को वहीं छोड़ कर कहीं चला गया। जब ग्वाला वापिस उस बनतल में आया तो वह वहाँ बैलों को न देख कर भगवान् को अपशब्द कहने लगा, भगवान् अचल रहे। ग्वाला अपने बैलों को ढूंढ़ता हुआ इधर-उधर घूमने लगा थोड़ी देर में बैल पुनः वहीं आगये। ग्वाले ने अपने बैलों को भगवान् के पास जुगाली करते हुये खड़े देखा। ग्वाले ने भगवान् को चोर समझा और उसने भगवान् के दोनों कानों में तीखे-तीखे कील कठोर पत्थर की मार मारते हुए ठोके। परन्तु भगवान् अडिग रहे। थोड़े समय पश्चात् उस स्थान पर दूसरे

अर्थात् आर्यावर्त में, सब थल अनार्यावर्त में—
जिन धर्म प्रसरित हो चुका था कोण आशा,वर्त में ॥२३८॥

प्रायः उक्त सर्व नगर एवं स्थानों का परिचय यथा स्थान पूर्व दिया जा चुका है। तात्पर्य इतना है कि जैन धर्म पंजाब, उड़ीसा, मध्यभारत, संयुक्त प्रदेश, कौशल, आसाम, सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिण भारत, बंगाल अर्थात् भारतवर्ष की चारों दिशाओं में, चारों कोणों में और प्रत्येक जनपद में फैल चुका था। जैन धर्म के इस फैलाव को उक्त नगरों में अपशिष्ट शिलालेख, खण्डहर, स्तूप, मंदिर यह प्रमाणित कर रहे हैं।

आती हमें है कुछ हसी जब देखते इतिहास हैं,
उसमें हमारा क्यों कहीं मिलता न कुछ आभाष है ?
वे आधुनिक इतिहासवेत्ता अज्ञ हो, सो है नहीं,
तब राग, मत्सर द्वेष से हैं कर रहे वे यह सही ॥२३६॥

इतना गौरव पूर्ण हमारा अतीत रहा है, परन्तु फिर भी हमारा भारतवर्ष के इतिहास में कहीं कुछ भी वर्णन क्यों नहीं किया गया है? आधुनिक इतिहासज्ञ मूर्ख हो सो तो बात नहीं है। तब यह सचमुच सही है कि वे हमारा वर्णन राग और द्वेष के कारण नहीं कर रहे हैं।

जिनधर्म क्षत्रीधर्म था, संदेह इसमें है नहीं,
यदि विज्ञ हो तो लेखलो वह भूत भारत की मही।
फिर क्यों नपुन्सक आज के हैं दोष हमको दे रहे,
अपनी नपुंसकता छिपाकर, कोस हमको हैं रहे ॥२४०॥

जैन धर्म क्षत्रियों का प्रमुख धर्म था, यह हमारा अतीत के

दिये गये परिचय से भली भाँति सिद्ध हो गया है। फिर आजके युग के कायर जैनेतर बंधु समस्त भारत वर्ष के संपूर्ण पतन का दोष हमारे मस्तक पर क्यों मढ़ रहे हैं ? अपनी कायरता छिपा कर वे हमको कोस रहे हैं !

जैन धर्म का इतर धर्मों पर प्रभाव—

ऐसा न कोई धर्म है, जिसने न माना है हमें,
वैदिक, सनातन, सांख्य ने जाना कभी से हैं हमें।
तुगलक, मुगलसम्राट पर इसका असर कैसा हुआ?
गौरांगजन के हृदय पर कैसा असर शाश्वत हुआ ! ॥२४१॥

वैदिक धर्म, सनातन और सांख्य धर्मों ने जैन धर्म के महात्म्य को स्वीकृत किया है। ऐसा शायद ही कोई धर्म होगा जो जैन धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता हो। इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी और प्रचारक तुगलकवंश के बादशाह जैनाचार्यों के संयम की बड़ी प्रशंसा करते थे। मुहम्मद तुगलक सोमतिलकसूरिजी का बड़ा सम्मान करता था।

मुगल बादशाहों में से अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने जैनाचार्यों का कितना सम्मान किया है; इतिहास साक्षी है। बादशाह अकबर के ऊपर हीर विजयसूरिजी का गहरा प्रभाव था। खास मुसलमानी-पर्वों में भी बादशाह शाही-फरमान निकाल कर दया-धर्म पलवाता था।

फ्रांसीसी डाक्टर गिरनार, जर्मन डा० जान्सहर्टल, जेकोबी, डा० फ्यूहरर, ब्लोंच, स्मिथ, फरग्यूसन आदि अनेक

सम्प्रति नरप के काल तक जैनी कहो कितने हुये ?
संक्षेप में हम यों कहें चालीस कोटी थे हुये ॥३३३॥

भगवान महावीर ने जैन धर्म का पुनः विस्तार सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैला दिया। हिंसावादियों की तलवारें म्यानों में घुस गईं। राजा, सामंत और सम्राट जैन धर्म का पालन फिर से करने लगे। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सर्व जैन धर्मावलंबी हो गये। भगवान के ११ ग्यारह ही गणधर ब्राह्मण थे। सम्राट सम्प्रति के समय में चालीस करोड़ जैन धर्मानुयायी थे। सर्वत्र हिंसायें बंध हो गई।

परिवार सह चेटक यदि जिनवीर की सेवा करें;
फिर आत्माजाएँ संग उनकी क्यों न जैनी वर वरें ?
उनकी यहाँ पर आत्माजाओं का न वर्णन हो सके;
यदि वर्ण अर्णव भरसके, यह वर्ण्य मुझ से हो सके॥३३४॥

राष्ट्रपति चेटक जैनधर्मी थे। उनके सात कन्यायें थी। सातों, कन्याओं का यह दृढ़ ब्रत था कि वे जैनधर्मी पुरुष के साथ ही विवाह करेंगी। जिनराजाओं के साथ उनका विवाह हुआ, उन राजाओं ने प्रथम जैन धर्म अंगीकृत किया और इस प्रकार जैन धर्म शीघ्र और सहज सर्वत्र उत्तर भारत में विस्तारित हो गया। जैन धर्म में ऐसी दृढ़ भक्ति रखने वाली और जैनधर्म की ऐसी महान सेवा करने वाली इन सातों कन्याओं का यहाँ क्या, कभी वर्णन करेगा असंभव ही रहेगा। अगर क्षत्तरसागर का पानी भर भरकर उलीच सकते हों तो उनको महासागर

के सदृश अतिविस्तार पूर्ण कथानक का वर्णन करना मेरे लिये संभव हो सकता है।

वह चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र जो इतिहास में विख्यात हैं;
यश, कीर्ति जिनकी आज भी संसार में प्रख्यात है।
जिनको अधूरे विज्ञजन थे बौद्धधर्मी कह रहे;
विद्वान सब उस चन्द्र नृप को जैन हैं अब कह रहे ॥२३५॥

मौर्य्यपति सम्राट चन्द्रगुप्त का इतिहास में प्रमुख स्थान है और उसका नाम सर्वत्र संसार में प्रसिद्ध है। अपूर्णज्ञान वाले उस सम्राट चन्द्रगुप्त को बौद्ध बतलाते थे, लेकिन अब अधिक शोध-खोज करके प्रखर पुरातत्त्ववेत्ता उस सम्राट चन्द्रगुप्त को जैनधर्मी सिद्ध कर चुके हैं।

कुछ वीतभय, साकेतपुर के भवन खण्डित शेष हैं;
कुछ राजगृह, चम्पापुरी में खण्ड विगलित शेष हैं।
उज्जैन, मिथिला, पटन के शिललेख तो तुम लेखलो;
वर्णन हमारी दे रही श्रावस्ती है, यह पेख लो ॥२३६॥

गिरनार, शत्रुंजय कहो ये तीर्थ कब से हैं बने;
सम्मेत गिरवर का कहो वर्णन कहीं तुम से बने ?
क्या चीज सरवर सुदर्शन ? नाम हो शायद सुना;
अर्थात यों जिन धर्म भारतवर्ष में व्यापक बना ॥२३७॥

पंजाब, उत्कल, मध्यभारत, मगध, कौशल, अङ्ग में;
सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिणाशा बङ्ग में।

सम्राटहत् भारत हुआ, उद्दाम द्विज कुल हो गये;
सब पुंश्चली स्त्री हो गई, हा, नर नपुंसक हो गये ॥३४६॥

भारतवर्ष की यह वर्तमान दुर्दशा कब प्रारंभ हुई, बहुतों को तो यह भी विदित नहीं हैं। महाभारत के युद्ध के पश्चात् भारत में सार्वभौम सत्ता कोई नहीं रही और फलतः ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य धीरे धीरे स्वच्छंद और निरंकुश होते चले गये स्त्रियें व्यभिचारिणी और पुरुष वीर्यहीन हो गये।

ज्यों कायरों में नर नपुंसक भंग करते शान्ति हैं;
होती तथा निस्तब्ध निशि में उल्लुओं की क्रान्ति है।
पशुयज्ञ के उपदेश त्यों थे द्विज सभी करने लगे;
जहाँ बह रही थी घृतसरि, थे रक्तनद झरने लगे ॥३४७॥

ज्यों कायर पुरुषों में डींग हाँकने वाले वीर्य्यहीन पुरुष अशान्ति उत्पन्न करते हैं, ज्यों निख रात्रि की निस्तब्धता को उल्लुओं की हूँ, हूँ भंग करने में समर्थ होती हैं, त्यों ही पतित हुये पुरुषों में ब्राह्मण पशुयज्ञ का प्रचार करने लगे और जहाँ गौकुलों से घी और दूध की नदियें बहती थीं, वहाँ रक्त की सरितायें प्रवाहित होने लगी।

निर्भर, नदी के कूल पर सर्वत्र होते होम थे;
गौ, अश्व का करते हवन द्विज भ्रष्ट पापी-डोम थे।
यदि उस समय में वीर प्रभु का जन्म जो होता नहीं;
उस आज डोमाचार का कुछ पार भी रहता नहीं ॥३४८॥

पशुयज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को डोम ही कहना उचित है।

ये होम ब्राह्मण नदियों और झरनों के तटों की अभिराम भूमियों में गौमेध और अश्वमेध नामक यज्ञ करने लगे थे। अगर भगवान महावीर का जन्म नहीं हुआ होता हो उनके पशुयज्ञ का खण्डन कौन करता ? और आज उन ब्राह्मणों के उस होमाचार का पार भी नहीं रहता।

विभुवीर ने सबके हृदय में फिर दया स्थापित करी;
उपसर्ग लाखों झेलकर पशु मूक की रत्ता करी।
पर शान्तिमय सुख राज्य कहिये छद्म कैसे सह सकें ?
वे विप्र वंचित हाय! बोलो किस तरह चुप रह सकें?॥३४६॥

भगवान् महावीर ने पुनः अहिंसा और दयाधर्म का प्रचार किया, यद्यपि दयाधर्म का प्रचार करने में उनको अगणित कष्टों से सामना करना पड़ा था। परन्तु दुष्टों को सुख और शान्ति खलती है। जिनके स्वार्थों को दयाधर्म के प्रचार से आघात पहुँचा, वे भला किस प्रकार लंबे समय तक शान्त रह सकते थे।

तात्पर्य आखिर यह हुआ की धर्मरण होने लगे;
लड़कर परस्पर जैन, वैदिक, बौद्ध हा ! मरने लगे।
जब हो हताहत गिर पड़े, ये यवन पत्थर से पड़े;
क्या प्राण उसके बच सकें, गिरते हुये पर गिरि गिरे?॥३५०।

फलतः परस्पर एक धर्म के अनुयायी अन्य धर्म के अनुयायियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने लगे। जैन धर्म, वैदिकधर्म और बौद्धधर्म ऐसे युद्ध करने वालों में प्रमुख एवं अग्रणी थे। इन

यूरोपीय महान विद्वानों की जैन-धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा रही है। और इन सब ने जैन-धर्म और इसके साहित्य-कला पर गहरा लिखा है।

पतन का इतिहास

सम्राट थे, हम भूप थे, सम्पन्न थे अलेकश थे;
विद्या, कला, विज्ञान में हम पूर्ण थे, निःशेष थे।
नित पुष्पयानों पर चढ़े सर्वत्र हम थे घूमते;
सब राज लोकों के हमारे यान नभ थे चूमते ॥३४२॥

एक समय था जब कि हम राजा, महाराज, सम्राट, वैभवपति धनकुबेर थे। और विज्ञान, विद्या, और कला में अतिशय निष्णात थे। चौदह राजलोकों में स्वतंत्रतापूर्वक हमारे वायु-विमान भ्रमण करते थे।

पर कालचक्र कुचक्र के सब वक्र होते काम हैं;
थे सभ्य हम सब भाँति, पर हा! आज हम बदनाम हैं।
किसको भला हम दोष दें, अब आप हैं हम गिरगये,
बस नाश के कुरुक्षेत्र में डंके हमारे बज गये ॥३४३॥

इस समयरूपी चक्र के भयंकर चक्कर बड़े घातक होते हैं। किसी समय हम सर्व प्रकार समुन्नत और सभ्य थे, परन्तु हाय आज हम सर्व भाँति अपयश के भागी हैं। हमने अपने हाथों ही अपना पतन किया है, फिर किस अन्य को दोष दिया जाय। कौरवों और पाण्डवों के मध्य कुरुक्षेत्र में हुये महाभारत नामक युद्ध के समय से ही हमारा पतन प्रारंभ हुआ है।

जब के गिरे ऐसे गिरे, संज्ञा न आई आज भी;
है कौन भाई, कौन रिपु, नहिं दीखता है हा! अभी।
स्वाधीन से आधीन हों,सब भाँति विषयालीन हैं;
बलहीन हैं, मतिहीन हैं, सब भाँति अब तो दीन हैं।।३४४।।

कुरुक्षेत्र में हुये महाभारत युद्ध से ही हम अब तक गिरते आ रहे हैं और अभी तक सावधान नहीं हो पाये हैं। भाई को भाई और दुश्मन को दुश्मन नहीं पहचान रहे हैं। एक युग में हाय! हम पूर्ण स्वतंत्र थे, आज पूर्ण परतंत्र है। सर्व प्रकार बिषयासक्त हैं, बल और बुद्धिहीन हैं। हे ईश्वर! अब तो हम सर्व भाँति दीन और असहाय हैं।

पयपूर्ण था, मयपद्म था, था भृङ्ग मधुकर देश जो;
अब देख लो सूखा पड़ा है, पङ्क भी हो शेष जो।
चीरें करारी पड़ गईं, हर ठौर गह्वर हो गये;
क्या वेदना के प्राण इसमें हाय! स्तर-स्तर सो गये।।३४५।।

भारतवर्ष उस सरोवर के सदृश हैं जो कभी निर्मलजल से परिपूर्ण था, कमलसमूह से सुशोभित था और भ्रमरों की प्रियतम भूमि था; परन्तु आज जो जलहीन हैं, जिसका दलदल भी शुष्क होकर गड्ढों और दरारों से सर्वत्र भरा हुआ हैं। हे ईश्वर! क्या इस भारतवर्ष के शरीर के प्रत्येक प्रदेश में वेदना समा गई है।

यह हो गई कब से दशा, बहु जानते भी हैं नहीं;
जो आ रहा मुँह में विचारे बक रहे वे हैं वही।

तीनों धर्मों के अनुयायी जब परस्पर लड़ कर निर्बल हो गये, तब इन पर यवनों के आक्रमण हुये। गिरते हुये पर अगर पर्वत गिरे तो वह मरेगा ही।

उस दुष्ट, पापी भूप का जयचन्द्र कहते नाम है,
जिसके बुलाये यवन आये, घोर काला काम है।
जितने मनुज आये यहाँ थे, सब हमी में मिल गये,
इस्लाम झंडे पर हमारे से अलग ही लग गये !! ॥३५१॥

वह दुष्ट और पापात्मा राजा जिसने यवनों को पृथ्वीराज के विरुद्ध लड़ने के लिये आमंत्रण देने का घोर कुकर्म किया था जयचन्द्र था। आज तक भारतवर्ष में जितनी जातियाँ बाहर से आकर बसी वे सब हिन्दूसमाज में सम्मिलित होती रहीं, परन्तु मुसलमानों के झंडे अलग ही लहराये।

इनकी हमारी फूट का हा ! यह कुफल परिणाम है;
जो स्वर्गसा यह सौम्य भारत मिट रहा अविराम है।
जैसे परस्पर मेल हो करना हमें वह चाहिए,
सब भेद भावों को भुलाकर रस बढ़ाना चाहिए ॥३५२॥

हिन्दू और मुसलमानों के बीच पड़ी हुई गहरी फूट ही एक मात्र कारण है ऐसा स्वर्ग सुन्दर भारत वर्ष निरंतर पतित होता जा रहा है। जैसे भी बने कल्याण की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमानों में प्रेम की प्रतिष्ठा करनी चाहिए, परस्पर पड़े राग-द्वेषों को उन्मूलित कर मेल बढ़ाना चाहिए।

हा ! हाय ! भारत। आज तेरे खण्ड कितने हो गये,
ये धर्म जितने दीखते हा ! अंग उतने हो गये।

१३

प्रति धर्म के अंदर अहो ! फिर सैकड़ों फिरके बने;
फिर गोत्र, जाति, सुवर्ण के हा ! चल पड़े विग्रह घने॥३५३॥

हे भारतवर्ष ! यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि धर्मों के कारण तेरे शरीर के अनेक खंड हो गये। इतना ही नहीं प्रत्येक धर्म के अन्दर फिर अनेक मत और सम्प्रदाय बन गये। इस प्रकार धर्म, मत और सम्प्रदाय को लेकर वर्ण, जाति और गोत्रों के झगड़े प्रभूत हो गये।

ये श्वानविग्रह नष्ट कर मतभेद को हम हर सकें;
त्रयंकाल में संभव नहीं, यह काल शायद कर सके।
फिर आज की सरकार से मत भेद पोषित हो रहे;
ये धर्मरण हा ! बदल कर सब राजरण हैं हो रहे॥३५४॥

धर्म, मत, मतान्तर, जाति और गोत्रों के झगड़े जिन्हें हम कुत्ताराड़ कह सकते हैं इतने बढ़ गये हैं कि इनका शान्त करना हमारे सामर्थ्य के बाहर हो गया है। कोई अवसर ही ऐसा उत्पन्न होगा कि ये स्वतः शान्त हो जायँगे, हमारे किये शान्त नहीं हो सकते। शान्त भी होवे तो कैसे ? स्वयं सरकार ऐसे झगड़ों को बनाये रखना चाहती है और परस्पर पड़े हुये वैमनस्य और मत-मतान्तरों का पोषण करती है। फलतः अब ये धर्म के पीछे बढ़े हुये और पड़े हुये झगड़े राजनैतिक झगड़ों का रूप धारण कर रहे हैं।

अन्तर भेद व पतन—

मत भेद तो है आदि से हर ठौर होता आ रहा;
चढ़ने, उतरने की कला सब है यही सिखला रहा।

इससे उतरने की कला हम जैनियों ने सीख ली;
पर हाय ! चढ़ने की कला नहिं दृष्टि भर भी लेख ली ॥२५५॥

मतभेद की क्रिया आज उत्पन्न नहीं हुई है। यह क्रिया तो अनंत काल से चली आ रही है। मतभेद ही किसी देश और जाति की उन्नति और अवनति का कारण है। हमने मतभेद के अवनत करने वाले अङ्ग को अपनाया है और उन्नत करने वाले अङ्ग की ओर देखा तक नहीं है।

जिन धर्म पहिले एक था, फिर खण्ड इसके दो हुये;
फिर वे दिगम्बर, श्वेत अम्बर नाम से पण्डित हुये।
चत्वारदल में फिर दिगंबर मत विभाजित हो गया,
यह श्वेतअम्बर भी अहो ! दो खण्ड हो कर गिर गया॥२५६॥

संतोष पर इतनी दशा से काल क्यों करने लगा !
जो था क्षुधित चिर काल से, अब क्यों क्षुधित रहने लगा;
बावीस, चौरासी दलों में श्वेत अम्बर छट गया;
बावीस पंथी पंथ में फिर पंथ तेरह घट गया ॥२५७॥

दिगम्बर—दिक + अम्बर, दिशा ही जिनका वस्त्र है उन्हें दिगम्बर कहते हैं।

श्वेताम्बर—श्वेतवस्त्र पहिनने वालों को श्वेताम्बर कहते हैं।

किसी समय जैनधर्म अखण्ड था। दुर्भाग्य से इसके ये उक्त दो खण्ड हो गये। कब हुए ? यह प्रश्न विवादास्पद है। इस प्रश्न को छूने का यहाँ मेरा न विचार है और न इसको मैं यहाँ हल करना उचित समझता हूँ।

समय पाकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के भी फिर दो दल हो गये। स्थानकवासी जो मूर्ति को नहीं मानते हैं और दूसरे मूर्ति पूजक जो मूर्ति की पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय को बावीसपंथी एवं ढूँढ़क भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय की आदि करने वाले श्रीमान लोकाशाह कहे जाते हैं। आगे जाकर शनैः शनैः मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी आचार्यों के नाम के पीछे अलग अलग दल स्थापित होते गये और ये दल आज ८४ की संख्या तक पहुँच गये, जो गच्छ कहलाते हैं। लोकाशाह के कितने ही जीवन-चरित्र छप चुके हैं। विशेष के लिये उनमें से कोई देखें।

तेरहपंथी—यह स्थानकवासी सम्प्रदाय में से निकला हुआ एक और पंथ है। इसकी आदि करने वाले भिखमजी कहे जाते हैं। भिखमजी स्थानकवासी साधु रघुनाथमलजी के शिष्य थे। देखो भिखम-चरित्र।

तब विप्र, क्षत्री, शूद्र इसको छोड़कर जाने लगे;
वे विप्र इस पर उलट कर तब वार फिर करने लगे।
जब है कलह निज देह में, अवयव भला क्या खिल सकें ?
निर्जल हुये अघपंक में शुचि पद्म कैसे खिल सकें?॥२५८॥

जब जैन धर्म की ऐसी दशा हो गई तब ब्राह्मण, क्षत्री और शूद्र जैनधर्म को त्याग कर अन्य धर्म ग्रहण करने लगे और इतरधर्मी ब्राह्मण फिर से जैन धर्म का खंडन करने लगे। एक शरीर के अवयव जब उनमें परस्पर मेल नहीं हो तो कैसे बढ़

सकते हैं और पुष्ट बन सकते हैं? जल रहित दलदल में कैसे सुन्दर कमल विकशित हो सकते हैं? अर्थात् जैन धर्म का शनैः शनैः ह्रास और पतन होने लगा।

लडडू कलह में तुम बताओ आज तक किसको मिले;
पदत्राण के अतिरिक्त भाई! इतर बोलो, क्या मिले?
अपशब्द, निंदावाद तो हा! हंत मण्डनवाद है;
जब तक न मूलोच्छेद हो, फिर क्या जिनेश्वरवाद है!॥३५६॥

परस्पर के झगड़ों में लडडू नहीं मिलते, वरन् जूतामार ही होती देखी जाती है। एक दूसरे की निंदा और एक दूसरे को गालीगलोच करके वे अपना अपना मंडन करने का निंदनीय ढंग अपनाते हैं। उनका जिनेश्वरवाद असफल ही है, अगर वे एक दूसरे का उन्मूलन करने में असफल रहते हैं।

हा! ये दिगंबर, श्वेत अंबर श्वानवत हैं लड़ रहे;
पदत्राण पावन स्थान में इनमें परस्पर चल रहे।
हा! नाथ! यह क्या हो गया! तमकर प्रभाकर हो गया
वृद्धत्व में अनुभव हमारा भार हमको हो गया!॥३६०॥

दिगंबर और श्वेतांबर दोनों तीर्थ और मंदिरों में परस्पर कुत्तों की तरह लड़ रहे हैं, जूतामार कर रहे हैं। हे परमात्मन्! ज्ञान का प्रकास करने वाला जैन धर्म अपने अनुयायी में अज्ञानरूपी अंधकार उत्पन्न कर रहा है। देव! यह क्या हो गया! आयु भर संपादित किया हुआ अनुभव वृद्धायु प्राप्त होने पर सुखदायक होने के स्थान पर कष्टदायी हो गया।

बिगड़ा न कुछ भी है अभी, बिगड़ा यदि हम सोचलें;
ऐसे न निःसृत प्राण हैं, जो एक पद दुर्भर चलें!
ऐसी दशा ही यदि रही, तब तो हमारा अंत है;
हा! अंत! हा! हा! हंत! हा! हा! अंत! हा! हा! हंत है!! ॥३६१॥

बिगड़े हुये को अभी भी हम यदि प्रयत्न करें तो सुधार सकते हैं, अभी तो अधिक कुछ नहीं बिगड़ा है। ऐसे अशक्त भी अभी नहीं हैं कि एक चरण पर भी चलना भार मालूम हो। परन्तु अगर सचेष्ट और सचेत नहीं हुये तो अंत निश्चित रूप से संनिकट है और वह अंत महा शोककारी और भयंकर होगा।

नृप कल्कि के दुष्कृत्य हम हैं चाहते कहना नहीं;
औ पुष्य मित्र महीप का व्यवहार है कहना नहीं!
दुष्कृत्य इनके आज पर मुद्रित हृदय पर पायेंगे;
जिनको श्रवण करते हुये श्रुत आपके खुल जायेंगे ॥३६२॥

अवंती नरेश कल्कि ने जैन और बौद्धों पर हृदय को विदीर्ण करने वाले महाभयंकर अत्याचार किये और शुङ्ग-वंश के प्रथम राजा पुष्यमित्र ने क्रुद्ध होकर जैनियों के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया, अपने साम्राज्य में जैन साधुओं का प्रवेश करने का निषेध कर दिया। आज भी जैन समाज के हृदय पटल पर वे रोमांचकारी अत्याचार ज्यों के त्यों अंकित हैं जिनका वर्णन किया जाय तो श्रोतागणों के कर्णपट खुल जायँगे।

पहिने हुये पद त्राण तक ये शीष पर थे जा चढ़े;
करने हमें ये देश बाहर के लिये आगे बढ़े।
हमको गिराया अग्नि में, हमको डुबाया धार में,
न विचार था उस काल में, इस काल भी न विचार में ॥२६३॥

जितराग थे, जितद्वेष थे, क्यों क्रोध हमको हो भला;
कोई न हममें से प्रथम था रण कभी करने चला;
अब खैर! सब कुछ हो गया, अब ध्यान आगे का करो;
जैसे बने फिर देश का उत्थान सब मिलकर करो ॥२६४॥

इन राजाओं ने हमारी देव मूर्तियों को पद्दलित किया, हमको देश से बाहिर किया, जीवित जलाया, जल की धारा में बहाया; परन्तु हमने तनिक भी प्रतिकार का विचार नहीं किया और न आज हमारे ऐसे विचार हैं। हम तो राग और द्वेष को जीतने वाले थे; हममें क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता था। हम प्रथम, किसी से भी रण करने का प्रस्ताव नहीं करते थे। यह सब अब जाने दीजिये। भविष्य का विचार करिये; जैसे भी बने सर्व भारतवासी मिलकर भारतवर्ष का समुत्थान और पुनरुद्धार करिये।

वेद और बौद्धमत—

श्रुतिवेद को जिन धर्म का ही बन्धु हम हैं मानते,
इच्छा तुम्हारी आपकी यदि भिन्न तुम हो जानते।
साहित्य के ये द्वीप हैं, शुचि प्रखरतर मार्तण्ड हैं,
आलोक इनका प्राप्त कर यह जग रहा ब्रह्माण्ड है ॥२६५॥

वेदमत को हम जैन धर्म का सहोदर समझते हैं। अगर आप नहीं समझते हैं तो यह आपकी इच्छा। वेदमत साहित्य का वह द्वीप है; जो अनेक साहित्यग्रंथों के एकत्र होने से बना है। वेदमत ज्ञान रूपी निर्मल और तीव्र प्रकाश का करने वाला सूर्य है। इस वेदमत रूपी सूर्य के प्रकाश से सर्व संसार जाज्वल्यमान हो रहा है।

होता नहीं अवतार यदि उस बुद्ध से भगवान का;
क्या हाल होता आज फिर इस चीन का, जापान का।
ये हो गये अब मांसहारी, दोष पर इनका नहीं,
कैसे चलें वे शास्त्र पर सिद्धान्त जब समझा नहीं ॥३६६॥

भगवान गौतमबुद्ध का अगर भारतवर्ष में जन्म नहीं हुआ होता तो चीन और जापान का स्वरूप कुछ इतर ही होता। चीनी और जापानी दोनों अहिंसा के एकनिष्ठ प्रचारक भगवान गौतमबुद्ध के अनुयायी होकर भी मांसाहारी हैं तो इसमें उनका दोष इसलिये नहीं कि गौतमबुद्ध के सिद्धान्तों का अर्थ इनको सही सही नहीं समझाया गया है।

ये जैन, वैदिक, बौद्धमत मिलते परस्पर आप हैं;
मत एक की मत दूसरे पर अमिट गहरी छाप है।
हे बंधुओ! ये मत सभी मत एक की संतान हैं;
ये युगजनित पाखण्ड हित को-दण्ड-सर-संधान हैं ॥३६७॥

जैनमत, बौद्धधर्म और वैदिकमत परस्पर अत्यधिक मिलते हैं। प्रत्येक का अन्य पर गहरा प्रभाव है। हे बंधुओ! ये सर्व

मत विशेष युग में उत्पन्न हुये पाखण्ड को नष्ट करने के लिये चढ़े हुये बाण सहित धनुष है और कुछ नहीं। दृष्टि एक ही है उस युग के प्राणियों की बढ़ते हुये पाखण्ड और अनाचार से रक्षा करना।

हमारे पर दोषारोपण—

"जिन धर्म के कारण हुआ हतभाग्य भारतवर्ष है;
इसका अहिंसावाद से भारी हुआ अपकर्ष है।
ये कीट तक को मारने में हिचकचाते हाय! है;"
क्या बंधुओ! उत्थान साधन मात्र खंगोपाय हैं?॥३६८॥

अनेक बन्धु कहते हैं कि भारतवर्ष का पतन एक मात्र जैन धर्म के अहिंसावाद के प्रसार के कारण हुआ है, क्योंकि जैन बंधु एक कीट और क्रिमि तक के मारने में भारी पाप मानते हैं तो भला भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाली विदेशी सैनाओं पर उनकी तलवारें कैसे उठ सकती थीं?

मैं पूर्व हूँ बतला चुका, सब शौर्य-परिचय दे चुका;
था आत्मबल कैसा हमारा, वह तुम्हें बतला चुका।
जब आत्मबल से शत्रु को हम कर विजय पाते नहीं;
तब खड्ग के अतिरिक्त साधन दूसरे रचते नहीं॥३६९॥

जैन महावीरों के शौर्य्य और आत्मबल पर मैं पूर्व प्रकाश डाल चुका हूँ। जब आत्मबल से शत्रु परास्त नहीं किया जा सकता था, उस स्थिति में शत्रु को परास्त करने के लिये तलवार का उपाय एक माना हुआ अंतिम साधन था।

जैसा हमारा धर्म था, वैसा हमारा आज है,
यह मानते लज्जित नहीं वैसे नहीं हम आज हैं।
हम पूछते हैं आप से, क्या आप वैसे हैं अभी,
फिर दोष सब हम पर धरो, आती तुम्हें नहिं शर्म भी॥३७०॥

जैन धर्म तो जैसा पहिले था, वैसा ही आज है। यह सचमुच सही है। कि आज हम वैसे जैनवीर नहीं हैं, परन्तु क्या आप तो पूर्वजों जैसे वीर हैं? फिर हमको ही दोष देते हो, आप को क्या कुछ भी लज्जा नहीं आती?

इस बात को आगे बढ़ा झगड़ा न करना है हमें,
विषकुम्भ घातक फूट का जड़मूल खोना है हमें।
अब क्या? किसीका दोष हो, यह भ्रष्ट भारत हो चुका,
हम आपका यदि नाश हो तो स्वर्ग फिर भी चुका॥३७१॥

परस्पर दोषारोपण करके पारस्परिक कलह और फूट की वृद्धि करना नहीं चाहते हैं। घातक फूट को उन्मूलित करना है। किसी का भी दोष हो, अब इससे प्रयोजन ही क्या है? भारतवर्ष तो सर्व भाँति पतित हो चुका है। अब तो भारत वर्ष का उत्थान तब संभव है, जब कि हमारे तुम्हारे के पीछे होने वाली सर्व दुष्चेष्टायें बंद हो जाय।

वर्णाश्रम और वैश्यवर्ण—

हैं वर्ण चारों आजभी, निर्जीव चाहे हैं सभी;
हा! वर्ण विकृत हो गये, सब वर्णशंकर हैं अभी।
उन पूर्वजों ने वर्णरचना क्या मनोहर थी करी?
द्विज डोमियों ने आज उसको गरल से कटुतर करी॥३७२॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण आज भी विद्यमान हैं चाहे मृतावस्था में भले ही क्यों न हों। पूर्वजों ने वर्णव्यवस्था किन सुन्दर उद्देश्यों को लेकर रची थी? आज इन पतित और गौलकवर्णों को देखकर बड़ा दुःख होता है। सवर्णों ने समूची वर्ण व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

हतवीर्य क्षत्री हो भले, पर छत्रपति कहलायगा;
चाहे निरक्षर विप्र हो, पर पूज्य माना जायगा।
तस्कर भले हो प्रथम हम, पर शाह हम कहलायेंगे;
दुष्कर्म कितने भी करो, नहिं शूद्र द्विज कहलायेंगे॥३७३॥

क्षत्री कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष भले ही वीर्यहीन क्यों नहीं होवे, कहलावेगा तो क्षत्री ही। इसी प्रकार मूर्ख ब्राह्मण भी अपने को पूज्य बनाये रक्खेगा और चोर वैश्य भी अपने को शाहूकार समझेगा। सवर्ण भले ही घृणित कर्म क्यों नहीं करें, परन्तु वे शूद्र नहीं समझे जायेंगे।

थे वर्ण सब कर्मानुसार, वंशानुगत अब हो गये;
उत्थान के यों द्वार सब हा! बंद सबके हो गये।
उन्मार्गगामी हो भले द्विज तो पतित होता नहीं;
हो उर्ध्वरेता, धर्मचेता शूद्र द्विज होता नहीं॥३७४॥

कर्म के अनुसार वर्ण दिया जाता था। आज वर्ण वंशपरंपरित हो गये। ऐसा होने से उच्चवर्ण प्राप्त करने के लिये जो प्रयास करने पड़ते थे और इस प्रकार जो उन्नति होती थी, वह सदा के लिये सर्व की बंद हो गई।

हे वैश्यवर्णज बंधुओ! निज वर्ण पहिले देख ले;
ये गोत्र इतने वर्ण में आये कहाँ से पेख ले।
जब वैश्यकुल में गोत्र को हम सोचने लगते कभी;
मिलते वहाँ पर गोत्र सब द्विज, शूद्र क्षत्री के सभी॥२७५॥

प्रथम वैश्यवर्ण की रचना पर ही विचार करो कि वैश्य-वर्ण में इतने गौत्र, उपगोत्र कैसे उत्पन्न हो गये। हम जब कभी भी वैश्यवर्ण की रचना पर सोचने लगते हैं तो वैश्यवर्ण में ब्राह्मण, क्षत्री और शूद्र सभी के गोत्र मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस वंश का जैसा कर्म होता था, वह वंश उस वर्ण में रख दिया जाता था जिस का वह कर्म होता था।

थीं कर्म से सब जातियें, ये गोत्र हैं बतला रहे;
इतिहास, धार्मिक ग्रन्थ सब भी हैं यही बतला रहे।
कारण कहो फिर कौन-सा जो ये पदावृत हो गये;
ताला लगाकर द्वार पर द्विज चोर भीतर सो गये!॥२७६॥

इतिहास और धार्मिक ग्रन्थ भी यही सिद्ध कर रहे कि जातियों की रचना कर्मों के पीछे हुई हैं और गोत्रों की संज्ञाओं के शब्दार्थ से तो यह स्पष्ट लखित होता ही है। फिर किस कारण कर्मों की प्रमुखता बध हो गई और जातियों के द्वार बंध करके ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य इस प्रकार निश्चित बैठ गये; जिस प्रकार चोर द्वार पर ताला लगाकर कक्ष में सो जाता है।

सब दृष्टि से द्विज भ्रष्ट हैं, पर उच्च थल नहीं छोड़ते;
जो दीखता चढ़ता नया, पत्थर उसी पर मोचते।

द्विज सभ्यता, आदर्शता के शृंग पर हैं चढ़ चुके;
ये पहुँच कर इस शृंग पर अधिकार पूरा कर चुके ॥३७७॥

वर्तमान में ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य आचार-विचार और कर्मों की दृष्टि से पतित ही हैं, परन्तु वे अपने परंपरित उच्च स्थान को नहीं छोड़ते, वरन कोई सदाचारी एवं सत्कर्मी ऊपर चढ़ता हुआ दिखाई देता है तो ये उसको भी पतित करने का ही भरसक प्रयत्न करते हैं। सवर्ण आदर्शता एवं सभ्यता के शिखर पर पहुँच चुके हैं और अब उस शिखर पर यद्यपि ठहरने योग्य नहीं है फिर भी इन्होंने उस सभ्यता के शिखर का एकनिष्ठ समूचा अधिकार कर रक्खा है।

उन पूर्वजों के सदय उर का किस तरह वर्णन करें;
जो शूद्र का भी कर पकड़ अविलम्ब द्विज सदृश करें।
पथ में गिरे को वे उठाते गोद में थे दौड़ कर;
टूटे हुये को एक करते थे सदा वे जोड़ कर ॥३७८॥

उन दयालु हृदय पूर्वजों का कीर्तन कहाँ तक करें। वे शूद्र को अपने में मिलाते थे, पापी को तुरंत अपनाते थे और परस्पर पड़े हुये भेदों को, मनमुटाव को और वैमनस्य को मिटाते थे।

किस भाँति छूताछूत को इस भाँति से वे मानते,
नरजाति के प्रति मनुज को जब थे सहोदर जानते।
परमात्म-सरवर की अहो! सब थे मनोहर मीन थे,
उनमें परस्पर प्रेम था, आध्यात्मा शिखरासीन थे ॥३७९॥

वे पूर्वज ऊँच नीच के भेद को नहीं समझते थे वे तो

प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई समझते थे। परमात्मा रूपी सरोवर की वे सब मछलियाँ थे। उनमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। वे आध्यात्म रूपी शिखर पर पहुँच चुके थे।

इन वर्ण,आश्रम, वेद की किसने कहो, रचना करी ?
कितनी मनोहर भाँति में लेखो समस्या हल करी।
इस कार्य को श्री नाभिसुत ने था प्रथम जग में किया,
वह आदि था, अब अंत है, वे ऋषभथे, हम वेहया ॥३८०॥

सभ्यता के आदि काल में भगवान ऋषभदेव ने वर्णों का आश्रमों की और वेदों की सुन्दर रचना की थी। वह सभ्यता का आदि काल था और अब उस सभ्यता का अंतकाल है। वे, भगवान ऋषभदेव थे और अब हम निर्लज्ज पुरुष हैं। हम वर्ण आश्रम और वेदों के महात्म्य की रक्षा नहीं कर सकते और उस सभ्यता के होते हुये अंत को नहीं रोकते हैं तो इसमें अब क्या आश्चर्य है।

यवनकाल-

राजत्व यवनों का कहें कैसा रहा इस देश में;
ऐसा कि जैसा पोप का यूरोप के था देश में।
था दोष किसका, था अशुभ फल वह हमारे कर्म का
क्या भोगना पड़ता नहीं दुष्फल किये दुष्कर्म का॥३८१॥

भारत वर्ष में मुसलमानों का शासन काल यूरोप में पोपों के रहे आतंक और सार्वभौम सत्ता की स्मृति कराता है।

परन्तु यह सब हमारी परस्पर की फूट का ही परिणाम था। क्या कुकर्मों का कुफल नहीं भोगना पड़ता है?

राजत्व भर ये यवनपति हा! प्राण के ग्राहक रहे;
ये गौ, सुता, वधु, नारियों के थे सदा हारक रहे।
तलवार के बल हिन्दू थे इस्लाम में लाये गये;
आये न जो इस्लाम में, दुर्मृत्यु वे मारे गये ॥३८२॥

ये मुसलमान शासक अपने समूचे शासनकाल भर हमारे शत्रु बने रहे। इन्होंने गौ, हमारी स्त्रियों, वधु, बेटियों का अपहरण किया। तलवार का भय दिखा कर अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और अनेकों को जिन्होंने मुसलमान बनना अस्वीकृत किया, मृत्यु के घाट उतारा।

धन, द्रव्य पर उनके लगे रहते सदा ही दांत थे;
बिछुड़े हुओं के रात के मिलते न शव हा! प्रात थे!
हा! दूधपीते शिशु गणों का वह रुदन देखा न था;
नरभूप था, यमभूप था, हमने उसे लेखा न था ॥३८३॥

ये यवन शासकगण सदा हमारे धन और सामग्री की अपने शासन में लूट करते रहे। रात्रि के बिछुड़े हुये बन्धु अपने परिजनों से पुनः प्रातः नहीं मिल सकते थे अर्थात् वे या तो मुसलमान बना दिये जाते या मार दिये जाते। माता पिता से अलग हुये छोटे-छोटे बच्चों का वह करुण क्रंदन और हृदय विदारक दृश्य आज तक शायद ही किसी ने देखा होगा।

यवन शासक वस्तुतः नरेश था या कृतांत था, सचमुच हमने तो उसको नहीं देखा।

पर्दाप्रथा उस काल की हमको दिलाती याद है;
वे मस्तकों में घूम जाते कौंधकर अवसाद हैं।
राजत्व उनका अब नहीं है, याद उनकी रह गई;
यह यदि मुस्लिम हिन्दुओं में प्राणग्राहक बन गई ॥३८४॥

वर्तमान में यह पर्दाप्रथा उनके हमारे पर हुये अत्याचारों का स्मरण कराती रहती है और वे अत्याचारों की स्मृति मस्तिष्कों में बिजली-सी कौंधती रहती है। अब उनका शासन नहीं है, परन्तु वह स्मृति हिन्दू और मुसलमान दोनों का सर्वनाश कर रही है।

ये मूर्तियें खण्डित यवन-व्यवहार हैं बतला रहीं;
भूगर्भ में सोई हुई कितनी उन्हें हैं जप रही!
मंदिर हमारे अश्वथल, मस्जिद मकबरे बन गये;
हैं चिह्न जिनके आज भी, बहु मन्दिरों में रह गये ॥३८५॥

हमारे मंदिरों में जो खण्डित मूर्तियाँ हैं, भूगर्भ में पड़ी हुई विकलाङ्ग मूर्तियाँ, हमारे मंदिर जो आज अश्वशाला, मस्जिद और मकबरे के रूप में विद्यमान हैं, अनेक पुनः मंदिरों में परिवर्तित कर दिये गये हैं, परन्तु फिर भी जिनमें अश्वशाला, मस्जिदादि के रूप के चिह्न अवशिष्ट रह गये हैं—ये सब यवनों के अत्याचारों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

अनगण्य अत्याचार हैं, जिनका न कुछ भी पार है;
सब को यहाँ उद्धृत करें ऐसा न मुख्य विचार है।

सम्राट अकबर को हमें सम्राट गिनना चाहिए;
उसके सदय व्यवहार का गुणगान करना चाहिए ॥३८६॥

हमारे पर हुये यवनों के अत्याचार अनंत हैं और उन सब का वर्णन यहाँ करने का प्रमुख उद्देश्य भी नहीं है। सम्राट अकबर अवश्य सचमुच सम्राट था। उसने दया पूर्ण व्यवहार की आज भी हमको प्रशंसा करनी चाहिए।

सम्राट बस औरंग के ओ! रंग भी नव रंग थे;
उस्ताद, काजी, मौलवी, उसके सदा ही संग थे।
लाचार हो कर फिर हमें जजिया उसे देना पड़ा;
जब आ बनी थी धर्म पर उससे हमें लड़ना पड़ा ॥३८७॥

बादशाह औरङ्गजेब के ढंग विचित्र ही थे। कट्टर मुसलमान उस्ताद, काजी और मौलवी के परामर्ष बिना कोई कार्य भी नहीं करता था। उसने हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर लगाया और विपन्न हो कर हिन्दुओं को वह अपमान सूचक कर देना भी पड़ा। जब औरङ्गजेब आक्रमण सीधा हमारे धर्म और कार्य पर ही करने लगा तो उससे युद्ध भी करने पड़े।

बृटिश-शासन—

अब है बृटिश साम्राज्य, पर वैसे न इनके दाव हैं;
बहु बेटियों पर यवन से करते नहीं ये घाव हैं।
ये बोलते मीठे भले, देते हमें मिष्टान्न हैं;
अब लूट वैसी है नहीं, मेरा यही अनुमान है ॥३८८॥

१३

भारतवर्ष में अब अंग्रेजों का राज्य है। इन अंग्रेज शासकों की चालें मुसलमान शासकों से सर्वथा भिन्न हैं। ये अंग्रेज शासक हमारी बहू-बेटियों पर भी दाँत नहीं रखते हैं। ये मधुर और हितकर शब्दों में बोलते हैं और मधुर अन्न खाने को देते हैं। मेरे विचार से हमारा शोषण करने का अंग्रेजों का ढंग मुसलमानों के उस ढंग से सर्वथा भिन्न है।

हैं कोर्ट मुनसिफ खुल रहे, होता जहाँ पर न्याय है;
हम लार्ड परिषद तक बढ़ें, यदि हो गया अन्याय है।
इस लार्ड परिषद का हमें है लाभ कितना मिल चुका;
लख सके लंदन, भले बर्बाद धन-जन बन चुका ॥२८९॥

अंग्रेजों के शासनकाल में न्यायालयों की एक अद्भुत व्यवस्था है। मुनसिफ कोर्ट से लगाकर लंदन में स्थित लार्ड परिषद तक अनेकों न्यायाधिकरण हैं। हम भारतवासियों ने अनेक बार लार्ड परिषद के हाथों न्याय प्राप्त किया है और उस बहाने हमको लंदननगर के दर्शन करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ है; धन और मनुष्य तो भले ही बर्बाद हुये हों।

है पास में पैसा अगर, सब काम कल कर जायगी;
थोड़े दबाने पर बटन के रोशनी लग जायगी।
खबरें नये जग की हमें इनकी कृपा से मिल रहीं;
है इस बटन के सामने अब देवमाया कुछ नहीं ॥२९०॥

अंग्रेजों के शासनकाल में अनेक सुविधायें हैं। एक मात्र धन की आवश्यकता है। आपके सर्व कार्य यंत्र कर देंगे। अगर

पास में धन है तो बिजली का बटन दबाने पर भवन को जगा-मग करने वाला दीप्त प्रकाश बिखर पड़ेगा, रेडियोयंत्र देश-विदेश के समाचार सुना देगा। इस बिजली के बटन ने तो देवताओं के चातुर्य्य को भी परास्त कर दिया है।

इनके कलायें पास में हैं सुर, असुर, अमरेश की;
हम देखते हैं नेत्र से कितनी दया है ईश की।
मृत को जिलाना हाथ में अभी आया इनके नहीं;
अतिरिक्त इसके और कोई काम बाकी है नहीं ॥३६१॥

देवता राक्षस और इन्द्र जिन यन्त्रों का उपयोग करते हैं वे सब यंत्र आज इन अंग्रेज शासकों के पास में है। परमात्मा का आभार मानते हैं कि अंग्रेज शासक होने के कारण हम भारतवासियों को ऐसे यंत्र कम से कम नहीं बनाने दिये जाँय तो भी देखने का सुअवसर तो मिला है। केवल मरे हुये को ये जीवित नहीं कर सकते हैं, शेष सब बातें इनके अधि-कार की हैं।

यह रेल, वायर की कहो है जाल कैसी बिछ रही;
हैं अम्बु-थल-नभयान की चालें मनोहर लग रही।
रसचार का व्यापार का श्री राम के भी राज्य में—
साधन नहीं था इस तरह जैसा मिला इस राज्य में ॥३६२॥

रेल, टेलीफोन, वायुयान, मोटर, साइकिल और जहाँज आदि की सर्वत्र भारतवर्ष में फैली व्यवस्थायें सहसा चित्त को हर लेती हैं। इन अंग्रेज शासकों के शासन काल में

वैभव भोग करने की और धन का उपार्जन करने की जैसी सुविधा है, वैसी सुविधा तो रामराज्य में भी नहीं थी (भला क्यों होवे !)

हैं भूरि संख्यक स्कूल सारे देश भर में खुल रहे;
निज स्वामियों के प्रति हमें सद्भक्ति हैं सिखला रहे।
यह भूत छूताछूत का कितना भयंकर यक्ष है;
हम तो पराभव पा चुके, अब भागता प्रत्यक्ष है ॥२६३॥

भारतवासियों को अपने स्वामी के प्रति सद्भक्ति अर्थात् स्वामीभक्ति का दृढ़ पाठ पढ़ाने वाले भारतवर्ष में ये सहस्रों स्कूल चल रहे हैं। छूताछूत की महामारी को अनेक वर्षों के के कठोर परिश्रम से भी हम तो नहीं हरा सके थे, इन अंग्रेज शासकों का शासन का ढ़ंग और इनकी रेल, तार, मोटर, नल, सिनेमा आदि की व्यवस्था ही इस ढ़ंग की हैं कि यह छूताछूत की महामारी स्वतः क्षीण हो रही है।

कानून परिषद में हमारे शूद्र हैं जाने लगे;
फिर भी न जाने क्यों नहीं अच्छे बृटिश लगने लगे?
सुविधा हमें सब दे रहे हैं, साथ में हैं कह रहे—
"निजराज्य दे देंगे तुम्हें, अवसर वहीं हैं लख रहे" ॥२६४॥

विधान परिषद में अब तो शूद्र भी सदस्य बनकर जा सकते हैं और जाते हैं; फिर भी ज्ञात नहीं होता ऐसे भले अंग्रेज शासक क्यों नहीं अच्छे लगते हैं? इनके शासन काल में हमको अनेक सुविधायें हैं और ये स्वयं कह रहे हैं कि हम वह

सुअवसर देख रहे हैं जिस दिन हम भारतवासियों को स्वराज्य दे देंगे।

शासन हमें इन नरवरों का आज भाता क्यों नहीं;
दुर्भाव हममें हो भले, दुर्भाव इनमें तो नहीं।
यदि है हमारे कुछ जलन उर में उसे कह दें यहाँ;
ये स्वामि हैं, हम दास हैं, सब हैं क्षमा भूलें यहाँ ॥३६५॥

ये इतने कल्याणकारी और हितचिंतक शासक भी, ईश्वर जाने क्यों नहीं अच्छे लगते हैं। इनके हृदय में तो कोई दुर्भाव प्रतीत नहीं होते, दुर्भाव हमारे हृदयों में इनके प्रति भले ही हों। इस पर भी अगर हम इनसे जलते हैं तो जलने का सर्व कारण इनके समक्ष निवेदन करने में कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि ये तो स्वामी हैं और हम इनके गुलाम हैं, गुलाम स्वामी को अपना दुःख नहीं कहे तो और किसको कहेगा; हमारे सर्व अपराध यहाँ क्षंतव्य हैं।

सबसे प्रथम यह प्रार्थना तुम देश के होकर रहो;
इस दीन भारतवर्ष के तुम पुत्र सब होकर रहो।
करके उपार्जित धन यहाँ अन्यत्र यों फूको नहीं;
धन-द्रव्य भारतवर्ष का अन्यत्र जाने दो नहीं ॥३६६॥

आप शासकों से हमारी प्रथम प्रार्थना यह है कि इस दीन भारतवर्ष के आप सर्व शासकगण हितचिंतक पुत्र बनकर रहें और यहाँ जो धन आप उपार्जित करें वह अन्य देशों में व्यय

महीं करें और वे सर्व मार्ग भी बंध कर दें जिनसे भारतवर्ष का धन और द्रव्य अन्य देशों को जा रहा है।

हैं अन्य देशों में कला कौशल धड़ाधड़ बढ़ रहे;
कल कारखाने नित्य नव हर देश में हैं खुल रहे।
सुविधा न इनकी है हमें अन्यत्र जैसी देखते;
हा! हंत! यों रहना पड़े मुहँ दूसरों का पेखते ॥३६७॥

हे अंग्रेज शासको! प्रत्येक अन्य देशों में कला कौशल की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है और प्रतिदिन नवीन नवीन ढंग के कल कारखाने खुल रहे हैं। भारत वर्ष में नहीं तो वैसी कला कौशल की उन्नति ही है और नहीं कारखाने खोलने की वैसी स्वतंत्रता और सुविधा ही है। बड़ा दुःख होता है कि हम हर दृष्टि में दूसरों के मोहताज हैं।

जिह्वा हमारी बन्द है, सब मार्ग भी हैं बन्द से;
परतंत्र के इस कोण में हैं फिर रहे पशुवृंद से।
जब तक न भारत वर्ष को सुविधा न हा! दी जायगी;
तब तक न ये दासत्व की दृढ़ बेड़ियें कट पायँगी ॥३६८॥

हम एक पशुगृह में बंद पशुओं के समान परतंत्र हो कर फिर रहे हैं। हमको अपने विचारों का प्रकाशन करने की और अभिलषित मार्ग ग्रहण करने की भी स्वतंत्रता नहीं है। जब तक भारतवासियों की वे सब सुविधायें जो एक स्वतन्त्र देश के निवासियों को होती हैं; नहीं दी जावेंगी, तब तक यह भारतवर्ष गुलाम ही बना रहेगा।
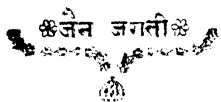
विद्या न वैसी मिल रही जैसी हमें अब चाहिये;
अज्ञान तम कहते हुए कैसे बढ़े बतलाइये?
कौशल, कला, व्यापार में हम ठेट से निष्णात थे;
हम घट गये, वे बढ़ गये, जो ठेट से बद्‌जात थे ॥३९९॥

वर्तमान् समय में हमको जैसा शिक्षण मिलना चाहिये वैसा शिक्षण नहीं मिल रहा है। फिर बतलाइये युग के प्रतिकूल शिक्षण लेकर हम कैसे उन्नति कर सकते हैं। कला कौशल और व्यापार में हम अनंत भूत काल से निपुण थे। परन्तु यह देखकर दुःख होता है कि हम तो अवनत हो गये और वे जो असभ्य और मूर्ख थे हम से आगे बढ़ गये।

सरकार का उपकार फिर भी बहुत कुछ देखो हुआ;
इनकी कृपा से आज इतना देखने को तो हुआ।
परतंत्र्य के ये कीट जिस दिन देश से उड़ जायँगे;
शुभ दिन हमारे देश के फिर उस दिवस जग जायँगे ॥४००॥

अंत में फिर भी हमको यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बृटिश सरकार ने हमारे पर अनंत उपकार किये हैं; जिनकी एक मात्र कृपा से हम इस सीमा तक तो पहुंच सके हैं। भारतवर्ष का भाग्य उस दिवस को खुलेगा, जिस दिवस इसको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी।

हम आज—

वैसे न दिन अब हाय! हैं, वैसी न रातें हैं यहाँ;
अब हाय! वैसे नर नहीं, वैसी न नारी हैं यहाँ।

हा ! स्वर्ग-सा वह भूत भारत भूत सदृश रह गया ;
कण मात्र भी अब उस छटा का शेष है नहिं रह गया ॥४०१॥

है वायु भी बहती वही, आनन्दप्रद वैसी नहीं ;
ऋतुराज, पावस, ग्रीष्म की भी बात है वैसी नहीं ।
बदली हुई हमको हमारी मातृभूमी दीखती ;
हा ! पूर्व-सी वैसी कृषी उसमें न होती दीखती । ॥४०२॥

हाय ! नहीं तो अब वैसे ये सुहावने दिन हैं और नहीं ये वैसी आनंददायिनी रात्रियें हैं । पूर्वजों जैसे गुणवान नहीं तो ये पुरुष हैं और नहीं ये वैसी साध्वी स्त्रियें हैं । हाय ! स्वर्ग के समान सर्वसुखों से भरा हुआ वह भारतवर्ष अब नहीं है । उस भूतकाल की उस अनुपम शोभा का अंश मात्र भी अब अवशिष्ट नहीं रहा है ।

पवन जो भूत काल में बहता था, अब भी वही बहता है, लेकिन वैसा सुख कर नहीं, वसंत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतुयें भी अब वैसी नहीं हैं । समस्त भारत भूमी हमको एक दम परिवर्तित हुई सी दिखाई देती है । अब भारतभूमी में वैसी कृषि भी नहीं होती प्रतीत होती है ।

अघचार पापाचार हिंसाचार, मिथ्याचार हैं;
रसचार हैं, रतिचार हैं, सबके बुरे व्यवहार हैं ।
हम दीन हैं, मति हीन हैं, नहिं मदन पर कोपीन हैं;
दासत्वता में, भृत्यता में नाथ ! अब लवलीन हैं ॥४०३॥

सर्व भारतवासी शूद्रकर्म, पाप, हिंसा और झूठे कर्म करते हुये दिखाई देते हैं; वैभवभोग में, व्याभिचार में अनुरक्त हैं ? सर्व भारतवासियों के व्यवहार बड़े बुरे हैं। हे परमेश्वर ! अब तो हम सर्व प्रकार से दीन हैं, निर्बुद्धि हैं, । स्त्रीलंपटी हैं और गुलामी और नौकरी में ही आसक्त हैं।

वर्तमान खण्ड

गाती रही तू भूत अब तक लेखनी उत्साह भर;
रोया न तुझसे जायगा अब आज का दिन दाहकर !
निःशक्त हैं, निःचेष्ट हैं, नहिं नाड़ियों में रक्त है;
अब श्वाँस भी रुकने लगी, अंतिम हमारा वक्त है !! ॥ १ ॥

हे लेखनी ! तू अब तक गौरव भरे भूत काल का वर्णन प्रेम पूर्वक लिखती रही; परन्तु इस आज के दुःखद वर्तमान को तू देखकर ऐसी विकल हो जायगी कि इसका वर्णन करना तो दूर रहा, रो भी न सकेगी। हम अशक्त हैं, अश्रमी हैं, नशों में रक्त भी नहीं रहा है, श्वाँस की गति भी मन्द पड़ रही है, ऐसा प्रतीत होता है अब हमारा अन्तिम समय संनिकट आ गया है।

क्या बंधुओं ! हमको कहाने का मनुज अधिकार है !
दर दर हमें दुत्कार है ! धिक् ! धिक् ! हमें धिक्कार है !
कटुकर लगेंगे आपको ये वाक्य हैं जो कह रहा;
पर क्या करूँ ? लाचार हूँ, मेरा हृदय नहीं रह रहा ॥२॥

हे भ्राताओ ! क्या हमको (ऐसी स्थिति में) मनुष्य कहलाने का अधिकार है ? हमको अनन्त धिक्कार हैं कि हम मनुष्य हैं फिर भी हमारा घर-घर अपमान होता है। मेरा यह

निवेदन यद्यपि आप बंधुओं को अप्रिय लगेगा, लेकिन क्या करूँ ? विवश हूँ, मुझसे निवेदन किये बिना रहा नहीं जाता।

दयनीय हा ! इस दुर्दशा का हे विभु ! कहीं छोर है ?
इस ओर भी हम हैं नहीं, नहिं नाथ ! दूजी ओर हैं।
हम में विषैली फूट है, हम में बढ़ अघचार है;
हैं रोग ऐसे बढ़ रहे, जिनका न कुछ उपचार है ॥३॥

हे भगवन् ! इस करुणाजनक दुर्दिवस की भी कहीं सीमा है ? हे प्रभु ! न हम इस ओर (मृतजनों में) ही हैं और न उस ओर (जीवतजनों में) ही हैं। हम में घातक फूट फैली हुई है, अत्याचार बढ़ा हुआ है और ऐसे ऐसे नाशक दुर्व्यशन और प्रथायें बढ़ी हुई हैं कि जिनको निर्मूल करने का हमारे पास में सबल उपाय भी नहीं है।

है अज्ञता-श्यामा-अमा सम्यक् हमें घेरे हुये;
हैं नाथ ! हम रतिकामिनी के कक्ष में सोये हुये।
एकान्त हो, तमभार हो, रति रूपकी-सहवास हो;
उस ठौर पर कल्याण की क्या नाथ ! कोई आश हो ॥४॥

हे भगवन् ! हमको अज्ञानता रूपी काली निशा ने घेर रक्खा है और सुन्दर कामातुर स्त्रियों का हमको संग प्राप्त है। हे परमात्मन् ! उस स्थान पर कैसा कल्याण-कुशल जो एकान्त हो, अंधकार से ढ़का हुआ हो और जहाँ सुन्दर रमणी प्राप्त हो।

गुर्जर व मालव देश के हम शाह थे सरदार थे;
सौराष्ट्र, राजस्थान के आमात्य थे भूदार थे।

ऐसा पतन तो शत्रु का भी नाथ ! हा ! करना नहीं ;
इससे भली तो मृत्यु है, जिसमें न है लज्जा कहीं ॥ ५ ॥

हम (जैन) गुजरात और मालवा के धनी-मानी शाहूकार और आन पर मरने वाले नर वीर थे। सौराष्ट्र और राजस्थान के नरपतियों के हम सामंत और प्रधान कर्मचारी थे। हे भगवन् ! ऐसा पतन तो किसी शत्रु का भी आँखों न दिखाना। ऐसे पतित होकर जीवित रहने की अपेक्षा तो मृत्यु को प्राप्त करना अच्छा है जिसमें शर्म तो कहीं नहीं है।

श्रीमंत होने मात्र से क्या अवपतन रुकता कहीं ;
हैं किस नशे में झूमते, हमसे न कम गणिका कहीं।
कितना हमारे पास में दौलत जमा है देखलूँ ;
किस कक्ष के फिर योग्य हैं हम, कक्ष वह भी पेखलूँ ॥ ६ ॥

बंधुओ ! धनपति होने मात्र से ही अवनति होती नहीं रुक जाती। हम ऐसे कैसे धनेश्वर हैं जो कि हम श्रीमंत होने का गर्व करते हैं। ऐसी अनेक वेश्यायें मिलेंगी जिनके पास में हमारे से कई गुना अधिक धन मिलेगा अच्छा फिर भी देखूँ, हमारे पास इतना कितना धन है कि मैं जिसके आधार पर यह कह सकूँ कि धनपतियों में अब हमारा कौनसा स्थान है।

हम शाह हैं या चोर हैं, हम मनुज हैं या दनुज ;
हम नारि हैं या हैं पुरुष ! अंत्यज तथा या हैं अनुज।

हिंसक तथा या जैन हैं, या नारि नर भी हैं नहीं;
क्योंकि हमारे कार्य तो नर-नारि सम खलु हैं नहीं ॥७॥

हम शाहूकार हैं या चोर हैं; मनुज हैं या राक्षस हैं; स्त्री हैं या पुरुष हैं शूद्र हैं या वैश्य या क्षत्री; हिंसावादी हैं या अहिंसावादी; या हम स्त्री भी नहीं और पुरुष भी नहीं; क्योंकि हमारे कर्म सचमुच न पुरुषों के और न स्त्रियों के ही।

अविद्या

क्यों सूत्र ढ़ीले पड़ गये? क्यों अवगुणों से ढ़क गये?
क्यों मन-वचन अरविंद पर पाले शिशिर के पड़ गये?
निज जाति, धन, जन, धर्म का क्यों ह्रास दिन-दिन हो रहा?
हम चेतते फिर क्यों नहीं? क्या रोग विभुवर! हो रहा?॥८॥

हमारी व्यवस्थायें कैसे शिथिल हो गई? हम में अवगुण किस प्रकार भर गये? मन और वचन रूपी कमलों पर तुषार वृष्टि कैसे हो गई? प्रति दिन अपनी जाति की, धन की, मनुष्यों की और धर्म की क्षति कैसे हो रही है? हे परमात्मन्! हम ऐसे कैसे रोग से ग्रस्त हैं कि कुछ भी संचेतना नहीं होती?

हममें विषय का जोर क्यों? हम में बढ़ा अतिचार क्यों?
उन्मूल हमको कर रहा है अंध श्रद्धाचार क्यों?
घातक प्रथायें, रीतियों के घोर हम हैं अङ्क क्यों?
हम आप अपने ही लिये उत्कीर्ण करते खड्ड क्यों?॥९॥

हममें विषय-वासना क्यों बढ़ी हुई है अमर्यादित आचारों

का प्रकोप क्यों हो रहा है ? घातक अन्ध विश्वास हमारा सर्वनाश करने पर क्यों तुला हुआ है ? विनाशी प्रथायें एवं रीतियें इतनी प्रचलित क्यों हो रही हैं ? हमारे गिरने के लिये हम ही खड्ड क्यों खोद रहे हैं ?

अतिव्यय हमारे में अधिक क्यों आप से हैं बढ़ रहे?
अनमेल-अनुचित-शिशुप्रणय हममें अधिक क्यों घट रहे?
हममें सुशिक्षा की व्यवस्था नाम को भी क्यों नहीं ?
क्यों सो रहे युग नींद हैं ? हम जागते हैं क्यों नहीं ॥१०॥

हमारी आप की अपेक्षा व्यय अधिक क्यों हो रहे हैं ? वृद्धविवाह, बालविवाह, असंगतविवाह का प्रचार अधिकाधिक क्यों बढ़ रहा है ? हमारी समाज में सुशिक्षण की व्यवस्था किंचितमात्र भी क्यों नहीं है ? हे परमेश्वर ! ऐसी कैसी दीर्घ निद्रा हम सो रहे हैं ? हम जाग्रत क्यों नहीं हो रहे हैं ?

क्यों आज 'अज' को 'मेर' को मर 'रोज' को रज लिख रहे?
है चार पट लिखना जहाँ 'चौपट' वहाँ क्यों लिख रहे ?
'सुत' को सुता क्यों लिख रहे ? क्यों बन रहे नादान हैं ?
इस जग अजायब गेह में हम क्यों अजब हतज्ञान हैं ?॥११॥

हम इतने अज्ञान कैसे हैं कि जहाँ अजमेर लिखना चाहिये वहाँ 'आजमर' लिख देते हैं और रोज के स्थान में रज और चार पट लिखना है वहाँ चौपट लिख देते हैं, सुत को सुता लिख रहे हैं। इस अजायब विश्व में हम इस प्रकार ज्ञान विहीन कैसे विचरण कर रहे हैं ?

इस अवदशा का बंधुओ ! क्या हेतु होना चाहिए ?
क्या द्वेष, मत्सर, राग को जड़ हेतु कहना चाहिए ?
इनका जहाँ पर जन्म है—जड़हेतु सच्चा है वही;
इनकी अविद्या मातृ है, जड़हेतु अवनति का वही ॥१२॥

हे भ्राताओ ! हमारी इस दुर्दशा का मूल कारण क्या है? क्या पारस्परिक द्वेष, ईर्षा या स्नेह को हम इस दुर्दशा का मूल कारण कह सकते हैं ? मेरे विचार से हमारी दुर्दशा का मूल कारण वह है जहाँ इन पारस्परिक राग-द्वेष और ईर्षा का जन्म होता है। सचमुच हमारे इस पतन का मूल कारण अविद्या है जो इन अवगुणों की एक मात्र जननी है।

आर्थिक स्थिति

ज्यों काण का अंध जनों में मान बढ़ता है यथा,
कंकाल भारतवर्ष में श्रीमंत जन हम हैं तथा।
कुछ मोड़ कर ग्रीवा सखे ! तुम पूर्व वैभव देखलो ;
फिर दीन हो श्रीमंत या जल कल बहा कर लेखलो ॥१३॥

अंधे मनुष्यों में जिसप्रकार काने का मान बढ़ा हुआ होता है ठीक उसी प्रकार इस आज के दीन भारत की दीन जातियों में हमारा मान बढ़ा हुआ है। परन्तु हे मेरे मित्रो। कुछ श्रम उठाकर अपने अतीत के वैभव को तो अवलोको और फिर अश्रु बहाकर बतलाओ कि अब तुम दीन हो या श्रीमंत हो।

हे बंधुओ ! गणना हमारी लक्ष तेरह है अभी,
कोटीश जन, लक्षेश जन हममें मिलें कितने अभी ?
मैं भी रहा भ्राता तुम्हारा, जानता सब भेद हूँ;
अब खोलने गृह पोल को मैं बन रहा गृहछेद हूँ ॥१४॥

हे भ्राताओ ! हम आज भी संख्या में तेरह लक्ष हैं। हमारे में कितने धनी कोटीश और लक्षपति हैं—यह मैं भली भाँति जानता हूँ। मैं आपका ही भ्राता हूँ मुझसे कुछ भी अज्ञात नहीं है आज मैं अपने घर का मिथ्या भेद खोलने के लिये घर का रंध्र बन रहा हूँ।

हम पाँच प्रतिशत भी नहीं श्रीमंत पद के योग्य हैं;
चालीश प्रतिशत भी कहीं हम पेट भरने योग्य हैं।
पैंतीस प्रतिशत आत्मजा को बेच कर हैं जी रहे;
अवशिष्ट रहते बीस विष मारे क्षुधा के पी रहे ॥१५॥

हमारे में पाँच प्रतिशत मनुष्य श्रीमंत कहलाने के योग्य हैं, कठिनता से चालीस प्रतिशत मात्र उदर भरने के योग्य मिलेंगे। तैंतीस प्रतिशत ऐसे मनुष्य हैं जो कन्याविक्रय कर अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं और शेष रहते बीस प्रतिशत क्षुधा के मारे अनेक अनुचित ढंगों से अपनी जीवन लीला समाप्त करते जा रहे हैं।

अपव्यय

हा ! जाति निर्धन हो चुकी—क्या ध्यान हमको है भला ?
देता न वह भी ध्यान जिसके आगई घर है बला !

निज जाति का निज धर्म का, निजका न जिसको ध्यान है !
नर-रूप में हम सच कहें, वह फिर रहा बन श्वान है ॥ १६ ॥

हे भ्राताओ ! क्या हमको यह विदित है कि हमारा समाज निर्धन हो चुका है। (बड़े दुःख की बात है) जो मनुष्य निर्धन हो चुका है या हो रहा है वह भी विचार नहीं कर रहा है कि वह दिनोदिन निर्धन क्यों होता जा रहा है। वह मनुष्य जिसको अपनी, अपनी जाति की और धर्म की उन्नति का ध्यान नहीं है, सच कहता हूँ, मनुष्य देहधारी कुत्ता है

हो पाणि-पीड़न के समय व्यय लक्ष कुछ चिंता नहीं ;
आतिश, कलाबाजी न हो—आनंद कुछ आता नहीं ;
रतिजान के तन हार बिन जी की कली खिलती नहीं ;
बिन भोज भारी के दिये यश-कीर्ति बढ़ सकती नहीं ॥१७॥

विवाहोत्सव पर लक्षों रुपये क्यों न खर्च हो, कोई चिंता नहीं। ऐसे अवसरों पर जबतक आतिशबाजी की व्यवस्था न हो कलाबाजों के कौशलों का प्रदर्शन न हो और वैश्याओं का नृत्य न हो तबतक विवाह के संयोजकों का हृदय प्रफुल्लित न होगा और बिना विशाल भोजन के दिये यश और प्रतिष्ठा में किसी भी प्रकार की वृद्धि हो ही नहीं सकती।

धन नाम को भी हो नहीं, नहिं शान में होगी कमी ;
अब वंश की सुकुलीनता व्यय व्यर्थ में आ ही थमी।
करके मृतक-भोजन शतों हैं बाल-विधवा रो रही ;
घर दीन कितने हो गये, है बढ़ प्रथा यह तो रही ॥१८॥

चाहे पास में धन-संपत्ति कुछ भी न हो, इससे मान में कोई अधिक कमी नहीं आ जाती अर्थात् अब सुकुलीनता ऐसे अवसरों पर अति व्यय करने में ही स्थित है। मृतक-भोजन देकर सहस्रों बाल-विधवायें भोजन तक की भिक्षुकायें बन गई हैं, कितने ही कुटुम्ब निर्धन हो गये हैं, फिर भी मृतक-भोजन देने की प्रथा में कोई विशेष कमी दृष्टिगोचर नहीं होती।

मेले, महोत्सव, तीर्थयात्रा अरु प्रतिष्ठा कार्य में;
उपधानतप, दीक्षादि में, शोभाविवर्धक कार्य में—
हतज्ञान हो हम आप से व्यय बहु गुणित हैं कर रहे;
सत्कर्म को दुष्कर्म कर निर्धन स्वयं हैं बन रहे ॥१९॥

धर्म मेलों के अवसरों पर, महोत्सवों में, तीर्थयात्राओं में, उपधानतपों के अवसरों पर दीक्षादि के समयों पर और शोभाजनक एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले धर्म कार्यों पर हम विवेक और बुद्धि हीन होकर इतना अपव्यय कर रहे हैं कि इन धर्मकार्यों को भी हम परिणाम की दृष्टि से दुष्कर्म बना रहे हैं।

इन मन्दिरों के आय-व्यय को आँक हम सकते नहीं,
क्या तीर्थ धन खाकर धनी हैं बन गये गुण्डे नहीं।
मन्दिर पुराने सैकड़ों पूजन विना हैं सड़ रहे;
हम घट रहे हर वर्ष हैं, पर चैत्यगृह हैं बढ़ रहे ॥२०॥

हमारे मन्दिरों पर होते आय-व्यय का लेखनांकन करना भी अति कठिन है। इन मन्दिर तीर्थों के द्रव्य को खाकर

सहस्रों गुण्डे धनवान बन गये हैं। प्राचीन मन्दिर सैकड़ों की संख्या में पूजन की समुचित व्यवस्थायें न होने के कारण उजड़ रहे हैं और इस पर भी हमारी मूढ़ता देखिये कि नूतन मन्दिरों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही है जब कि हमारा समाज दिनोंदिन घटता जा रहा है।

अब धर्म के हैं कार्य में प्रतियोगितायें चल रहीं;
बढ़कर हमारे हो महोत्सव-योजनायें फल रहीं।
हा! जाति निर्धन हो चुकी; व्यापार चौपट हो चुका;
पड़ धर्म भी प्रतियोगिता में भ्रष्ट सारा हो चुका ॥२१॥

अब हम लोग धर्म कार्यों में भी व्यय करते समय परस्पर होड़ाहोड़ कर रहे हैं और वे ही अतिव्ययशालिनी योजनायें बहुमत से पास की जाती हैं। हा! दुःख! समाज कंकाल हो गया; व्यापार-व्यवसाय चौपट हो गये; और इस प्रकार की होड़ाहोड़ में पड़ कर स्वयं धर्म भी सर्वदृष्टि से भ्रष्ट हो गया।

हम मूर्ख हैं अनपढ़ तथा नहिं सोच भी हम कुछ सकें;
फिर व्यर्थ व्यय, अपयोग को क्या समझ भी हम कुछ सकें;
हम वैश्य शाहूकार हैं, जल-सा न धन फिर क्यों बहे;
वे श्रेष्ठि पूर्वज मर गये! मणि कपि-करों में क्यों रहे? ॥२२॥

ऐसी दशा में जब कि हम अज्ञान हैं, अशिक्षित हैं, और न विचारवान हैं, भला धन के अपव्यय और दुरुपयोग के प्रश्नों को समझ भी कैसे सकते हैं। हम वैश्य हैं, शाहूकार हैं फिर पानी के समान धन क्यों न व्यय हो? हा! हमारे श्रीमन्त

पूर्वज तो मर गये और उनका धन हम बंदरों के हाथोंमें पड़ गया।

अपयोग

किस काम में हम दे रहे धन—देखते नहिं कार्य है;
परिणाम तब उस द्रव्य का होता नहीं शुभ आर्य है।
कुछ द्रव्य की करना व्यवस्था है हमें आती नहीं;
लें अन्य की हम राय फिर यह भी हमें भाती नहीं ॥२३॥

धन का समुचित उपयोग करना भी हम लोगों को नहीं आता है। किस कार्य में धन का किस प्रकार कैसा उपयोग करना चाहिए वह कार्य हम नहीं ढूँढ़ते हैं, फिर बन्धुओं उस विवेकहीन होकर किये गये धन के उपयोग का फल शुभ कैसे हो सकता है? हम लोगों को न तो धन की व्यवस्था ही करनी आती है और न हम इतने विवेकशील हैं कि धन की व्यवस्था करने में हमें अन्य की संमति अच्छी लगे।

उत्साह में आकर अहो! हम शिक्षिणालय खोल दें;
होकर प्रभावित शीघ्र ही हम दान-शाला खोल दें।
धर्मार्थ भोजन-धर्मगृह यदि खोलते देरी करें;
बतना अनंगोपासना में हम विलम्ब भारी करें ॥२४॥

हम प्रेरित होकर या किसी के व्याख्यान से प्रभावित हो कर विद्यालय और दानशालायें इतनी शीघ्रता एवं उत्साह के साथ खोल देते हैं जैसे कामी पुरुष आये हुये धर्म कार्य को सुन्दर और शीघ्र करना चाहता है। वह शीघ्र इसलिये करता

है कि उसको उसकी कामक्रीड़ा में विलंब न हो और सुन्दर इसलिये कि उसकी पापलीला का भ्रम न खुलने पावे।

वेश-भूषा

निज वेश-भूषा छोड़ना यह देश का अपमान है;
क्या हाय! अब अनुकरण में ही रह गया संमान है।
जो देश खलु ऐसा करे, वह देश जीवित है नहीं;
यदि चढ़ गया रंग लाल तो फिर श्वेतपन वह है नहीं॥२५॥

अपने देश का रहन-सहन, वेष-भूषा बदल देना अपने देश का अपमान करना है। दुःख! क्या अब अन्य देशों का अनुकरण करने में ही हम भारतवासियों का मान रह गया है! जो देश अन्य देश का दिग्मूढ़ होकर इस प्रकार अनुकरण करता है वह देश वस्तुतः जीवित नहीं है। यदि लाल रंग एक बार चढ़ गया तो फिर वह श्वेतता प्राप्त नहीं होगी।

इस वृद्ध भारतवर्ष का यह वृद्ध भूषावेश है;
चारित्र-दर्शन-ज्ञान का यह पूत! पार्थिव वेश है।
हम दूसरों की कर नकल अब सिद्ध यह हैं कर रहे;
जन्मे नहीं हम पूर्व थे, हम जन्म अब हैं धर रहे॥२६॥

इस वृद्ध भारतवर्ष की यह वस्त्र-सभ्यता अंतिम और वृद्ध है। हमारे धारण किये जाने वाले वस्त्रों के आकार-प्रकार एवं ढंगों से हमारे चरित्र, विवेक और ज्ञान का परिचय विशद रूप से होता जाता है। हमारे वस्त्र चारित्र-दर्शन और ज्ञान

की साकार प्रतिमायें हैं। अब हम अन्य देश वासियों के वस्त्रों की नकल कर यह प्रकट कर रहे हैं कि हम अब जन्म ले रहे हैं और इससे पूर्व हमारा जन्म ही नहीं हुआ था अर्थात् भारतवर्ष अब सभ्य बन रहा है इससे पूर्व यह असभ्यावस्था में ही था।

जलवायु, कर्माचार के अनुसार होता भेष है;
प्रतिकूल जिनके वेश हैं, खलु पतित उनके देश हैं।
नव रस हमारे इस हमारे वेश में मिल जायँगे;
साहित्य-कौशल-कर्म के हमको जनक बतलायँगे ॥२७॥

कार्यों की प्रकृति और जलवायु के अनुसार हर देश की वेश-भूषा होती है। वह देश सचमुच पतित है जिसके निवासियों की वेश-भूषा इस दृष्टि से प्रतिकूल है। हमारे वेश से ही हमारे आचार्यों के प्रणीत नव रस वीर, शांत, शृंगारादि का परिचय आपों आप हो जाता है और हम साहित्य-कौशलकर्मों के श्रेष्ठा हैं यह भी इसी हमारे वेश से प्रकट प्रमाणित होता है।

"जब तक न भाषा-भेष का अभिरूप बदला जायगा;
तब तक न भारत में हमारा राज्य जमने पायगा।"
ये वाक्य किसको याद हैं? किसने कहो, कब थे कहे?
वे कार्य इस मंतव्य के अनुसार हैं करते रहे ॥२८॥

क्या ये वाक्य आपको स्मृत हैं कि किसने और कब कहे थे कि जब तक भारतवर्ष की भाषा और भेष परिवर्तित न कर

दिये जायँगे तब तक हमारा साम्राज्य भारत में दृढ़ नींव नहीं पकड़ सकेगा और हम देखते हैं कि वे आज तक इसी मंतव्य को दृष्टि में रखकर शासन-कार्य करते रहे हैं।

हम छोड़ कर हैं वेश-भूषा देश लज्जित कर रहे;
अपमान संस्कृति का हमारी हम स्वयं हैं कर रहे।
पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर अगर देखें हमें;
मैं सत्य कहता हूँ सखे! पहिचान नहिं सकते हमें ॥२६॥

हम इस प्रकार अपने वेष-भूषा को परिवर्तित कर अपने देश को लज्जित कर रहे हैं और हम स्वयं अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का अपमान कर रहे हैं। मेरे मित्रो! मैं सत्य कहता हूँ, अगर पूर्वज आकर हमको देखें तो वे सचमुच हमको पहिचान नहीं सकेंगे कि हम उनकी संतान हैं।

नर नारि हैं या नारि नर—यह वेश कहता भी नहीं;
'नर-वेश' नर का भी नहीं, 'रति-वेश' रतिका भी नहीं।
नर-वेश भी जब है नहीं, नहिं नारियों का वेश है;
यह कौन-सा फिर देश है, यह तो न भारत देश है! ॥३०॥

पुरुष (अब) स्त्री बन गया है या स्त्री (अब) पुरुष बन गई है। इस वेष से कुछ यह भी तो स्पष्ट नहीं हो सकता। न पुरुष का वेष पुरुष का है और न स्त्री का वेष स्त्री का रहा है। और न (दोनों का) पुरुष-वेष है और न स्त्री वेष। यह फिर ऐसा कौन-सा देश है, यह भारतवर्ष तो प्रतीत नहीं होता।

खान-पान

भाइयो! हम जैन हैं, यह मान जन सकते नहीं;
ऐसे कभी भी जैन के तो कार्य हो सकते नहीं।
हम मांस निर्मित नित्य हैं भोजन विदेशी खा रहे;
दुष्नाम कर यों धर्म का, हम जैन हैं कहला रहे ॥३१॥

हे बन्धुओ। हमारा आहार-आचार अवलोक कर मनुष्य यह विश्वास नहीं कर सकते कि हम जैन हैं। जैसे हमारे कर्म हैं वैसे कर्म एक जैन के तो नहीं हो सकते। विदेशी भोजन-सामग्री जो प्रायः मांसादि के संमिश्रण से बनती है हम रुचि के साथ उसका उपयोग कर रहे हैं—इस प्रकार हम अहिंसात्मक जैन धर्म को कलंकित कर जैनी कहला रहे हैं।

'व्हिसकी' 'बरण्डी' 'बारले-व्हाइन' हमें रुचिकर लगें;
जापान-जर्मन-चीन के बिस्कुट हमें मधुकर लगें।
हममें शराबी मांसप्रिय में भेद अब क्या रह गया;
जल छान पीने मात्र में जैनत्व सब है रह गया ॥३२॥

हम जैन होकर व्हिसकी, बरण्डी और बारले आदि मादक पदार्थों का उपयोग करते हैं, जापान-जर्मन आदि प्रदेशों के बिस्कुटादि खाद्य वस्तुओं का भी उपयोग करते हैं जिनका उपयोग करना जैन-धर्म की दृष्टि से निषिद्ध है। अब बतलाइये। हम लोगों में और शराबी मांसाहारियों में क्या अन्तर है? क्या सब जैनत्व एक मात्र जल छान कर पीने में ही सिमिट गया है?

फैशन

ये युवक हैं या युवतियें-पहिचान में आता नहीं,
पहिने हुये ये पेन्ट हैं, साया तथा पत्ता नहीं।
सिर पर चमकती माँग है, नहिं मूँछ मुँह पर हैं कहीं;
नाटक-सिनेमा की कहीं ये नायिकायें हैं नहीं ॥३३॥

आधुनिक युवक और युवतियों के वस्त्र और अंगों का शृंगार परस्पर ऐसा मिलता-सा हो गया है कि यह भी प्रतीत नहीं होता कि यह व्यक्ति युवक है या युवती। पेंट और साया के प्रकार में थोड़ा-सा अन्तर है, दोनों के शिरों पर माँग है, दोनों के मुँहों पर मूछ नहीं है। शंका हो जाती है कि कहीं ये नाटक और सिनेमा गृहों में अभिनय करने वाली अभिने-त्रियें तो नहीं है।

सर्वांग इनके वस्त्रमें सब को प्रदर्शित हो रहे;
निर्लज्जता की अवतरित ये मूर्ति सच्ची हो रहे।
हा! आर्य-जगती! आज तेरा शील चौपट हो गया;
व्यभिचार से हम दूर थे-नैकट्य उससे हो गया ॥३४॥

इन युवक और युवतियों के सर्व अंग इनके वस्त्रों में सब को स्पष्ट दिखलाई देते हैं। सचमुच आज के युवक और युवती निर्लज्जता की साकार प्रतिमायें हैं। हा! आर्यजगती! आज तेरी शिष्टता उन्मूल हो गई। हमारे युवक और युवती जो व्यभिचार से कोसों दूर रहते थे आज व्यभिचार के निकट बस रहे हैं।

परिधान करने के लिये मलमल विदेशी चाहिए!
हा! चमक लाने के लिये मुँह पर लवण्डर चाहिए!
हर वक्त मुँह को पूँछने करचीफ कर में चाहिए!
जलता हुआ सिगरेट भी हर वक्त मुँह में चाहिए॥३५॥

इन हमारे युवक और युवतियों को परिधान करने के लिये विदेशी मलमलों के बने हुये वस्त्र चाहिए, मुँह पर लगाने के लिये लवण्डर चाहिए, हर समय मुखारबिंद को पूँछने के लिये हाथ में इनके रूमाल हो और सिगरेट तो हर समय मुँह में दबा ही होना चाहिये—ये आज के युवक और युवतियों के ढंग हैं।

जेबी घड़ी है जेब में, है रिष्ट बाहें हाथ में;
है नाक पर ऐनक लगी, है कैप दाहें हाथ में।
ये छोर धोती का उठाये हैं किधर को जा रहे;
है हंत! ये भी वेश्य हैं, वैश्याभवन को जा रहे॥३६॥

जेब में इनके जेब घड़ी पड़ी है, हाथ पर रिष्टवाच लगा है, नाक पर चश्मा चढ़ा है और टोपी दाहिने हाथ में थामे हैं—धोती का एक पल्ला पकड़े हुये ये किधर जा रहे हैं!!—हा! ये भी तो वैश्यकुमार हैं—वैश्याओं के घर जा रहे हैं!!

हा पान की लाली टपकती इत्र-भीना कान हो;
हो वस्त्र सारे मलमली, रसराज की-सी शान हो।
दो यार मिलकर साथ में ये झूमते हैं जा रहे;
उन्मत्त होकर बहिन के कर को दबाते जा रहे!!॥३७॥

मुख से पान की लाली चूती हो, कर्ण इत्र से सने हो, वस्त्र सब

के सब मलमली हो, कामदेव का-सा सारा वैभव हो—ये आज के युवकों के रंग-ढ़ंग हैं। दो मित्र मिलकर (वायुविहार के लिये) झूमते हुये चले आ रहे हैं, कामातुर होकर संग में हाथ पकड़ कर चलती हुई भगिनी के हाथ को भी ये विस्मृत होकर दबा देते हैं।

इस हाय! फैशन ने हमारा नष्ट जीवन कर दिया;
इसने हथोड़े मारकर हा! हेम कण कण कर दिया।
इस भूत फैशन के लिये हड़ुमान जगना चाहिये;
या भूत से ही भूत अब हमको भिड़ाना चाहिए॥३८॥

इस फैशन ने हम युवकों और युवतियों का समस्त जीवन ही नष्टप्राय कर दिया। हथोड़े मारमार कर कंचनके टुकड़े कर दिये। इस हावा बनी फैशन से मुक्ति पाने के लिये अब हड़ुमान जाग्रत होने चाहिए या फिर हावी से हावी की ही कोई भिड़न्त करवानी चाहिए।

अनुचित प्रणय

बालायु में करना प्रणय संतान का अभिशाप है;
ऐसे—पिता माता नहीं, वे पुत्र के शिर पाप हैं।
अल्पायु में ये कर प्रणय संतान निर्मल कर रहे;
देकर निमंत्रण काल को ये भेट संतति कर रहे!॥३९॥

पुत्र और पुत्रियों का विवाह शिशु अवस्था में करना सर्वथा अनुचित है। बाल विवाह करने वाले माता और पिता अपनी संतान के लिये प्रत्यक्ष पाप की प्रतिमायें हैं जो अल्पायु

में अपनी संतान का विवाह कर उसे निर्बल बनाते हैं अर्थात् वे इस प्रकार यमराज को निमंत्रण देकर अपनी संतान भेंट करते हैं।

ये जाति के अभिशाप हैं निर्मूल ये हैं कर रहे;
संतान भावी को तथा हैं दीन-दुखिया कर रहे।
यदि हाल जो ऐसा रहा—मिट एक दिन हम जायँगे।
इन पापियों के पाप का फल हाय! कटु हम पायँगे ॥४०॥

ऐसे माता पिता जाति के कुठार हैं जो जाति को जड़ से उखाड़ रहे हैं। ये अपनी संतान का बाल विवाह करके जाति की भावी संतान को दीन और दुःखी बना रहे हैं। यदि यही गति-विधि रही तो समझिये हमारा एक दिन अस्तित्व ही मिट जायगा और यह होगा कि इन पापियों के पाप कर्मों का दुष्फल इस प्रकार हमको भुगतना पड़ेगा।

है रोग इतना ही नहीं, दूजे कई हैं लग रहे;
अनमेल वय में, वृद्ध वय में प्रणय फिर हैं पग रहे।
बहु पाणि-पीड़न की प्रथा है आज हममें दीखती;
हम क्या कहें, हैं अंत पल की काल-घड़ियाँ चीखती ॥४१॥

बाल विवाह ही एक मात्र बीमारी हो सो बात नहीं है। बीमारियें अन्य भी कई हैं। अनमेल विवाह, वृद्धविवाह और बहुविवाह का भी जोर अति अधिक है। अधिक हम क्या कहें—अब हमारी जाति के अंत समय के घंटे बजने लग गये हैं।

ये बाल विधवायें हजारों दे रहीं कटु शाप हैं;
बालक विधुर हो फिर रहे हैं, देखते नित आप हैं।

वृद्धायु के दुष्प्रणय ने हा ! बल-हमारा हर लिया ;
हा! युवकदल के सत्व को कामी कुकुर ने हर लिया!! ॥४२॥

ये बाल विवाह के प्रताप से सहस्रों बालविधवायें जाति को कोश रही हैं और अनेक युवक विधुर होकर फिर रहे हैं। इस पर फिर वृद्ध विवाह ने भारी संकट उपस्थित कर रक्खा है। कामी कुत्तों की तरह वृद्ध विवाह कर युवकों का अधिकार अपहरण कर रहे हैं।

अवनत रहेगी जाति वह,जिसको कि ऐसा हाल है;
आजाय उसको मृत्यु कब—अवगत नहीं वह काल है।
मेरे युवक! अब आँख खोलो-ध्यान अब कुछ तुम करो;
इन कुक्कुरों की संघठन, नृपशक्ति से वश तुम करो ॥४३॥

जिस समाज की ऐसी स्थिति है, वह समाज सदा अवनत ही रहेगा। उस क्षण का पता नहीं। कब उसका अंत हो जाय। मेरे युवको ! नेत्र खोलो, और समाज की इस अवनत दशा पर कुछ ध्यान दो। इन कामी वृद्ध कुत्तों को संगठन के बल से या राज्याज्ञा के बल से वश में करो

संबन्ध जो हैं असम वय में , अल्प वय में कर रहे ;
बहु पाणि-पीड़न की प्रथा पर जो मनुज हैं अड़ रहे।
वे मातृ हो या पितृ हो या हो प्रबल बलधर भले ;
प्रतिकार तुम उनका करो—वे नाश करने पर तुले ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य अपना या अपनी संतान का विवाह अनमेल वय में, अल्प वय में करते हैं तथा वे मनुष्य जो बहुविवाह

के पक्ष में हैं—ये मनुष्य चाहे माता हो, पिता हो या कोई शक्ताधीश पुरुष हो तुम्हारा विनाश करने पर डटे हुये हैं, तुम उनका सामना करो।

फैले हुये अघचार के ये दुष्ट जिम्मेदार हैं;
ये हैं शिकारी जाति के—इनके बुरे व्यापार हैं।
आज्ञानुवर्ती आदि से हम आज तक इनके रहे;
कहना पड़ेगा आज जब आदर्शता तज ये रहे ॥ ४५ ॥

इस फैले हुये पापाचार के ये ही दुष्ट मनुष्य उत्तरदायी हैं। ये जाति के वधिक हैं, इनके कर्म बड़े बुरे हैं। हम आज तक इनको गुरुजन जान कर इनके आज्ञापालक रहे, पर अब इनका सामना करना पड़ेगा जब कि ये वह आदर्श गुरुभाव को छोड़ रहे हैं।

श्री मन्त

श्रीमन्त हो फिर क्या कमी! पैसा न क्या रे! कर सके;
तुम जीव-हिंसा भी करो, पर कौन तुमको कह सके।
कुछ एक को तो आप में भी है प्रिया मृगया-प्रिया;
कुल्टा तुम्हारी हो गई है मंगला, विजया, प्रिया !!!॥४६॥

आप श्रीमन्त है। फिर किस बात का अभाव है। पैसा सब कुछ कर सकता है। आप प्राणहिंसा भी करें—कर सकते हैं, आपको कौन बाधक हो सकता है। आप में से कुछ एक श्रीमन्त आखेट भी खेलते हैं और वेश्या तो आप जनों को मंगला-देवी, विजयादेवी और प्रियतमा हो गई है।

श्रीमन्त हो, रसराज हो, कामी तथा हतभान हो;
अवकाश भी तुमको कहाँ ! जो जाति का भी ध्यान हो।
इस आज की हा ! दुर्दशा के मूल कारण हो तुम्हीं;
तुम रोग हो, गुणचोर हो, औ प्राणहर्ता हो तुम्हीं !!॥४७॥

आप श्री मन्त हैं, कामदेव के अवतार हैं, कामी हैं और आपको कुछ भी भान नहीं है। आपको इतना अवकाश ही कहाँ है, जो आप जाति का कुछ भी चिंतन कर सके। हमारी इस वर्तमान दयनीय अवदशा के आप ही मूल हेतु हैं। आप समाज के रोग हैं, कृतघ्न हैं और प्राणों के ग्राहक हैं।

देवधन खाते हुये तुमको न आती लाज है;
तुम मनुज को भी खा सके यह कौन-सा दुष्काज है!
इच्छा सहित कन्या हरण तुम हा ! कर्म गुण्डों का कहो;
धन के सहारे तुम हरो, गुण्डे नहीं तुम हा ! अहो !!॥४८॥

आप देवद्रव्य हड़प जाँय, आप को इसमें कुछ भी शर्म नहीं। आप मनुष्यों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करें कि वे मर जाँय या मृतप्राय हो जाँय, परन्तु यह भी आपके निकट कोई दुष्कर्म नहीं। लड़की अपनी इच्छा से किसी योग्य लड़के के साथ अपना संबंध स्वेच्छा से स्थापित करे या उसके संग चली जाय—यह कर्म तो आपके निकट गुण्डों का है और आप लड़की को बिना उसकी इच्छा के एक मात्र धन के बल से अपहरण कर लेते हैं—ऐसा करते हुये भी आप गुण्डे नहीं हैं।

फैले हुये अघचार के हा ! तात, जननी हो तुम्हीं;
अनमेल वृद्धिक प्रणय के भी हाय ! त्राता हो तुम्हीं।

बहु पाणि-पीड़िन भी तुम्हारा हाय ! पापी कर्म है;
हैं रो रहीं विधवा हजारों, पर न तुमको शर्म है ॥४६॥

इस प्रसारित हुये पापाचार के भी माता-पिता आप ही हैं, अनमेल और वृद्धविवाह के भी आप ही रक्षक हैं और बहु-विवाह भी आप ही को शरण पा रहा है। सहस्रों विधवायें रो रही हैं, परन्तु आपको लज्जा नहीं आती।

नव-नव तुम्हारी शादियें हों—मार पर मरता नहीं;
ये स्वत्व युवकों का हरो—तुमको न पर लज्जा कहीं।
लक्ष्मी ! अहो ! तुम धन्य हो !—हम रूप नाना लेखते;
रतिप्रेम भाभी, पुत्रवधु से हाय ! इनका पेखते ॥५०॥

आपके नव नव विवाह हो जाँय, फिर भी आपकी कामेच्छायें नष्ट नहीं होतीं। अनेक विवाह कर आप युवकों का अधिकार छीन रहे हैं, परन्तु आपको इसमें कुछ हिचकचाहट और लज्जा नहीं होती। लक्ष्मी ! तुम धन्य हो, हम तेरी लीला के अनेक रूप देखते हैं,—इन श्रीमंतों का भावजों और पुत्र-वधुओं से रतिप्रेम एक मात्र हे लक्ष्मी ! तेरे ही प्रताप के कारण हमको देखने को मिलता है।

हा ! जाति भूतल जा चुकी, श्रीमंत तुम ! क्या बच चुके;
पचाश प्रतिशत हाय ! तुम में दीन भिक्षुक बन चुके !
अब द्यूत, सट्टा, फाटका श्रीमंत के व्यापार हैं;
उद्योग, धंधे और सब इनके निकट निस्सार हैं !! ॥५१॥

श्रीमन्त ! आपका समाज पतित हो चुका। क्या समाज

के पतित होने पर भी आप रक्षित रह चुके हैं ? हाय ! श्रीमंत ! आप में ५० प्रतिशत दीन-हीन भिक्षुक बन चुके हैं। अब श्रीमंतों का व्यापार केवल सट्टा, फाटका और जूआ है। अन्य सब व्यापार-धन्धे इनकी दृष्टि में लाभ रहित हैं।

तुम कल्प तक में बंधुओ ! सट्टा न करना छोड़ते;
फिर औलियें तो वस्तु क्या ! बाकी न कुछ हा ! छोड़ते।
यदि दीपमाला-पर्व पर जो द्यूत क्रीड़ा हो नहीं—
हा ! अपशकुन हो जायँगे-श्री तुष्ट संभव हो नहीं ॥५२॥

पावन पर्वाधिराज पर्यूषणपर्व के कल्प दिवसों में भी ये श्रीमन्त सट्टे आदि बन्द नहीं करते हैं, तो फिर अन्य पर्व, औलियाँ आदि का इनके निकट मान ही क्या है ? अगर दीपावली महोत्सव पर ये श्रीमंत जूआ न खेलें तो इनकी दृष्टि में यह अपशकुन है और संभव है लक्ष्मी संतुष्ट न हो।

रसचार में, रतिवास में है दिन तुम्हारा जा रहा;
लेटे हुये हो महल में, तन में नशा है छा रहा।
शतरंज, चौपड़, ताश के अभिनय रसद हैं लग रहे;
किलकारियों से महल के छज्जे अहो हैं उड़ रहे ! ॥५३॥

आपका सर्व दिन आनन्द-भोग में और स्त्री निवास में व्यतीत होता है। प्रासाद में आप मद्यमस्त होकर लेटे रहते हैं। शतरंज, चौपड़ और ताश के आनन्ददायी कौतुक आपके समक्ष होते रहते हैं और मित्रों के कलनादों से प्रासादों के छज्जे उड़ते से रहते हैं।

१६

तुम साठ के हो पत्नि तो है आठ की भी हा ! कहीं;
तुमको सुतावत पत्नि से रतिचार में लज्जा नहीं।
श्रीमन्त हो, सरकार की भी है तुम्हें चिन्ता नहीं;
टुकड़ा अगर मिल जाय तो कुक्कुर न 'हूँ' करता कहीं ॥५४॥

श्रीमन्त । आप वय में साठ वर्ष के हैं और आपकी नववधु आठ वर्ष भी कठिन की है । पुत्री की वयवाली नववधु से कामक्रीड़ा करते आपको कुछ भी शर्म नहीं आती । आप श्रीमन्त हैं। सरकार की भी अतः आपको कोई भय नहीं । कुत्ते को अगर रोटी का टुकड़ा मिल जायँ तो कभी भी वह नहीं भूँकेगा ।

रति, रास, वैभव, ऐश में हो धन तुम्हारा खो रहे;
सत्कार्य में देते हुये हा कोड़ि कानी रो रहे ।
ऐसे धनी भी हैं कई, जो पेट भर खाते नहीं,
यदि मिल गई रोटी उड़द की, साग के पत्ते नहीं ॥५५॥

हे श्रीमंत ! आप का सर्व धन स्त्री-भोग-आनंद और विषय-रस में व्यय हो रहा है । सत्कार्य में आप एक कानी कोड़ी देते समय मर-से जाते हैं । आप में ऐसे धनी भी मिलेंगे जो इच्छा भर कभी भोजन भी नहीं करते और उन्हें अगर उड़द के आटे की बनी रोटी (जिसको मिर्च-मसाला डाल कर बनाया जाता है) मिल जाय तो वे साग भी न बनवायेंगे ।

तुम छोड़कर निज पत्नि को बाम्बे, सितारे में रहो;
हर ठौर तुमको पत्नि है, फिर व्यर्थ क्यों व्यय में रहो ।
उस ओर तुमको पत्नि है, इस ओर तुमको पुत्र है;
धनवृद्धि के यों साथ में बढ़ता रहता कलत्र है !!!॥५६॥

श्रीमंत ! आप अपनी पत्नि को छोड़कर बम्बई और सितारे में रहते हैं ! पत्नि को संग में रखने की आपके निकट कोई आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि आप श्रीमंतों को हर नगर, शहर में पत्नियें मिल जाती हैं और तब फिर पत्नि संग रखने का व्यय आप व्यर्थ क्यों सहन करें। उधर आपको थोड़े व्यय में पत्नियें मिल जाती हैं और इधर आपकी पत्नी भी संतानवृद्धि करती रहती है। आप बड़े भाग्यवान् है—धनवृद्धि के साथ में इस प्रकार वंशवृद्धि भी होती रहती है।

है कौनसा ऐसा व्यसन जिसका न तुमको रोग हो;
दुष्कर्म वह है कौन सा जिससे न कुछ संयोग हो।
था बहुत कुछ कहना मुझे, कहना न पर है आ रहा;
है दुर्व्यसन, दुष्कर्म में जीवन तुम्हारा जा रहा ॥५७॥

ऐसा कौन सा व्यसन है जिससे आपको अत्यधिक प्रेम न हो और ऐसा कौनसा दुष्कर्म है जिसकी क्रिया में आपका सहयोग न हो—मुझे आपको बहुत कुछ कहना था, परन्तु वह सब मुझको कहना नहीं आता (अतः संक्षेप में इतना ही समझिये कि) आपका समस्त जीवन दुष्कर्मों और दुर्व्यसनों में ही व्यतीत हो रहा है।

श्रीमंत हो, नहिं आपको तो क्षुब्ध होना चाहिए;
है नीति का यह वाक्य, निंदक निकट होना चाहिए।
आस्वाद भोगानन्द में तब तक तुम्हारी भक्ति है;
उद्धार संभव है नहीं—क्षय हो रही सब शक्ति है ॥५८॥

आप श्रीमंत (बड़े) हैं, क्रोध न करना चाहिए। वैसे नीति भी यही कहती है कि निंदक को सदा निकट रखना चाहिए। हे श्रीमंतो! जब तक रसभोग एवं वैभवलीला में आपकी आशक्ति है, तब तक कल्याण की कोई संभावना नहीं। आपकी सारी शक्ति शनैः शनैः नष्ट हो रही है।

यह मानना, अवमानना—इच्छा तुम्हारी आपकी;
माना न—आशातीत तो होगी बुरी गत आपकी।
यदि अब दशा ऐसी रही—जीने न चिर दिन पायँगे;
इतिहास से जग के हमारे नाम भी उड़ जायँगे ॥५९॥

हे श्रीमंत! आप मेरी संमति का मान करें अथवा अपमान यह आपकी इच्छा पर है; परन्तु इतना निवेदन और उचित है कि अगर आपने मेरे इस कथन को ठुकरा दिया तो आपकी भारी दुर्दशा होगी। यदि ऐसी ही दशा बना रही तो अब आप अधिक जीवित न रहने पायँगे और विश्व के इतिहास से हमारे नाम भी निकल जायँगे!

जितने कलह हैं जाति में इस भाँति से पुष्पित हुये,
घर, तीर्थ, मंदिर मोक्ष तक जिनके चरण लंबित हुये,
ये सांप्रदायिक रूप जिनके नित भयंकर हो रहे;
वे काम सब हैं आपके—बल आपके हैं हो रहे!! ॥६०॥

समाज में जितने भी झगड़े फैले हुये हैं और वे बढ़कर घर, तीर्थ,मंदिर मोक्ष विषयों तक पहुँच गये हैं—वे सब आपके कारण हैं। वे झगड़े इस प्रकार के भयंकर साम्प्रदायिक रूप
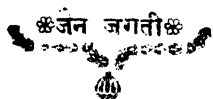
नित्य धारण कर रहे हैं। श्रीमंत ! ये सब काले कर्म आपके हैं और आपसे उनको बल मिल रहा है।

जिस ठौर पैसा चाहिए, तुमको न देना है वहाँ;
देना तुम्हें उस ठौर है, अति अधिक पैसा है जहाँ।
उपयोग करना द्रव्य का तुमको तनिक आता नहीं;
जब तक उपार्जन न्याय से होगा न, आवेगा नहीं ॥६१॥

जहाँ पैसा व्यय करना आवश्यक है, आप वहाँ पैसा व्यय न करके वहाँ व्यय करते हैं जहाँ प्रस्तुत में अति अधिक पैसा जमा है आपको किंचित मात्र की द्रव्य का उपयोग करना नहीं आता और यह तब तक नहीं आवेगा जब तक आपकी धन कमाने की क्रिया न्याय पूर्ण न होगी अर्थात् नीति और सिद्धांत यह कहते हैं कि सत्य की कमाई सत्य में ही व्यय होती है।

तन में कमी है रक्त की या मांस तन में है नहीं,
तुम रक्त कपि का चूसलो, इसमें तुम्हें कुछ है नहीं।
तुम जैन होकर यों अहिंसा धर्म का पालन करो;
धिक्कार तुमको लक्ष है, क्यों धर्म को श्यामल करो ॥६२॥

अगर आपकी देह में रक्त की कमी हो जाती है या मांस की कमी पड़ जाती है तो आप चिकित्सकों की संमति से बंदरों का रक्त चूसने में कोई हिचक नहीं खाते। आप जैन होकर इस प्रकार अहिंसात्मक जैन धर्म का पालन करते हैं—आपको लक्षों धिक्कार हैं, क्यों धर्म को कलंकित करते हो।

ऐसे हमें श्रीमन्त पर क्या गर्व करना चाहिए ?
शिल बाँधकर इनके गले जल में डुबोना चाहिए।

जिनके उरों में धर्म से सद्नेह कुछ रहता नहीं;
ऐसे जनों से जाति का सम्बन्ध भी रहता नहीं ॥६३॥

हे सज्जनों ! क्या ऐसे श्रीमन्त हमारे निकट अभिमान की वस्तु हैं। ऐसे श्रीमन्तों को तो यही उचित है कि उनकी ग्रीवाओं में शिलायें बाँधकर जलाशयों में डुबो दिया जायँ। जिन पुरुषों के मानसों में धर्म से कुछ भी राग नहीं रहता, ऐसे पुरुषों से समाज एव जाति का भी कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

ये दीन जायें भाड़ में, इससे उन्हें कुछ है नहीं;
ये पंक्ति में उनकी कहीं भी व्यक्ति कोई हैं नहीं।
धन-धान्य-सुखसम्पन्न हैं वे—क्यों किसीका दुख करें;
क्या दीन ने उनको दिया जो दीन का वे दुख हरें ॥६४॥

ये दीन व्यक्ति भले दुनियाँ से उठ जाय, इसकी श्रीमंतों को कोई चिंता नहीं। ये दीन श्रीमंतों की श्रेणी में कोई व्यक्ति नहीं हैं। श्रीमंत धन-धान्य से पूर्ण हैं और सुखी हैं, वे किसी दीन कीचिंता क्यों करे ! दीन व्यक्ति ने उनको क्या दिया कि जिससे वे उसका दुःख दूर करने के लिये प्रयत्न करें।

इनके भरोसे बैठना अब तो भयंकर भूल है;
क्या रोप देंगे जड़ हमारी ! – आप ये निर्मूल हैं।
बेड़ा हमारा पार क्या ये ही करेंगे—सच कहो;
हा ! हंत ! आया अंत तव ! अब है न संशय कुछ अहो ॥६५॥

अगर सज्जनों ! आप यह सोचते हैं कि ये ही श्रीमंत आपकी समाज का उद्धार करेंगे तो आप भारी भूल करते हैं। ये स्वयं

नष्ट हो रहे हैं, आपकी रक्षा फिर भला ये क्या करेंगे। बंधुओ। सच कहिए क्या आप यह विश्वास रख कर बैठे हैं कि ये श्रीमंत ही जाति की नाव पार उतारेंगे? अगर आपका ऐसा विश्वास है तो हा! हंत! अंत समय आगया! अब कोई शंका न रहो।

इनके वहाँ पर मान है श्रीमंत बिन होता नहीं;
धनहीन भाई को वहाँ दुत्कार है, न्योता नहीं।
हम किस तरह से हाय! इनसे तुम कहो आशा करें;
दुत्कार, ठोकर द्वार पर इनके सदा खाया करें? ॥६६॥

ये श्रीमंत श्रीमंतों का ही संमान करते हैं। निर्धन को इनके वहाँ पर कोई मान नहीं मिलता, उसका निरादर होता है। बंधुओ! आप ही बतलाइये, ऐसी स्थिति में हम निर्धन इन श्रीमंतों से क्या आशायें रक्खे? क्या आप यह कहते हैं कि फिर भी इनमें आशायें रख कर हम इनके द्वारों पर दुत्कार और ठोकरें नित्य खाते ही रहें।

श्रीमन्त की सन्तान

यह कौन हैं? नहिं जानते? श्रीमन्त की सन्तान हैं;
नङ्गे, निरक्षर, मूर्ख हैं; पाषाण, पशु, हतभान हैं।
अक्षर न सीखा बाप ने, अक्षर न सीखा आपने;
मर्याद है कुल की निरक्षरता, न छोड़ा आपने!! ॥६७॥

मित्र गण! आप! कौन हैं? क्या आप नहीं जानते हैं। आप श्रीमन्त कुमार हैं। आप नङ्गे हैं, निरक्षर हैं, मूर्ख हैं,

पाषाण हैं, पशु हैं और हतभान हैं। आप के पिता श्री ने भी एक अक्षर नहीं पढ़ा और आपने भी एक अक्षर नहीं सीखा है। आपके कुल की मर्यादा निरक्षरता है, उसको आपने नहीं तोड़ा है।

आलस्य, विषयानन्द के ये दुर्व्यसन के धाम हैं,
बढ़कर पिता से हो न सुत इनमें, न होता नाम है।
हैं अर्ध निन्द्रा में पड़े, हैं नाज-मुजरे ले रहे,
भार्या पड़ी विमुखा उधर, रस हैं इधर ये दे रहे !! ॥६८॥

आप ! आलस्यता के, विषय भोग के और दुर्व्यसनों के घर हैं। इन विषयों में जब तक पुत्र पिता से बढ़कर न निकले, तब तक गौरव ही क्या ? आप अर्ध निन्द्रित हैं, वैश्याओं के नाज और मुजरे ले रहे हैं। स्वपत्नि तो उधर (घर में) दुखित होकर मूर्च्छित पड़ी है, परन्तु आप इधर वैश्या को रस पहुँचा रहे हैं।

ये बोलने पर पत्नि के डण्डे बिना नहिं बोलते;
मृतप्राय जब तक हो न वह, तब तक न उसको छोड़ते।
हा ! हंत ! भावज पत्नि हैं, हा ! बहन के ये यार हैं;
ये भी विचारे क्या करें ! रतिभाव से लाचार हैं ॥६९॥

ये अपनी पत्नि से डण्डे बिना बात नहीं करते और जब तक वह अर्धमृत न हो जाय, तब तक उसको मुक्त नहीं करते। हा ! हंत ! आपकी भाभी आपकी पत्नि है, भगिनी के आप प्रेमी हैं। जब कामदेव आपको विवश करता है तो फिर आप भी क्या करें, इसमें आपका दोष ही क्या है ?

इनको न व्यय की है कमी, इनपर पिता का प्यार है;
भट, भाण्ड, भड़वे, धूर्त इनके मित्र-संगी-यार हैं।
शतरंज, जूआ, ताश के कौतुक अहिर्निश लेख लो;
कलकंठियों से गूँजते प्रासाद इनके पेख लो!! ॥७०॥

आप पर आपके पिता श्री का अपार स्नेह है, अतः आप को व्यय करने के लिये धन की कोई कमी नहीं। भट, भाण्ड, भड़वे और धूर्त आपके मित्र, सहचर और सखा हैं। आपके प्रासादों में रातदिन शतरंज, जूआ और ताशों के कौतुक होते रहते हैं और सुन्दरांगनाओं के कोमल स्वरों से प्रासाद गूंजित रहते हैं।

मेले, महोत्सव, पर्व पर इनके नज़ारे देखिये;
चल, चाल, नखरे, नाज़ इनके उस समय अवलोकिये;
हा! आर्य जगती! यह दशा हो जायगी, जाना न था;
होंगे पतित इतने तुम्हारे पुत्र यह जाना न था!! ॥७१॥

इन श्रीमंत कुमारों का वैभव देखना हो तो मेले, महोत्सव और पर्वों के अवसरों पर इनके रंग-ढंग देखिये। उन अवसरों पर इनके नाज-नखरे चल-चाल अवलोकनीय हैं। हा! आर्य जगती! यह स्वप्न में भी नहीं समझा था कि तेरी यह दयनीय अवस्था हो जायगी, तेरी संतान इतनी पतित हो जायगी।

पढ़ना-पढ़ाना सीखना तो निर्धनों का काम है;
सच पूछिये तो पठन-पाठन ब्राह्मणों का काम है।
होकर बड़े इनको कहीं भी नौकरी करनी नहीं;
तब श्रम वृथा फिर पुस्तकों में है इन्हें करनी नहीं!! ॥७२॥

ये श्रीमंतकुमार ऐसा समझते हैं कि पढ़ना-पढ़ाना तो निर्धनों का कर्म है और अगर अधिक सच पूछते हैं तो इनके निकट यह ब्राह्मणों का कर्म है। ये अति अधिक श्रीमंत हैं, इनको नौकरी करके जीवन-निर्वाह करने की आवश्यकता नहीं है, फिर व्यर्थ ही ये पढ़ने-पढ़ाने का परिश्रम क्यों करें।

यौवन जहाँ इनको हुआ, बस भूत मानों चढ़ गया;
प्रत्येक इनके अङ्ग में बस काम जाग्रत बन गया।
हर बात में, हर काम में बस काम इनको दीखता;
हा ! पत्नि, भावज, बहन में अंतर न इनको दीखता !!॥७३॥

इन श्रीमन्त कुमारों को युवावस्था के प्राप्त होते ही मद का भूत चढ़ जाता है। इनके अङ्ग-अङ्ग में कामदेव जाग्रत हो जाता है। प्रत्येक विषय में, प्रत्येक कर्म में इनको कामदेव के ही दर्शन होते हैं। हा ! इनकी कामेच्छायें इतनी तीव्र हो जाती हैं कि इनको अपनी भार्या, भाभी और भगिनी में भी कुछ अंतर प्रतीत नहीं होता।

ये हैं कलाविद् गीत के, नर्तनकला आती इन्हें;
रचते इन्हें रतिस्वांग लज्जा है नहीं आती इन्हें।
लेकर प्रिया ये संग में नाटक-सिनेमा देखते;
तात्पर्य मेरा है यही—जग काम मय ये लेखते !!॥७४॥

ये श्रीमंत कुमार संगीत विद्या के पंडित हैं, नृत्यकला विशारद हैं और स्त्री का वेष धरने में इनको कुछ भी हिचक नहीं। प्रियतमा को संग लेकर नाटक-सिनेमा देखते फिरते हैं।

इतना लिखने का अर्थ यही है कि इनकी दृष्टि में यह समस्त संसार कामदेवमय है।

क्षण मात्र में तुम देख लो इनकी जवानी सो गई;
वे दिन बसंती अब नहीं, पतझड़ इन्हें है हो गई।
वे नाज-मुजरे मर गये, सहचर मरे सब साथ में;
धन-मान-पत सब उड़ गये, भिक्षा रही है हाथ में !!॥७५॥

बन्धुओ! अवलोकिये! इन श्रीमंतकुमारों की वह तूफानी युवावस्था क्षण मात्र में निकल गई, वे वसंतीदिवस चले गये; अब तो इनको पतझड़ ऋतु है वे प्रेमी और प्रेमीकाओं के नाज और मुजरे भी अब नहीं रहे और न कोई संगी ही रहा। धन, प्रतिष्ठा और विश्वास सब विनष्ट हो गये। एक मात्र भिक्षा हाथ में रह गई।

इनके परन्तु महापतन का मूल झर झरता कहाँ?
चटशाल जाने से इन्हें थी रोकती माता जहाँ।
ऐसे पिता-माता महारिपु हैं, उन्हें धिक्कार है;
क्या नाथ! यह सब आपको अब हो रहा स्वीकार है?॥७६॥

परन्तु यह देखना चाहिये कि इन श्रीमन्तकुमारों का यह महापतन कहाँ से प्रारंभ होता है। मेरे विचार में जहाँ इनकी मातायें इनको विद्यालय में पढ़ने जाने से निरुत्साही करती थीं और रोकती थीं, वहाँ से ही इनका पतन आरंभ होता है। ऐसे मातापिता शत्रु हैं, उनको धिक्कार है। हे परमात्मन्! क्या ये सब दयनीय बातें आपको भली तो लग रही हैं?

नैया हमारी ये निकालेंगे भँवर से क्या ? कहो !
क्या बुद्धि पर शिल पड़ गये ? हा! बक रहे हो क्या? अहो!
इस भाँति की संतान से उत्थान क्या हो जायगा ?
हो जायगा—इनका नया यदि जन्म जो हो जायगा ॥७७॥

हे बंधुओ ! क्या ये ही श्रीमन्तकुमार समाज की डूबती नाव को तैरावेंगे ? क्या व्यर्थ की बातें कर रहे हैं; अपकी मति पर पत्थर तो नहीं पड़ गये ? ऐसी संतान से क्या उन्नति कभी संभव है ? यह संतान समाज की उन्नति तब कर सकेगी, जब इसका फिर से नया जन्म होगा ।

निर्धन

हे जाति ! तेरी हाय ! यह कैसी बुरी गत हो गई !
हा ! चन्द्रिका से क्यों बदल काली अमा तू हो गई !
हे बंधुओ ! यह क्या हुआ ! क्या तुम न चेतोगे अभी!
हे नाथ ! दिन वे चन्द्रिकायुत क्या न लौटेंगे कभी !!॥७८॥

हे जति ! तेरी यह अवदशा किस प्रकार हो गई । तेरा वह ज्योत्स्ना-भरा रूप अमावश्या-सा काला कैसे हो गया ? हे भ्राताओ ! यह क्या हो गया ? क्या आप को अब भी संचेतना न आवेगी । हे भगवान् ! हमारे वे ज्योत्स्ना-भरे दिन फिर लौट कर क्या नहीं आवेंगे ?

पच्चास प्रतिशत पूर्व निर्धन हूं तुम्हें मैं कह चुका ;
पर दैन्य, क्रन्दन, दुर्दशा का कुछ न वर्णन कर सका !

कहने लगा अब हाय ! क्या आवाज तुम तक आयगी
प्रासादमाला चीर कर क्या क्षीण-लहरी जायगी !! ॥७९॥

हे बंधुओ ! यह पूर्व ही बतला चुका हूँ कि आप में पच्चास प्रतिशत मनुष्य निर्धन हैं । परन्तु उन निर्धनों की दयनीय दशा का, उनके करुणक्रंदन का कुछ भी वर्णन नहीं कर सका । वह वर्णन अब करने बैठा हूँ । क्या मेरी आवाज आप तक पहुँच सकेगी ! क्या महालयों की श्रेणी को चीर कर मेरी अशक्त ध्वनि आपके कर्णों तक पहुँच पायगा ?

ये भी कहाते सेठ हैं, पर पेट भरता है नहीं ;
स्वीकार इनको मृत्यु है, दैन्यत्व स्वीकृत है नहीं ।
निर्लज्ज होकर तुम मरो, ये लाज से मरकर मरें ;
तुम अधिक खाकर के मरो, हा! ये क्षुधित रहकर मरें!! ॥८०॥

वैसे तो ये निर्धन बन्धु भी सेठ कहलाते हैं, परन्तु इनका उदर भरना भी अति हो रहा है । ये मरना स्वीकृत करेंगे, लेकिन इनको दीनता प्रकट करना स्वीकृत नहीं । आप निर्लज्ज होकर अपना जीवन समाप्त कर रहे हैं, और ये आपके बन्धु-गण लाज के मारे मर रहे हैं । आप अधिक खाकर मर रहे हैं और ये भूखे मर कर मर रहे हैं ।

जिस जाति में श्रीमंत हो—कैसे वहाँ धनहीन हों ;
दयवंत हो धनवंत यदि—कैसे वहाँ पर दीन हों ।
मनहंत पर इस जाति श्रीमंत जन हैं दीखते ;
फिर क्यों न निर्धन बंधु उनके ठोकरों में लीखते !! ॥८१॥

जिस जाति में धनाढ्य पुरुष हों, उस जाति में धनहीन पुरुषों का होना आश्चर्य की बात है यदि धनाढ्य सहृदय पुरुष हों तो कोई भी व्यक्ति वहाँ दीन मिल ही नहीं सकता। परन्तु इस जाति के श्रीमंतजन सहृदय नहीं हैं, फिर क्यों न उनके निर्धन भाई ठोकरों में दलित होते हुये दिखा दें।

कहते इन्हें भी सेठ हैं, औ शाहपद अभिराम है,
बक्काल, बणिया, वणिक भी इनके भले उपनाम हैं।
क्या अर्थ है श्रीमन्त को इस ओर क्यों देखें भला,
देखें अगर वे कुछ इधर-छू-मन्त्र हो जावे बला ॥८२॥

इन निर्धन बन्धुओं को भी सेठ कहा जाता है और इनको 'शाह' की उपाधि भी है। बक्काल, वणिया और वणिक जैसे क्षुद्र ध्वनि वाले शब्दों से भी इनको ही संबोधित किया जाता है। श्रीमन्त को क्या प्रयोजन है कि वे इस प्रकार से होते हुए, बढ़ते हुए इनके तिरस्कार एवं अपमान के प्रति ध्यान दें। अगर श्रीमन्त जन इस ओर तनिक भी दृष्टि कर लें तो इनकी यह दयनीय स्थिति क्षणमात्र में विलीन हो जाय।

श्रीमन्त के आराम ये दीन ही दृढ़ धाम हैं;
उनके मनोरथ काम के सब भाँति ये तरु काम हैं।
इस हेतु ही संभव इन्हें वे हीन रखना चाहते;
दे नीम इनकी—महल की मंजिल उठाना चाहते ॥८३॥

श्रीमन्त जनों का वैभव इन दीनों पर ही तो आश्रित है। उनकी कामनाओं को कल्पवृक्ष के समान सदा पूर्ण करने वाले

ये दीन ही हैं। संभव है, इसी कारण से अगर श्रीमन्त इन निर्धनों को कंकाल रखना चाहते हो तो कोई आश्चर्य नहीं। श्रीमन्त अपने वैभव-भवन की नीम में दीनों को पाट कर दूसरी मंजिल उठाते हैं।

निर्धन किसी भी एक दिन श्रीमन्त यदि बन जायँगे;
दश-पाँच कन्या का हरण श्रीमन्त फिर कर पायँगे?
बालक कुँवारे निर्धनों के आयु भर फिरते रहें!
उस ठौर नव-नव पाणि-पीड़न शाह जी करते रहें! ॥८४॥

यदि किसी एक दिन परमात्मा की अनुकंपा से ये दीन, निर्धन बन्धु श्रीमन्त हो जावें तो क्या ये श्रीमन्त इस प्रकार पाँच-पाँच, दश-दश कन्याओं का अपहरण कर सकते हैं? निर्धन युवक, हम देखते हैं आयु भर अविवाहित फिरते हैं और इन श्रीमन्तों के नव-नव विवाह हो जाते हैं।

फिर क्यों न कर ये क्रय सुता का पीत कर सुत के करें?
निर्वंश होते मनुज कहिये क्या न फिर अनुचित करें?
इस पाप के विस्तार के श्रीमंत ही अवतार हैं;
श्रीमन्त संयम कर सकें—नाव फिर तो पार है ॥८५॥

इस स्थिति में, बन्धुओ! आप ही बतलाइये, निर्धन मनुष्य फिर क्यों न कन्याविक्रय करेंगे। जब उनका वंश ही निर्मूल होता दिखाई देता हो तो फिर कौनसा अनुचित कर्म वे करने में हिचकावेंगे। इस बढ़े हुये पापाचार के प्रवर्तक ये श्रीमंत जन

हैं। अगर आज ये संयम धारण कर सकते हो तो समाज की डूबती नाव किनारे लग सकती है।

क्या अन्य कार्याभाव में व्यापार यह अनिवार्य है?
अतिरिक्त इसके निर्धनों को क्या न दूजा कार्य है?
क्यों बेचकर तुम भी सुता को पुत्र की शादी करो;
हा! क्यों न तुम निर्धन मनुज मिलकर सभी व्याधी हरो॥८६॥

निर्धन मनुष्य के निकट धन के अभाव के कारण कोई भी व्यापार व्यवसाय संभव है न रह जाता हो, परन्तु क्या यह उचित है कि अगर निर्धन धनाभाव के कारण कोई धंधा न कर सके तो यह कन्याविक्रय का धंधा उसके लिये करना अनिवार्य्य हो जाता है। निर्धन बंधुओ! आप कन्या को बेचकर पुत्र का विवाह क्यों करते हैं? आप सब निर्धन मिलकर एक संघ और विधान क्यों नहीं बना लेते? ऐसा करके आप इस संकट को क्यों नहीं दूर करते हैं?

होते हुये तुम युक्ति के यदि हो सुता फिर बेचते;
धिक्! धिक्! तुम्हें शतबार है! आमिष सुता का बेचते!
रे! पुरुष का पुरुषार्थ ही कर्तव्य, जीवन, धर्म है;
चीर कर विपदावरय को पार होना कर्म है॥८७॥

अन्य उपाय होते भी अगर आप कन्या-विक्रय करते हैं तो आपको सहस्रों बार धिक्कार हैं। पुरुष का पुरुषार्थ ही जीवन हैं, धर्म है और कर्तव्य है। विपत्तियों के हटाने में ही मनुष्य का मनुष्यपन है।

श्रीमंत का ही दोष है - ऐसा न भाई ! जानिये ;
अस्सी टका अपने पतन में दोष अपना मानिये ।
तुम चोर हो, मक्कार हो, झूठे तुम्हारे काम हैं ;
बक्काल, वणिया, मारवाड़ी ठीक ही तो नाम हैं ॥८८॥

आपकी इस दयनीय स्थिति की स्थिरता के मूल एवं सर्व कारण ये श्रीमंतजन ही हैं, ऐसी नहीं कहिये । आप स्वयं अपनी इस दारुण दशा के अस्सी प्रतिशत उत्तरदायी हैं । आप चोर हैं, धूर्त हैं और झूठ व्यवसायी हैं । इस दृष्टि से आपके बक्काल, वणिया और मारवाड़ी नाम उपयुक्त ही हैं ।

श्रीमंत जैसी आय तुमको जब नहीं है हो रही ;
श्रीमंत की फिर होड़ करने की तुम्हें लग क्यों रही ।
प्रतियोगिता के फाँस में बुलबुल तुम्हारी फँस गई ;
सब पंख उसके कट गये, सारी बदन में छिल गई ॥८९॥

हे निर्धन बन्धुओ ! जब श्रीमंतों के समान आपकी आय नहीं है फिर आप उनकी व्यय में समानता क्यों करने की चेष्टा करते हैं ? श्रीमंतों के साथ आप इस प्रकार की प्रतियोगिता में ऐसे बुरे फँस गये हैं कि अब मुक्ति भी कठिन प्रतीत होती है और आप इतने अशक्त हो चुके हैं कि अब आपमें संभलने की भी शक्ति नहीं रही है ।

था एक दिन ऐसा कभी—हममें न कोई दीन था ,
पुरुषार्थ-प्राण थे सभी-सकता नहीं मिल हीन था ।
पर आज हमको पूर्व भव तो भूल जाना चाहिए ;
संपन्न होने की हमें कुछ युक्ति गढ़ना चाहिए ॥९०॥

१७

वह भी एक समय था जब हम सबके सब संपन्न और पुरुषार्थी थे हमारे में कोई भी व्यक्ति दीन-हीन नहीं था। उन बातों का अब हम दुःख करना भूल जायँ और कुछ ऐसा उपाय करें कि फिर सभी संपन्न और सुखी हो जायें।

साधु-मुनि

जबविश्व भर के साधुओं को देखते हम आज हैं;
आदर्श तब तो साधु-मुनि फिर भी हमारे आज हैं।
तप, त्याग, संयम, शील में अब भी न इनके सम कहीं;
कुछ एक ऐसे भी श्रमण हैं, अपर जिनके सम नहीं ॥६१॥

जब हम संसार भर के सर्व मतों के साधु और मुनियों से हम हमारे साधु मुनियों की तुलना करते हैं, तब तो हमारे साधु-मुनि इस गिरती हुई दशा में भी आदर्श हैं। तप, त्याग, संयम और शील में हमारे साधु समाज के समान अब भी अन्य किसी मत का साधु समाज नहीं निकलेगा और हमारे कुछ एक साधु-मुनि तो इतने आदर्श हैं कि अन्य साधुसमाज का कोई भी साधु जिनकी समता में नहीं आ सकता।

पर वेषधारी साधूओं की भूरि संख्या हो गई;
सद् साधु की आदर्श बस यों ज्योति तम में खो गई।
सद् साधु तो मेरे कथन से रुष्ट होने के नहीं;
औ नाम धारी साधु से कुछ भीति मुझ को रे। नहीं ॥६२॥

परन्तु फिर केवल वेषधारी साधुओं की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि आदर्श साधु अगर कोई है भी तो दिखलाई
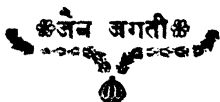
ही नहीं पड़ता जैसे घने अंधिकार में कोयला और रत्न कठिन तया पहिचान ने में आते हैं। आदर्श साधु तो मेरे वर्णन से कभी भी क्रोधित नहीं हो सकते और मात्र वेषधारी ठग-साधुओं से मुझको कोई भय नहीं।

वंदन तुम्हें शतवार है, तुम धर्म के पतवार हो।
पर वेषधारी साधुओं ! तुम आज हम पर भार हो।
तुमने उठाया था हमें, तुमने चढ़ाया है अहो।
क्यों आज शिल पर शृंग से तुमने गिराया है, कहो ?॥६३॥

हे साधु-मुनि ! आपको सैकड़ों प्रणाम हो। आप हमारे धर्मनाव के पतवार हैं। परन्तु, हे वेषप्रियसाधुओ ! आज आप हमारे पर भार स्वरूप हैं। एक समय था जब कि आपने इस समाज को उठाया था और उन्नति के इतने ऊंचे शृंग पर चढ़ाया था। आज आपने उसी समाज को उन्नति के उस ऊंचे शृंग से तलहटी पर पड़ी शिला पर क्यों ढ़केल दिया ?

क्यों श्रावकों के दास गुरुवर ! आप यों हैं हो गये ?
क्यों त्याग-संयम शीलवित् होकर अनाड़ी हो गये ?
हमको लड़ाना ही परस्पर आपका अब काम है !
मिलने न पावें हम कभी, यह आपका मुख काम है !! ॥६४॥

हे गुरुदेव ! आप श्रावकों के अनुचर कैसे हो गये ? आप तप, त्याग, संयम के धनी होकर इतने पतित कैसे हो गये ? गुरुदेव ! हम श्रावकबन्धुओं को परस्पर लड़ाना ही अब आपका काम रहा है और हम परस्पर स्नेहपूर्वक कभी नहीं मिलने पावें—यह अब आपका मुख्य कर्म रहा है।

अब साधु तुम हो नाम के, वे साधु अब तुम हो नहीं !
हा ! साधु गुण तुम साधु में अब देखने तक को नहीं !
तुम क्रोध के अवतार हो, तुम मान के भण्डार हो !
संसार मायामय तुम्हारा, लोभ के आगार हो ! ॥६५॥

अब आप वे साधु (पूर्व साधुओं के प्रति संकेत है) नहीं हैं। नाम-मात्र के साधु हैं। साधु का एक भी गुण दिखलाई देने मात्र को भी आप में नहीं है। आप क्रोधी, मानी, लोभी और मायाप्रिय परले किनारे के हैं।

भगवान-पद के प्राप्ति की इच्छा उरों में जग गई;
सम्राट-पद पाकर तथा इच्छा ठिकाने लग गई।
भगवान हो, सम्राट हो, तुम जगद्गुरू आचार्य हो।
भगवान पर कर लग रहे, भगवान् कैसे आर्य ! हो ! ॥६६॥

अब आपमें अपने नामों के साथ 'भगवान' शब्द जोड़ने की तीव्र इच्छायें जगी हुई हैं। सम्राट (आचार्यसम्राट) 'शब्द' जोड़ने से आपके सर्व मनोरथ क्या पूर्ण हो गये ? थोड़े समय के लिये हम यह भी मान लेते हैं कि आप भगवान हैं, सम्राट हैं, जगद्गुरू हैं और आचार्य हैं; परन्तु यह बतलाइये, इधर आप भगवान, सम्राट बनकर विराजमान हैं और उधर भगवान की मूर्तियों के दर्शनों पर कर लगे हुये हैं। हे आर्य ! आप कैसे भगवान हैं ?

मुनिवेष धरने से कहीं मन साधु होता है नहीं;
जैसा हृदय में भाव है—बाहर झलकता है वहीं।
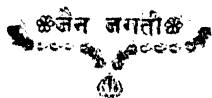
तपप्राण, त्यागी साधु तुम में बहुत थोड़े रह गये ;
भरपेट खाकर लौटने वाले सभी तुम रह गये ॥ ९७ ॥

केवल साधु का वेष धारण करने से मन साधु नहीं बन जाता। हृदय में जैसे भाव होंगे, बाहर वैसे ही प्रकट रूप में आवेंगे। अब आप में गुरुदेव ! त्यागी और तपस्वी साधु बहुत कम रह गये हैं। अब अधिक संख्या अधिक भोजन करके सोने वालों की है।

गिरते न गुरुवर ! आप यों—अज्ञान हम होते नहीं।
धन, धर्म, पत, विश्वास खोकर आज हम रोते नहीं।
अभिप्राय मेरा यह नहीं, सब आपका ही दोष है ;
कुछ काल का, कुछ आपका औ कुछ हमारा दोष है ॥९८॥

गुरुदेव ! अगर आप इतने पतित नहीं होते तो हम भी जो आपके अनुवर्ती हैं, इतने अज्ञान आज नहीं होते; धन, धर्म, मान और विश्वास खोकर हम आज हाथ मलते नहीं रह जाते। परन्तु इस सब का यह अर्थ नहीं कि हमारे इस पतन में सब दोष आपका ही है, नहीं; कुछ काल का दोष है, कुछ आपका दोष है और कुछ हमारा दोष है।

साध्वी

हे साध्वियो ! वन्दन तुम्हें यह भक्त दौलत कर रहा ;
पर देख कर जीवन तुम्हारा हाय ! मन में कुढ़ रहा।
आत्माभिसाधन के लिये संयम लिया था आपने ;
संयम, नियम को भूल कर, कर क्या दिया यह आपने ॥९९॥

हे साध्वी महाराज! आपको मेरा नमस्कार हो। परन्तु आपका यह पतित जीवन देखकर मेरा हृदय अति दुःखी हो रहा है। आपने आत्मकल्याण करने के लिये यह साधुव्रत ग्रहण किया है लेकिन संयम, नियमों को विस्मृत कर आपने यह क्या कर डाला ?

तुममें न गृहणी में मुझे अन्तर तनिक भी दीखता;
वह मोह-माया-जाल मुझको आप में भी लीखता।
तुम छोड़कर नाते सभी नाते सभी विध पालती;
सम्यक्त्व आर्ये! भूलकर संमोह हर विध पालती ॥१००॥

हे साध्वी महाराज! मुझको आप में और एक गृहस्थ स्त्री में कुछ भी अंतर नहीं दिखलाई पड़ता। आप भी मोह, माया और अनेक झंझटों में फँसी हुई दिखलाई पड़ती हैं। आपने यद्यपि संसार से अपना सर्व प्रकार संबंध तोड़ दिया है, परन्तु फिर आप उससे अपना सर्व प्रकार का सम्बन्ध निबाह रही हैं। हे आर्ये! आप सम्यक्त्व को ठुकरा कर मोहादि विषयों को हर प्रकार से पाल रही हैं।

तुम पति विहीना नारियों की दृढ़ चमू है बन गई;
अथवा व विधवा नारियों की अलग परिषद् बन गई।
परिषद्, चमू तो देश के रक्षार्थ आती काम है;
वक्तव्य, यह क्या कह गया? इनको अमर विश्राम है॥१०१॥

हे साध्वी महाराज! यह साध्वीसमाज आप स्त्रियों की, जिनको पतियों ने घर से तिरस्कृत कर बहिष्कृत कर दिया है,

एक सुदृढ़ सैना बन गई है या विधवा स्त्रियों ने अपना अलग समाज स्थापित किया है। समाज और 'सैना तो देश के हित काम आती है। क्षमा करिये! यह मैंने क्या कह डाला। आपने तो वस्तुतः संसार से विश्राम ग्रहण किया है।

तुममें न कोई पंडिता, विदुषी मुझे हैं दीखती!
जैसी चली गृहवास से, वैसी अभी हैं लीखती!
आर्या कहाती आप हैं, आर्यत्व तुम में हैं कहाँ!
तुममें अनाथा, भिक्षुकी में कुछ नहीं अंतर यहाँ!! ॥१०२॥

आप में मुझको एक भी साध्वी ऐसी नहीं दिखाई देती जो पंडिता और ज्ञाता हो। आप ठीक वैसी ही अब हैं जैसी आप पति का घर छोड़ते समय थीं। आप कहाती तो आर्या हैं; परन्तु वह आर्य भाव आप में कहाँ है? मुझको तो आप में और एक अनाथा भिक्षुकी में कोई भी अंतर नहीं दिखाई देता।

धन, मान;, परिजन, गेह, पति-त्यक्त तुम होकर चुकी;
उर में भजन पर है वही—स्वाहित स्वकर से कर चुकी!
अवकाश पर भी धर्म की चर्चा तुम्हें भाती नहीं;
घरवास के अतिरिक्त बातें हा! तुम्हें आती नहीं!! ॥१०३॥

आप परिवार, संपति, मान, घर और पति से अपना संसारिक संबंध का विच्छेद कर चुकी हैं, परन्तु फिर भी आपके हृदय में उन्हीं का भजन रहता है। दुःख की बात है आप घर छोड़ कर फिर भी इस प्रकार घर के प्रति ही अनुरक्ता हैं;आपने अपना सर्वनाश कर डाला; न आत्म कल्याण ही कर

सकीं और न घर की ही रहीं। अवकाश के समय भी आपको धर्म चर्चा करना अच्छा नहीं लगता। पति-पत्नि से संबंध रखने वाली बातों के अतिरिक्त आपको कुछ और नहीं आता।

लड़ने लगो जब तुम परस्पर वह छटा तो पेख्य है!
को दण्ड हैं डण्डे तुम्हारे, पात्र शर सम लेख्य है!
कर-पाद भी उस काल में देते गदा का काम है!
मुख-यंत्र की तो क्या कहूँ?—वह तो कला का काम है!! ॥१०४॥

आप जिस समय साध्वी-साध्वी परस्पर लड़ने लगती हैं, वह शोभा तो एक अति दर्शनीय है। दण्डे धनुष हैं, पात्र तीर हैं। लड़ते समय आप डण्डों को धनुष के समान आड़ा तान कर पात्रों को तीर के समान उस पर होते हुये अपने पतिपक्षी पर फेंकती हैं। डण्डों और पात्रों के टूट जाने पर फिर आप अपने हाथ और पैरों से भीम की गदा का काम लेती हैं। मुख-यंत्र की तो महिमा ही अवर्णनीय है। वह तो कला का अद्भुत काम है तो देखते ही बनता है।

संयमव्रता इन साध्वियों का यह पतन! हा! हंत! हा!
कह कर चली थीं मोक्ष की जो, तपन में भी हैं न हा!!
श्री संघ को इस भाँति से विभु! भग्न करना था नहीं।
नग्नत्व का जैनत्व में से भाव हरना था नहीं!! ॥१०५॥

इन संयम ली हुई साध्वियों का यह अधःपतन है भगवन्! असहनीय है। हा! हमारा सर्वनाश हो गया! ये साध्वियें पति का घर छोड़ते समय यह प्रतिज्ञा करके चली थीं कि हम
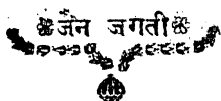
मोक्षसाधन करेंगी, लेकिन देखते हैं यह तो सातवें नरक के भी योग्य तो नहीं हैं। इतना इनका पतन हो गया है कि इनको तपन जैसे घोर नरक में स्थान नहीं मिलेगा। हे परमात्मन्! श्रीसंघ का इस प्रकार तो पतन करना उचित नहीं था। जैनत्व में से नग्नत्व अर्थात् निर्लेप निर्मोह भाव को नहीं निकालना था। जैनत्व में से अगर सत्यतत्व निकल जाय तो वह जौ का भूषा रह जायगा।

श्रीपूज्य-यति

श्रीपूज्य, यति जिनका अधिक सम्राट से भी मान था,
किस भाँति अकबर ने किया यतिहीर का संमान था।
पर आज ऐसे गिर गये ये—पूछना कुछ है नहीं,
अब दोष—आकर हैं सभी—वह त्याग-तपबल है नहीं ॥१०६॥

एक समय था जब ये श्री पूज्य और यतिगण सम्राट से भी अधिक माने जाते थे। प्रसिद्ध बादशाह अकबर ने जो विजय हीर सूरीश्वर जी महाराज का संमान किया, उनके आदेशों और उपदेशों का पालन किया इतिहास इसका साक्षी है। परन्तु आप ये इतने पतित हो गये हैं, कि कुछ कहने की बात नहीं! अब ये सर्व अवगुणी और दोषी हैं। वैसा त्याग और तप अब इनमें नहीं है।

अनपढ़ तथा ये मूर्ख हैं, औ घोर विषयासक्त हैं।
भंगी, भंगेड़ी, कामरत नर आज इनके भक्त हैं।

दुर्यंत्र-मंत्र कुतंत्र में श्रीपूज्यपद अब रह गया।
नारीजगत इस जाल में फँस कर तहाँ ही रह गया ॥ १०७ ॥

ये श्रीपूज्य और यतिगण सब के सब इस समय अपढ़ हैं, निर्बुद्धि हैं और घोर विषयी और व्यशनी हैं। इनके भक्त भी अब भङ्गी भंगेड़ी (भंग पीने वाले) और कामी मनुष्य होते हैं। ये श्रीपूज्य और यति अब यंत्र-मंत्र और तंत्र का ही एक मात्र कार्य करते हैं और इस प्रकार स्त्रीसमाज को आकृष्ट कर अपनी कामलिप्सायें शांत करते हैं। स्त्री जगत इनके इस मोहनी जाल में ऐसा फँस गया है कि हिल भी नहीं सकता है।

कुलगुरु

ये आज कुलगुरु सब हमारे दीन, भिक्षुक हो गये।
हो क्यों न भिक्षुक, दीन विद्याहत जब ये हो गये।
ये पड़ गये सब लोभमें, व्यसनी, रसिक से हो गये।
आदर्श कुलगुरु अब अतः हैं भृत्य देखो हो गये ॥१०८॥

आज हमारा कुलगुरु समाज भी दीन और भिक्षुक है। यह समाज दीन और भिक्षुक क्यों न होवे जब इसके पूज्य व्यक्ति विद्याहीन हों। यह समाज भी व्यसनों में, लोभ में, रसानंद में पड़ गया है। आदर्श समझे जाने वाले हमारे कुलगुरु आज देखिये नौकरों जैसी चेष्टायें करते हैं।

———

तीर्थस्थान

ये तीर्थ मंगल-धाम हैं, ये मोक्ष की सोपान हैं;
उन पूर्वजों की तप-तपस्या, मुक्ति के ये स्थान हैं।
अपवर्ग साधन के जहाँ होते रहे नित काम हैं;
अब लेख लो, होते वहाँ रस चार के सब काम हैं!!॥१०६॥

ये तीर्थस्थान मंगलगृह एवं मोक्ष मार्ग हैं; पूर्वजों की तपोभूमि हैं, मुक्तिस्थल हैं अर्थात् उन पर अनेकों केवल ज्ञानियों ने मुक्ति प्राप्त की है। इन तीर्थस्थानों में आदि से मोक्ष प्राप्ति के ही पुण्यकर्म होते रहे हैं, आज इन्हीं तीर्थों में इस लोक के आनंददायी कार्य होते हैं।

रस-भोग-भोजन के यहाँ अब ठाट रहते हैं सदा!
गुण्डे दुराचारी जनों के युत्थ फिरते हैं सदा!
मेलादि जैसे पर्व पर होती बसंती मौज है!
सर्वत्र मधुबन बीथियों में प्रेयसी-प्रिय खोज है!! ॥११०॥

अब इन तीर्थस्थानों में विशाल भोजनों का, वैभवपूर्ण भोग और व्यवहारों का ही आयोजन सदा रहता है, गुण्डों के तथा कुकर्मियों के झुण्ड चक्कर लगाते रहते हैं, मेले, महोत्सवों पर तो एक विशेष रसदायी छटा छट जाती है। ऐसे पर्वों पर (यह देखा जाता है कि) प्रिय और प्रेयसी के संमिलन तीर्थों के सर्वस्थल में सुलभ और सुविधतया होते हैं।

प्रतिवर्ष लक्षों का वृथा धन खर्च इनमें हो रहा!
हा! देवधन काम यों लक्षों जनों का हो रहा!

अति व्यय कलह वैषम्य के अब तीर्थ मेले मूल हैं !
पर न इनकी भूल है, इसमें हमारी भूल है ॥१११॥

इन तीर्थों में प्रतिवर्ष लक्षों रुपयों का धन व्यर्थ व्यय किया जा रहा है। इस प्रकार अति व्यय कर लक्षों मनुष्य देवधन खाने का अवसर प्राप्त कर रहे हैं और आनन्द भोग कर रहे हैं। वस्तुतः अब इन तीर्थ स्थलों में होने वाले मेले महोत्सव ही अति व्यय, झगड़े और फूट के कारण हैं। परन्तु बन्धुओ ! इसमें इन तीर्थ स्थलों का अपराध नहीं है, हमारा अपराध है।

जब देखते हैं नेत्र इनको बूँद सब पड़ती अहा !
अब ये तपोवन हैं नहीं, जगता मनोभव ही यहाँ।
अब दर्श भी बिन शुल्क के भगवान के संभव नहीं !
अब ईशके दरबार में उत्कोच बिन अवसर नहीं !! ॥११२॥

इन तीर्थों की यह पतितावस्था देखकर अश्रु बह चलते हैं। अब ये तीर्थ वे तपोभूमि नहीं रहे अब तो यहाँ आने पर कामदेव जाग्रत होता है। विशेष फिर यह हुआ कि अब बिना कर दिये भगवान् के दर्शन भी नहीं करने दिये जाते। हा ! अब तो ईश्वर के दरबार में भी घूँस बिन किसी का प्रवेश नहीं ।

मन्दिर और पुजारी

मन्दिर न अब इनको कहो, नहिं ईश के आवास हैं।
पण्डे-पुजारी ईश हैं, दर्शक विचारे दास हैं।
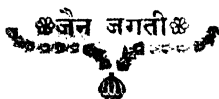
अड़ना, अकड़ना, डाँटना, इनके सदा के काम हैं।
बस माल खाना, मस्त रहना, लोटना अभिराम हैं ॥ ॥११३॥

अब इन चैत्यालयों को मन्दिर मत कहो, ये अब ईश्वर के घर नहीं रहे। इन मन्दिरों में अब पण्डे और पुजारी ईश्वर तुल्य हैं और दर्शकगण दासतुल्य हैं। पण्डे और पुजारियों का दर्शकों से अड़ना, अकड़ना और उनको डाटना अब इन मन्दिरों के नित्यकर्म हैं। इन मन्दिरों की सेवा-पूजा और व्यवस्था करने वालों के निकट अब मिष्टान्न उड़ाना, मदमस्त रहना और गद्दी तकियों पर लोटते रहना ही सुन्दर है।

सौंदर्य के प्यासे दृगों के खूब लगते ठाट हैं।
ये ईश के आवास अब सौंदर्य के ही हाट हैं।
हा! ईश के आवास में होती अनङ्गोपासना।
प्रत्यक्ष अब इन मंदिरों में दीखती दुर्वासना !! ॥११४॥

अब इन मन्दिरों में परमहंस भक्तों का आवागमन न होकर सुन्दरता के प्रेमी नेत्रवालों का झुरमुट-सा लगा रहता है। वस्तुत अब ये ईश्वरालय सुन्दता की दुकाने ही हो गई हैं। अर्थात् आशय यह है कि दर्शनार्थ आनेवाले स्त्री और पुरुष विभुमूर्ति के दर्शन करना भूल कर परस्पर की सुन्दरता को निहारते हैं और प्रेम में बंध भी जाते हैं। सुन्दरता के प्रेमी और प्रेमिकाओं को यहाँ मिलने का अच्छा अवसर मिलता है। हे भगवन्! अब तो प्रकट रूप से सचमुच इन मन्दिरों में दुर्वासना जग रही है।

साम्प्रदायिक कलह

हा ! चन्द्रिका के राज्य में कैसी अमा है यह पड़ी !
दिन राज्य में कैसी तमिस्रा की विभो ! है यह घड़ी !
देखो सुधा में हा ! गरल का भाव है भरने लगा !
बन्धुत्व में शत्रुत्व का अब भाव हा ! बढ़ने लगा !! ॥११५॥

यह कैसा आश्चर्य है कि चन्द्रिका की उपस्थिति में अमावश्या का जोर बढ़े, दिन की उपस्थिति में रात्रि की काली घड़िये बढ़ने लगे। देखिये ! अमृत में विष का भाव भर रहा है, भ्रातृभाव में रिपुभाव बढ़ रहा है।

जो चढ़ चुका है शृंग पर फिर निम्नगा भी है वही,
कैसे बढ़े फिर शृंग से, जब ठौर आगे है नहीं।
ऐसी दशा में लौटना होता परम अनिवार्य्य है,
पर हाय ! हम तो गिर पड़े भिड़कर परस्पर आर्य ! है ॥११६॥

जो पर्वत की शिखा पर चढ़ेगा वही उतरेगा। आगे बढ़ने को जब स्थान ही नहीं है, वह आगे कैसे बढ़ेगा, उसके लिये पुनः लौटना ही परम अनिवार्य्य होगा। परन्तु हाय ! हम तो लौटे नहीं, (ऊपर ही) परस्पर लड़कर-भिड़कर नीचे को एक दम धम से गिर पड़े।

मतभेद में शत्रुत्व के यदि भाव जो भरने लगे,
झरने वहाँ विषधार के फिर देखलो झरने लगे।
अन्न, जल, पवमान तब विषभूत होंगे, देख लो,
उद्भिज, मनुज, खग, कीट भी विषकुंभ होंगे लेखलो॥११७॥

परस्पर विवाद और विचारों में मत भेद तब तक उत्कर्ष एवं सत्य शोध करने के लिये है, जब तक विवाद और मतभेद में शत्रुत्व का भाव नहीं भरता है। यदि मतभेद के कारण शत्रुत्व की भावनाएँ पैदा हो गई तो बस फिर आप वहाँ विष के झरने ही झरते हुये देखेंगे। उस परिस्थिति में पड़कर अन्न, जल और वायु भी विषाक्त हो जावेंगे और ऐसे विषाक्त वातावरण में पल कर क्रिमि, कीट, पशु-पक्षी मनुष्य, वृक्ष-वनस्पति सब विष के घट बन जावेंगे।

हा! आज ऐसा ही हमारी जाति का भी हाल है।
प्रत्येक बच्चा, प्रौढ़ इसका हाय! तक्षक व्याल है।
होकर सशंकित व्याल तो निज को बचाकर काटते।
रिपु को बुलाकर गेह पर हम गेह कर से पाटते!! ॥११८॥

हमारी समाज का वातावरण ठीक ऐसा ही विषाक्त है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति भुजंग बना हुआ है। भुजंग तो फिर भी उस दशा में काटता है जब कि उसे यह शंका हो जाती है कि यह प्राणी मेरे प्राणों को हरना चाहता है या मुझे भारी आघात पहुँचाना चाहता है। इतनी शंका हो जाने पर भी भुजंग अपनी प्राण रक्षा का प्रथम ध्यान रखता हुआ उसे काटता है; परन्तु हम तो अपने प्रतिपक्षी को निमंत्रण देकर घर पर बुलाते हैं, और उसके साथ में बंध कर अपने ही हाथों से अपना घर दाह कर मरते हैं।

ये श्वेतपट धारी, दिगम्बर हैं परस्पर लड़ रहे;
इस भाँति लड़ते हैं कि मानो हैं मरणहित अड़ रहे;

इनको सहोदर हाय ! हम सोचो भला कैसे कहें।
अखिलेश के ही सामने पद-त्राण जब इनमें बहें ॥११६॥

देखिये ! ये श्वेताम्बर और दिगम्बर बन्धु परस्पर लड़ रहे हैं। इनके इस प्रकार लड़ने के ढंग से यही विश्वास होता है कि ये मृत्यु प्राप्त करने के लिये परस्पर अड़ रहे हैं। आप ही कहिए कि हम यह कैसे मानें कि ये परस्पर भाई हैं, जब ईश्वर के (मन्दिर) समक्ष ही हम इनमें परस्पर पद-त्राण (जूते) चलते हुये देख रहे हैं।

होकर पुजारी एक के ये हाय ! डण्डों से लड़ें।
फिर क्यों न इनके देव पर हा ! दाव दूजों के पड़ें।
धिक्कार कैसे जैन हैं ! क्या जैन के ये काम हैं।
गतराग हो, गतद्वेष हो जो—जैन उसका नाम है ॥१२०॥

ये दोनों एक ही धर्म के अनुयायी हैं और फिर इस प्रकार लड़ रहे हैं। फिर आप ही बतलाइये, इनके मन्दिरों पर क्यों न दूसरे अधिकार करें। इन्हें धिक्कार है, ये कैसे जैन हैं ! एक जैनधर्मावलंबी के ऐसे कर्म तो नहीं हो सकते हैं। जैन तो वह है जो राग-द्वेष से सर्वथा रहित हो।

हर एक अपने बन्धु को हैं शत्रु कट्टर मानते।
इनसे भले तो स्वान हैं जो अंत मिलना जानते।
गतराग हैं, निर्मोह, संभव लक्ष्य-इनका मुक्ति है;
इस हेतु ही इनमें कहीं बढ़ती नहीं अनुरक्ति है ! ॥१२१॥

ये परस्पर प्रत्येक को कट्टर दुश्मन समझते हैं। इनसे तो

कुत्ते ही अच्छे हैं जो परस्पर लड़कर कभी एक तो हो जाते हैं संभव है ऐसा भी हो सकता है कि ये मोह-राग से रहित अपना परमधर्म और मोक्ष की प्राप्ति अपना लक्ष्य समझते हैं अतः ये परस्पर प्रेमबन्ध में नहीं बन्धते हों और परस्पर यों एक दूसरे को इस जीवन से मुक्ति देना उचित समझते हैं ।

लड़ते हुये इस भाँति दोनों सर्वहत् हैं हो चुके।
कोटी सहोदर मर चुके हा ! द्रव्य कोटी खो चुके।
निर्धन, पतित निर्वंश होकर हाय ! अब हैं रो रहे।
इनके घरों को देख लो बैठक मृतक के हो रहे॥ ॥१२२॥

इस प्रकार दोनों बंधु परस्पर लड़कर अपना सर्वनाश कर चुके। इनके इस पारस्परिक कलह में इनके करोड़ों बन्धु अपनी जीवन-लीला व्यतीत कर चुके और इनका करोड़ों का द्रव्य व्यय हो चुका। अब ये दीन-हीन और अल्पसंख्यक हो कर रोने लगे हैं। आप इनके घरों को अवलोकेंगे तो इनके घर आपको प्रत्यक्ष शोक भरे प्रतीत होंगे।

ये व्यूह-रचना में नहीं निष्णात हमको दीखते।
अभिमत हमारा मानलें—ऐसे नहीं हैं लीखते।
यदि सत्य ही निर्वंश करना बन्धु को हैं चाहते;
वे एक दल के फूँक दे दल-फूट, जय हैं चाहते॥ ॥१२३॥

ये हमको सफल योद्धा भी प्रतीत नहीं होते। हमारी संमति मानलें ऐसे भी ज्ञात नहीं होते। फिर भी इतना तो कहूँगा कि अगर ये परस्पर अपने एक दूसरे बंधुसमाज को निर्वंश

१८

करना ही चाहते हैं तो इन्हें सर्वप्रथम यह चाहिए कि अपनी अपनी दलसमाज में फैली हुई घातक फूट को नष्ट कर ये सुसंगठित होवें। इनमें जो दलसमाज प्रथम अपने दल की फूट को नष्ट कर आगे बढ़ेगा, वह ही अवश्य विजयी होगा।

ओ! देखते हो क्या दिगम्बर! चार तुममें भेद हैं,
आशा न तुम जय की करो, तुम में जहाँ तक छेद हैं।
तुम से अधिक है श्वेतअंबर खण्डमण्डित हो रहा,
बाहर तथा भीतर अहो! यमचक्र गतिमय हो रहा ॥१२४॥

हे दिगम्बर बंधुओ। क्या आपको यह ज्ञात है कि आप में भी चार दल हैं? जहाँ तक ऐसी फूट है आप जय की आशा न रक्खें। आप से भी अधिक इस श्वेताम्बरदल में फूट है। हा! यह कालचक्र बाहर और भीतर सर्वत्र चल रहा है।

बावीसपर्थी, मूर्त्तिपूजक मूर्त्ति पर मुखपत्ति पर,
हैं लड़ रहे दोनों परस्पर हाय! अपनी शक्ति भर।
मुखपत्ति हो मुख पर चढ़ी या हो तथा कर में भले,
करते रहें उपयोग उसका जबकि अधराधर चलें ॥१२५॥

ये स्थानक वासीबंधु और मूर्तिपूजक बंधु मूर्त्ति और मुखपत्ति के प्रश्नों पर परस्पर अपनी अपनी सर्वशक्ति लगाकर लड़ रहे हैं। मुखपत्ति चाहे हाथ में हो, चाहे मुख पर लगी हो— ध्येय यह होना चाहिए कि जब जब ओष्ठ हिले उसका उपयोग हो। मेरी दृष्टि में यह पारस्परिक कलह इस प्रकार

किसी भी रूप में समझ लेने पर अब सदा के लिये शांत हो सकता है।

अब अर्थ पूजा का करें, जिस पर कि हम हैं लड़ रहे ?
आघात जिसके हेतु हैं गहरे परस्पर पड़ रहे।
आतिथ्य, रक्षण, मान औ औचित्य इसके अर्थ हैं;
अनुसार श्रद्धा, भक्ति के बहु रूप हैं, बहु अर्थ हैं ॥१२६॥

अब लीजिये दूसरा कारण 'मूर्तिपूजा' का जिसपर कि हम इस प्रकार लड़ रहे हैं और जिसके कारण हमारे मानसों में अंतर का भारी आघात बढ़ता जा रहा है। पूजा का अर्थ अतिथि का संमान, प्राप्त की रक्षा, गुणों का मान और आप्त का यथाविधि समादर है। फिर पूज्य के प्रति पुजारी की श्रद्धा भक्ति का तौल पूज्य के संमान, रक्षण, आतिथ्य और समादर के अनेक रूप, ढंग और क्रम बना देता है।

जल, अन्न गृह, पट, वायु हैं आधार इस तन के सदा;
अनुसार मात्रा के बढ़ेंगे निमिष जीवन के सदा।
चिरकाल रखने के लिये ज्यों चित्र मण्डित चाहिए;
जीवन बढ़ाने के लिये बस उचित साधन चाहिए ॥१२७॥

हे बंधुओ! हम इसका सत्कार जल, अन्न, पवन, भवन और वस्त्रादि से करते हैं और ये ही इसके जीवन के आधार हैं। अब जैसी और जिस मात्रा में ये उपकरण इसको प्राप्त होंगे वैसा ही और उस प्रकार का इसका दीर्घ या अल्प जीवन बनेगा। वही चित्र अधिक जीवित रहेगा, जो भली भाँति

मंडित होगा। तात्पर्य यह है कि जैसी वस्तु हो, उसके जीवन को बढ़ाने के लिये भी वस्तु के अनुकूल और उचित साधन जुटाने चाहियें।

इस दृष्टि से विभूमूर्त्ति जीवन उपकरण ढूँढे गये;
प्रक्षाल, दीपक, धूप,गृह साधन उचित समझे गये।
ज्यों स्नान, भोजन, वस्त्र से तुम देह की पूजा करो;
अनुकूल साधन प्राप्त कर दीर्घायु की आशा करो ॥१२८॥

त्यों मूर्ति भी दीर्घायु हो—ऐसे न किसके भाव हैं ?
है बिंब करुणासिंधु का—फिर क्यों न पूजा भाव हैं ?
इस भाँति पूजाभाव दिन-दिन मूर्त्ति में दृढ़ हो गये;
फिर भावपूजा भाव बढ़कर द्रव्यपूजा हो गये ॥१२९॥

ईश्वर की मूर्ति दीर्घायु हो—यही भावनाएँ लेकर ऐसे साधन शोधे गये जो बिम्ब को चिरस्थिर रख सकें। मूर्ति का प्रक्षालन, मूर्तिस्थापन करने के लिये मन्दिर, दीपक और धूप ये अति आवश्यक साधनों में से माने गये। जिस प्रकार हम स्नान, भोजन आदि करके सुन्दर वस्त्रों का परिधान करके इस देह की पूजा करते हुये दीर्घायु होने की आशा रखते हैं; उसी प्रकार ऐसे किस व्यक्ति की भावनाएँ नहीं होंगी कि बिंब दीर्घायु हो। अतिरिक्त इसके फिर जब बिम्ब परमात्मा का हो तब फिर पूज्य भाव क्यों नहीं बढ़ेंगे। इस प्रकार पूजाभाव उत्तरोत्तर प्रतिदिन मूर्ति के प्रति दृढ़तर होते गये और कालान्तर में जाकर ये पूजाभाव बढ़ते बढ़ते इतने बढ़ गये कि इनका रूप

ही शनैः शनैः परिवर्तित होने लगा और ये अन्त में द्रव्यभाव बन गये।

प्रस्तरावनिर्मित मूर्तियें जिनराज के शिव बिंब हैं;
संसार में जिनराज केवल मात्र बस अवलम्ब है।
उनके भला फिर बिम्ब का संमान क्यों नहिं हो चढ़ा;
फिर शिल्प भी इस बिंब की सोपान पर देखो चढ़ा ॥१३०॥

ये मूर्तियें जिनेश्वर भगवानों के कल्याणकारी बिम्ब हैं; जो इस असार संसार में एक मात्र सहारे हैं। ऐसे महोपकारी जिनेश्वर भगवानों के बिम्बों का संमान भला क्यों नहीं बढ़ा-चढ़ा हो और फिर ये मूर्तियें ही तो शिल्प कला का उत्कृष्ट नमूना है अर्थात् शिल्प इन बिंबों पर ही भलीभाँति अपने सत्य रूप को चित्रित कर सका है।

जिनराज के जब बिंब हैं, जब शिल्प के ये चिह्न हैं;
अतएव हमसे हो नहीं सकते कभी भी भिन्न हैं।
रक्षार्थ इनके तब हमें साधन जुटाने फिर पड़े;
रखने यथा संभव इन्हें मंदिर बनाने फिर पड़े ॥१३१॥

महोपकारी जिनेश्वर के बिंब होने के कारण और शिल्प के उत्कृष्ट नमूने होने के कारण ये मूर्तियें हमारे से अभिन्न नहीं की जा सकतीं। अतः इन दृष्टियों से हमको प्रेरित होकर इनकी रक्षा का उपाय करना पड़ा और वे सब ही साधन एकत्रित किये गये जो इनकी रक्षार्थ आवश्यक समझे गये और इनको प्रतिष्ठित करने के लिये हम को मन्दिर भी बनाने पड़े।

मैं मानता हूँ आज अति ही द्रव्य-पूजा बढ़ गई;
हतज्ञान होकर भक्तिपूजा अन्ध श्रद्धा बन गई।
पर अर्थ इसका यह नहीं—हम मूर्त्ति मन्दिर तोड़ दें;
हम उचित श्रद्धा में न क्यों हा! अंध श्रद्धा मोड़ दें ॥१२२॥

यह मैं स्वीकार करता हूँ कि आज द्रव्य-पूजा एक विकृत रूप धारण कर चुकी है। पुजारियों की भक्तिभावनाएँ अविवेक के कारण अन्धश्रद्धा में परिणित हो गई हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम मूर्तियों को तोड़ दें और मन्दिरों को ढाह दें। हमको अपनी बढ़ी हुई और बढ़ती हुई अन्धश्रद्धा का विवेकपूर्ण श्रद्धा में परिवर्तन करना चाहिए।

तुम मूर्त्ति कहते हो जिसे, मैं शास्त्र भी कहदूँ उसे;
तुम मूर्ति कह सकते उसे मैं शास्त्र कहता हूँ जिसे।
है एक कागज का बना, दूजा बना पाषाण का;
यह बाकलन भगवान का, वह भान है भगवान का ॥१२३॥

आप जिसको मूर्ति कहते हैं, मैं उस वस्तु को शास्त्र कह सकता हूँ और जिस वस्तु को मैं शास्त्र कहता हूँ, आप भी उसको मूर्त्ति कह सकते हैं। शास्त्र और मूर्त्ति में अन्तर केवल इतना ही है कि एक कागज का बना हुआ है और अन्य प्रस्तर का। शेष शास्त्र भगवान के अभिवचनों का ग्रन्थ है और मूर्त्ति उन्हीं भगवान का बिंब है।

आदर्शता पर शुल्क का फिर प्रश्न है रहता नहीं;
रज का कभी वह मूल्य है, जो मूल्य कंचन का नहीं।
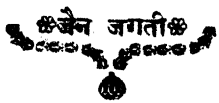
विश्वेश की यह मूर्त्ति है, इसका न कोई मूल्य है;
जिसमें हमारा राग हो, उसके न कोई तुल्य है ॥१३४॥

व्यवहार में आने वाली वस्तुओं का तो बाजार भाव ही होता है लेकिन प्रासाद रूप से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का मूल्य उनके कर्ता के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। मुझे अच्छी प्रकार स्मरण है कि महात्मा गाँधी के कर कमलों से बनाया हुआ निमक सन् १९२९ में अजमेर में सौ रुपये तोला से ऊपर बिका था। आदर्शता अमूल्य है। कभी कभी धूल का वह मूल्य होता है, जो हेम का नहीं होता। यह मूर्त्ति भी सच्चिदानंद परम परमेश्वर भगवान का बिंब है अतः इसका मूल्य अकल्पनीय है। जिस व्यक्ति वस्तु के समान हमारे लिये संसार में कोई अन्य नहीं है; चाहे भले ही उस व्यक्ति, वस्तु से संसार में उत्तम उत्तम व्यक्ति, वस्तु क्यों न हो।

ये शास्त्र, आगम-निगम हैं विद्वान जन के काम के;
पर बिंब तो अज्ञान के, विद्वान के सम काम के।
साहित्य की भी दृष्टि में दोनों कला के अंश हैं;
मन-मैल धोने के लिए ये अनुकूल-अवतंश हैं ॥१३५॥

ये शास्त्र, आगम आदि तो सपढ़ विद्वान जन के उपयोग के लिए हैं, परन्तु मूर्त्तियों से अज्ञानी पुरुषों को एवं विद्वान जनों को समान लाभ पहुँचता है। वैसे फिर साहित्य की दृष्टि से दोनों शास्त्र और मूर्त्ति कला के भाग हैं। हृदय में शास्त्रों के स्वाध्याय, श्रवण से और मूर्त्ति के दर्शन-स्पर्शन से प्राप्त

भावों का जागरण होता है। मनोविकारों का परिधावन करने के लिये इस प्रकार ये दोनों शास्त्र एवं मूर्त्ति उत्तम गंगाजल है।

अर्थात आगम है वही शिव मार्ग का जो ज्ञान दे;
शिव मार्ग जो शंकर गये, यह बिंब उनका भान दें।
उत्थान उन्नति के लिये दोनों अपेक्षित एक से;
हैं भूत भारतवर्ष के इतिहास दोनों एक-से ॥१३६॥

अर्थात् आगम वह वस्तु है जो शिवमार्ग का उपदेश, निर्देश करता हो और मूर्त्ति वह वस्तु है जो शिव मार्ग में होकर गये हुये महापुरुषों की स्मृति कराकर दर्शकों को प्रभावित करें। इन दृष्टियों से आध्यात्मोन्नति के लिये दोनों एक से आवश्यक हैं। दोनों भारतवर्ष के :अतीत काल के (में हुए महापुरुषों के चरित्र को प्रदर्शित करने वाले) समान मान के इतिहास हैं।

समयज्ञ थे पूर्वज हमारे भूत, भावी आज के;
सब के लिये वे रख गये साधन सभी सब साज के।
विद्वान को होंगे विदित आचार आगम पाठ से;
होंगे प्रभावित अपढ़ जन इन मूर्त्तियों के ठाट से ॥१३७॥

हमारे पूर्वज भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता थे। अतः वे हमारे लिये सर्व कालों में उपयोगी हितकारी साधन रख गये हैं। विद्या का युग हो चाहे नग्न जाड़पता नृत्य करती हो हमको आचार भ्रष्ट होकर धर्मोन्मुख होने से रोकने के साधन तो सर्व काल में एवं सर्वत्र विद्यमान, हैं। विद्वान जन ग्रन्थों को पढ़ कर अपना आचार जान सकते हैं और मूर्खजन

मूर्त्तियों के दर्शन-स्पर्शन, गुण कीर्त्तन, श्रवणादि से ईश्वर भक्ति की ओर आकर्षित रहकर आचार-मार्ग में चलते हैं।

पूज्या तथा समाननीया हर तरह हैं मूर्त्तियाँ—
ये भाव हों, जब ही बढ़ेगी प्रीतियाँ, कल कीर्त्तियाँ
नूतन कलह फिर है मचाया एक तेरह पंथ ने;
ठुकरा दिये प्रस्ताव सब संयोग के इस पंथ ने ॥१३८॥

अब पाठक वृंद भली भाँति समझ गये होंगे कि हर प्रकार से मूर्त्तियाँ हमारे निकट पूज्या एवं समाननीया हैं। जब हमारे ऐसे भाव होंगे तब ही हम सब में परस्पर प्रीति होगी एवं हमारी यश-कीर्त्ति बढ़ेगी। तेरहपंथ ने एक नूतन झगड़ा और खड़ा कर दिया है और संयोग कराने की सब ही बातें इस पंथ ने हा! ठुकरा दी हैं।

इन सब कलह की डोर है गुण्डे जनों के हाथ में;
ये भूत कैसे लग गये शाश्वत हमारे साथ में।
रहते हुये न दंभियों के मेल हो सकते नहीं;
पारस्परिक मत भेद के ये राग घट सकते नहीं॥ ॥१३९॥

इन सब झगड़ों की डोर गुण्डे जनों के करों में है। हे भगवन्! हमारे पीछे ये अनोखे भूत सदा के लिये कैसे लग गये? इन दम्भियों के जीवित रहते न तो कोई परस्पर मेल होने की ही संभावना है। और न इन मतभेदों की कमी होने की कोई आशा है।

विभुवीर के अनुयायियो! ओ दिग्पटो! श्वेताम्बरो!
मेरे सहोदर बन्धुओ! दुर्मृत्यु तो यों मत मरो।

सब में हृदय, मन, ज्ञान हैं, हैं आत्म सब में एक ही।
ऐसी दशा में पल लगेगा मेल करते एक ही ॥१४०॥

हे भगवान महावीर के अनुयायी दिगंबर एवं श्वेतांबर! हे मेरे आत्म भ्राताओं! इस प्रकार कुमृत्यु का आलिंगन तो मत करिये। हम सब में हृदय है, मन है और ज्ञान भी है तथा आत्मा सब में एक ही है ऐसी स्थिति में (मेरे विचार में) परस्पर मेल एक पल भर में स्थापित किया जा सकता है।

कुशिक्षा

शिक्षा कहें अथवा इसे कुल्टा कहे या चण्डिनी;
कुलनाशिनी, धन हारिणी, प्रातंत्र्यवेदी मण्डिनी।
शिक्षे! तुम्हारा नाश हो भिक्षा सिखाती हो हमें;
भिक्षुक बनाकर हाय! रे! घर-घर फिराती हो हमें ॥१४१॥

वर्तमान शिक्षा विद्यार्थी को कुल्टा के सदृश सदा उन्मार्ग में आकृष्ट करती रहती है, भ्रष्ट कर उसके कुल का क्षय करती है, अतिव्यय करवाकर धन हरती है, प्रातंत्र्य का पाठ पढ़ाती है और चण्डिनी सा व्यवहार करती है। शिक्षे! तुम्हारा क्षय हो। हमको भिक्षा का पाठ पढ़ाती हो और भिक्षुक बना कर हमसे घर-घर भिक्षा मंगवाती हो।

अन्यान्य देशों के पढ़ाये जा रहे इतिहास हैं—
इस भाँति में, की आर्य संस्कृति का दिनोदिन ह्रास है।
अतएव शास्त्राभ्यास में मन हा! कभी लगता नहीं;
आख्यायिकोपन्यास में मन हा! कभी थकता नहीं ॥१४२॥

हम भारतीय विद्यार्थियों को अन्यान्य प्रदेशों के बढ़ा चढ़ा कर झूठे झूठे गौरव भरे ऐतिहासिक ग्रन्थ इस ढंग से पढ़ाये जाते हैं कि हमारी आर्य संस्कृति का शनैः शनैः नाश हो जाय। इसी का यह प्रतिफल है कि आज हमारा धर्मग्रंथों के स्वाध्याय में मन नहीं लगता है और चरित्र को भ्रष्ट करने वाले उपन्यास और कहानी ग्रंथ पढ़ते हुये वह थकित नहीं होता।

निज पूर्वजों के वाक्य, बल में अब न श्रद्धा है हमें,
ईसा, नपोलिन पूर्वजों में दीखते नहिं हैं हमें।
ये सब कुशिक्षा के कुफल हैं! हा! हंत! हम भी मनुज हैं!
शिक्षा, विनय में गिर गये—सब भाँति अब तो दनुज हैं ॥१४३॥

अब हमको हमारे पूर्वजों के अनुभवपूर्ण एवं आप्त वाक्यों में तथा उनके महा पराक्रमों में विश्वाश नहीं रहा। हमारे पूर्वजों में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं दिखाई देता कि जिसको हम ईसा और नपोलियन के समतुल समझें। हे भगवान! ये सब कुशिक्षा के परिणाम हैं। हा! हमारा सर्वनाश हो गया। क्या हम भी मनुष्य हैं? शिक्षा में और पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-विनय में हम इतने पतित हैं कि अब तो हम सर्व प्रकार से दैत्य से असभ्य और जंगली हैं।

प्राकृत तथा संस्कृतविदों के मान घटते जा रहे,
हर वर्ष बी० ए० एम० ए० बढ़ते हुये हैं जा रहे।
यदि हो न बी०ए०, एम०ए० रक्खो कहाँ हैं नौकरी,
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी! ॥१४४॥

अब संस्कृत और प्राकृत के विद्वानों का मान उत्तरोत्तर न्यून होता जा रहा है। प्रतिवर्ष सहस्रों युवक बी० ए० और एम० ए० उत्तीर्ण कर रहे हैं। यदि आजहम बी० ए० और एम० ए० उत्तीर्ण न हों तो नौकरी नहीं मिल सकेगी और हम निर्धनों का विवाह भी नहीं होगा।

प्राचीन प्राकृत देव भाषा सीखते हम भी नहीं,
इनके सिखाने की व्यवस्था सच कहीं है भी नहीं।
फिर देश के प्रति सच कहें, अनुराग कैसे जम सके ?
दासत्व के कैसे कहें फिर भाव उर से उड़ सके ? ॥१४५॥

हम भी संस्कृत और प्राकृत के अध्ययन की ओर कुछ भी आकर्षित नहीं होते हैं और न इन भाषाओं के सिखाने की कहीं भी सम्यक व्यवस्था ही है। फिर सच कहें, हमारा देश के प्रति (पूर्वजों के प्रति) श्रद्धाभाव कैसे बढ़ें और दासता के ये चुद्रभाव इस सशंकित भ्रमित हृदय से कैसे बाहर निकलें।

जापान, लंडन, फ्रान्स में शिक्षार्थ हम हैं जा रहे;
आते हुये हैं साथ में लेडी प्रणय कर ला रहे।
शिक्षा प्रिया के साथ में लेडी प्रिया भी मिल गई;
हम मैन इंगलिश बन गये बस मुनसफी जब मिल गई ॥१४६॥

हम विद्याध्ययन करने के लिये जापान, लंदन, फ्रांसादि प्रदेशों में जा रहे हैं। विद्याध्ययन समाप्त कर जब देश को प्रस्थान करते हैं, उस समय हम उन प्रदेशों की लेडियों को अपनी विवाहिता पत्नि बनाकर साथ में ला रहे हैं। प्रियतमा शिक्षा के साथ ही साथ हमको इस प्रकार नारी प्रियतमा भी

मिल जाती है और अगर हमको यहाँ फिर 'मुनसफी' मिल जाय तो बस हमारे अँग्रेज बनने का गौरव प्राप्त करने में कुछ भी विःशेष नहीं रहा।

जो पा चुके शिक्षा यहाँ, उनको बुभुक्षा मिल गई!
हा! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियाँ दो मिल गई!
नीचा किये शिर रात दिन श्रम, काम वे करते हैं;
फिर भी विचारे स्वामियों के झाड़ते जूते रहें ॥१४७॥

जिन हमारे बंधुओं ने भारतवर्ष में ही शिक्षा प्राप्त की, उनके पल्ले में बुभुक्षा पड़ी। वे अपना सौभाग्य समझेंगे अगर इन्हें दो रोटियाँ मिल गई। हमारे ये बंधु मस्तिष्क झुकाये रातदिन परिश्रम, काम करते रहेंगे और इस पर भी उच्चपदाधिकारियों एव स्वामियों की क्षुद्र सेवाओं में भी हर समय उपस्थित रहेंगे और डाट-फटकार सहते रहेंगे।

आराम में बस प्रथम नम्बर एक अड्वोकेट हैं;
ये बन्धु आपस में लड़ाकर भर रहे पाकेट हैं।
ये भी विचारे क्या करें, इसमें न इनका दोष है;
जैसी इन्हें शिक्षा मिली, वैसा करें—निर्दोष हैं ॥१४८॥

भारतवर्ष में ही विद्याध्ययन समाप्त करने वालों में से एक वकीलसमुदाय आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। ये हमारे बन्धु परस्पर बन्धुओं को लड़ाने का और झगड़े बढ़ाने का व्यवसाय करते हैं और जेब खूब गर्म करते हैं। परन्तु वस्तुतः इस घृणित व्यवसाय के अपनाने में इनका, मेरी दृष्टि से दोष नहीं है। ये निर्दोष हैं— वैसा ही वे करेंगे जैसी इनको शिक्षा मिली है।

शिक्षण-संस्थायें

विद्याभवन, चटशाल हैं या रोग के आवास हैं;
वैषम्य, मत्सर द्वेष के या साम्प्रदायिक वास हैं।
पौशाल कारावास हैं, अभियुक्त हैं बालक यहाँ;
ये घूमते हंटर लिये शिक्षक सभी जेलर यहाँ। १४६॥

ये इन हमारी शिक्षण-संस्थाओं को हम विद्याभवन कहें, कि चटशाला कहें, कि या रोगशाला कहें या वैषम्य-मत्सर-द्वेष प्रवर्धनशाला या साम्प्रदायिकशाला कहें। ये संस्थायें कारागार हैं, बालकगण कैदी हैं और ये हंटर हाथ में लेकर घूमनेवाले शिक्षक महोदय जेलर महानुभाव हैं।

विद्याभवन तो नाम है, विद्या न है पर नाम को;
विद्यार्थियों को मिल रही विद्या यहाँ हरिनाम की।
यदि शिष्य-गणना ठीक है, शिक्षक न पूरे हैं यहाँ;
शिक्षक अगर भरपूर हैं तो शिष्य थोड़े हैं वहाँ ॥१५०।

ये नाम के विद्याभवन हैं। नाम लेने भर को भी यहाँ विद्या नहीं है। विद्यार्थियों को नाम मात्र भी विद्या नहीं दी जाती है। यदि (कभी) विद्यार्थियों की प्रगणना समुचित है तो शिक्षकों की कमी होगी और अगर शिक्षक समुचित संख्या में हैं तो विद्यार्थी बहुत थोड़े होंगे—ऐसी इन शिक्षण-संस्थाओं की व्यवस्थायें हैं।

गुरु, शिष्य दोनों की जहाँ गणना उचित मिल जायगी;
तुमको वहाँ पर आपदा पर अर्थ की नित पायगी।

आर्थिक कठिनता हो नहीं—ऐसे न गुरुकुल आज हैं;
कुत्सित व्यवस्था देखकर आती हमें भी लाज है ॥१५१॥

अगर किसी विद्यालय में शिक्षक और शिष्य उचित संख्या में हैं तो वहाँ आर्थिक कष्ट आपको सदा मिलेगा। आज हमारी समाज में ऐसा कोई गुरुकुल नहीं है जहाँ आर्थिक कठिनाई नहीं हो। इस प्रकार की अव्यवस्थायें देखकर हमको भी शर्म आती है।

संपन्न यदि सद्भाग्य से विद्याभवन हो हा! कहीं;
हा! दुर्व्यवस्थित, पतित उस सा अन्य मिलने का नहीं।
सब कार्य कर्ता चोर हैं, दलबंधियों के जोर हैं;
शिक्षक गणों की पट रही, शिक्षक सभी गुणचोर हैं॥१५२॥

यदि अहोभाग्य से कोई विद्यालय सम्पन्न होगा तो अव्यवस्थित उससे बढ़कर (इस भूमण्डल पर) अन्य नहीं मिलेगा। सब कार्यकर्ता चोर होंगे, दलबंधियाँ होंगी और शिक्षकगण गुणचोर होंगे जो इस प्रकार की अव्यवस्था से लाभ उठाते होंगे।

वैसे न गुरुकुल आज हैं! वैसे न विद्यावास हैं!
वैसे न कुलपति, शिष्य हैं! होंगे न-ऐसी आश है!
यदि कक्ष में पैसा नहीं, मिलती न शिक्षा है यहाँ!
निर्धन जनों के भाग्य में तो मूर्ख रहना है यहाँ!!॥१५३॥

अतीत काल के आदर्श गुरुकुलों के समान न तो आज गुरुकुल ही हैं और न विद्यालय ही हैं। वैसे कुलपति और

विद्यार्थी भी नहीं हैं और भविष्य में (वैसे आदर्श) होंगे, ऐसी कोई आशा भी प्रतीत नहीं होती। आज तो शिक्षा उसी के भाग्य में है, जिसके पास द्रव्य है। यहाँ निर्धनजनों के भाग्य में आज मूर्ख रहना ही लिखा है।

खण्डन, स्वमंडन के सिवा होती न शिक्षा है यहाँ!
बस साम्प्रदायिक सैन्य ही तैय्यार होता है यहाँ!
चटशाल, छात्रावास, गुरुकुल फूट के सब बीज हैं!
इनकी कृपा से हो रहे हम हा! अकिंचन चीज हैं! ॥१५४॥

इन शिक्षणसंस्थाओं में केवल खण्डनात्मक एवं स्वमण्ड-नात्मक शिक्षण के अतिरिक्त कोई शिक्षण नहीं होता। साम्प्रदा-यिक सैन्य ही यहाँ सृर्जे जाते हैं। ये सब ही प्रकार की शिक्षण संस्थायें फूट के बीजस्वरुप हैं। एक मात्र इनकी कृपासे ही आज हम इतने पतित हो रहे हैं।

आश्चर्य क्या रतिचार भी गुरुशिष्य में संभव मिले!
हा! क्यों न ऐसे गुरुकुलों में सृष्टि-शिक्षण सब मिलें!
शिक्षक गणो! तुम धन्य हो! हे तंत्रियो! तुम धन्य हो!
निर्बोध बच्चों के अहो! माता-पिता! तुम धन्य हो!! ॥१५५॥

कोई आश्चर्य नहीं अगर इन संस्थाओं में गुरुजनों का शिष्यों के साथ वासना भरा प्रेम मिले। हा! ऐसे दुर्व्यवस्थित गुरुकुलों में संसार की सब ही सृजनात्मक शिक्षायें क्यों नहीं दी जानी चाहिए। शिक्षकगणो। संस्था के मंत्रियो! निर्बोध बच्चों के अंधे मातापिताओं! तुम सब को धन्य है।

चालक यहाँ सब मूर्ख हैं, आता न अक्षर एक हा !
यदि अड़ गये—मर जायँगे—देंगे न जाने टेक हा !
इनमें अधिकतर धेनु से भोले तुम्हें मिल जायँगे;
विश्वास देकर दुष्टगण जिनको अहिर्निश खायँगे ॥१५६॥

इन शिक्षणसंस्थाओं के संचालक सब से सब (अधिकतर) मूर्ख हैं, निरक्षर हैं और यदि किसी बात पर अड़ गये तो मरना उन्हें स्वीकृत है परन्तु टेक नहीं जाने देंगे चाहे संस्था उन्मूल ही क्यों न हो जाय। इनसंचालकों में अधिकतर गौ से भी भोले भाले मिलेंगे जिनको दुष्टगण विश्वास देकर रात दिन छलते रहेंगे।

विद्याभवन आये दिवस हर ग्राम में हैं खुल रहे,
फिर बैठ जाते फेन-से हैं, दीप-से हैं बुझ रहे।
यह जैन गुरुगुल सादड़ी का बंद हा ! कैसे हुआ;
इसको न थी कोई कमी, यह भग्न गति कैसे हुआ ॥१५७॥

आये दिन प्रत्येक ग्राम, नगर में विद्यालय खोले जा रहे हैं और शीघ्र ही चंचल दीपक और जल के बुदबुदों की तरह पुनः बन्द होते जा रहे हैं। श्री नाथूलाल जी गोदावत जैन गुरुकुल छोटी सादड़ी (मेवाड़) जिसको किसी बात की कोई भी कमी नहीं थी, बड़ा दुःख है, कैसे बन्द हो गया ?

होगा भला इनसे नहीं, हे भाइयो ! खोलो नयन;
हा ! ये न विद्यावास हैं, हैं ये सभी रोगायतन।
जब तक व्यवस्था एक विध सब की न बनने पायगी;
कल्याण तरुवर शाख हा ! तब तक न फलने पायगी ॥१५८॥

हे बन्धुओ ! इन साम्प्रदायिक शिक्षा संस्थाओं से समाज और देश का कल्याण नहीं होगा। इनको विद्यावास कहना मिथ्या है। ये सर्व के सर्व समाज के हित रोगालय हैं। जब तक इन सब संस्थाओं की व्यवस्था अखिल समाज की दृष्टि से से एक-सी नहीं होगी, तब तक यह निश्चित है कि उन्नति का वृक्ष कभी भी फूल कर फलवान नहीं होगा।

शिक्षा न दीक्षा है यहाँ, आलस्यता, उन्माद हैं,
अपखर्च, चौर्य्याचार हैं, स्वच्छंदता, अपवाद है।
कितनेक शिक्षणभवन हैं, जो गर्वपूर्वक कह सकें।
हम धर्मसेवी भक्त इतने देश को हैं भर सकें ॥१५६॥

सत्य तो यह है कि ये शिक्षण-संस्थायें नाम मात्र की हैं। शिक्षा का और नियमनिष्ठता के शिक्षण का यहाँ वस्तुतः प्रबंध नहीं। यहाँ देखने को मिलेंगे आलस्यता और उन्माद के दृश्य, अनुचित व्यय और चौर्य्यकर्म के नाटक और निरंकुशता और परनिंदा के अभिनय। ऐसे कितने विद्यालय हैं जो गर्व पूर्वक यह कहने का साहस रखते हो कि हमने इतने देश भक्त, धर्मसेवी विद्यार्थी देश को दिये हैं।

तुमको हमारे गुरुकुलों में यह नयापन पायगा ;
निज जाति के बालक सिवा बालक अपर नहिं पायगा।
नहिं जाति के, नहिं देश के, नहिं धर्म के यह काम के।
ये उदरपोषक हाट हैं अध्यापकों के काम के ॥ १६० ॥

हे बन्धुओं ! आपको हमारे इन शिक्षण-संस्थाओं में एक

विशेषता अवश्य मिलेगी और वह यह कि हमारी जाति (जैन) के अतिरिक्त अन्य जातियों के लड़के वहाँ (सम्भवतः) आपको नहीं मिलेंगे। ये संस्थायें नहीं जाति के लिये उपयोगी हैं, नहीं देश और धर्म के लिये लाभदायक हैं। मेरे विचरों में ये संस्थायें अध्यापकजनों के लिये भरण-पोषण की दुकानें हैं।

आदर्श, पण्डित, योग्य शिक्षक यदि कहीं मिल जायगा
या रह सकेगा वह नहीं, या वह निकाला जायगा।
चरित्र से ये भ्रष्ट उसको हाय ! रे! बतलायँगे।
षड़यंत्र ऐसे ही यहाँ चलते हुये नित पायँगे ॥१६१॥

अगर भाग्य से कोई योग्य, विद्वान और आदर्श अध्यापक इन संस्थाओं में आ पड़ेगा तो या तो इनकी अव्यवस्था और विकृत प्रकृति देखकर वह स्वयं ही निकल जायगा या फिर वह हटाया जायगा। हटाते समय उसको चरित्रहीन होने की घोषणा की जायगी। आये दिन ऐसे ही सुन्दर सुन्दर षड़यंत्र इन शिक्षण संस्थाओं में होते हुये आप अनुभव करेंगे।

विद्वान्

हम विज्ञ प्राकृत के नहीं, विद्वान संस्कृत के नहीं।
विद्वान आङ्गल के नहीं, हम विज्ञ हिन्दी के नहीं।
हममें न कोई 'गुप्त' से 'हरिऔध' से हैं दीखते।
दीखें कहाँ से ! बालपन से हाट करना सीखते ॥ १६२ ॥

हमारी (जैन) समाज में प्राकृत, संस्कृत, अँग्रेजी और हिन्दी के विद्वान नहीं हैं। महाकवि मैथिली शरण गुप्त और

कविसम्राट पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के समान एक भी विद्वान् नहीं है। होवे भी तो कैसे ! हमारे लड़कों को बचपन से ही दुकानदारी करना सिखाया जाता है।

लिक्खाड़ छोरे हो रहे जिनको न कुछ भी ज्ञान है;
अपवाद खण्डन रात दिन करना जिन्हों का ध्यान है।
यदि भाग्य मे विद्वान कुछ हरि नाम को पा जायँगे;
वे साम्प्रदायिक रोग से पर ग्रस्त तुमको पायँगे॥ १६३॥

हमारी समाज में अल्पठर्यी और अनुभवहीन लड़के लेखक हैं, जिनका एक मात्र ध्येय परनिंदात्मक और खण्डानात्मक कार्य करने का है। यदि अहो भाग्य से कोई विद्वान् भी होगा तो वह भी साम्प्रदायिक रोग से तो ग्रस्त ही मिलेगा।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा आज होने जा रही;
इसमें है साहित्य जिसका, जाति वह खल खा रही।
यह काल प्राकृत, देव भाषा के लिये अनुदार है;
हिन्दी न आती हो जिसे जीवन उसी का भार है॥ १६४॥

आज हमारी हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बनने जा रही है। जिस जाति का इस युग में हिन्दी में साहित्य नहीं होगा, वह जाति अवश्य पिछड़ रही है। वर्तमान युग प्राकृत और संस्कृत भाषाओं से अनुकूल है। जिस जाति का हिन्दी भाषा में साहित्य नहीं रचा जा रहा है, वह जाति अपने ही जीवन को अपने ही लिये भार बना रही है।

पत्रकार

लेखनकला कुछ आगई, कुछ युक्ति देनी आगई;
प्रारंभ करने पत्र की अभिलाष मन में छा गई।
संवाद झूठे दे रहे—ये विष-वमन हैं कर रहे;
पाताल में जड़ पतन की ये और दृढ़ हैं कर रहे॥ ॥१६५॥

कुछ कुछ लेख लिखने का अभ्यास हो गया, कुछ युक्तियों का प्रयोग आगया; बस पत्र प्रकाशित करने की भावना पैदा होगई। ऐसे अयोग्य लेखक, देख लीजिये, अपने पत्र में मिथ्या संवाद रहे हैं और समाज में विष फैला रहे हैं और इस प्रकार ये समाज के पतन की जड़ को और अधिक गहरी और सुदृढ़ बना रहे हैं।

ये व्यक्तिगत आक्षेप करने से नहीं है चूकते;
टुकड़ा न कुछ मिल जाय तो ये श्वानवत हैं भूँकते।
छींटें उड़ाना ही प्रमुख है प्राय इनका काम रे!
झूठी प्रशंसा कर सकें या जाँय यदि कुछ दाम रे! ॥१६६॥

ऐसे अनुभवहीन एवं अयोग्य पत्रसम्पादक किसी की व्यक्तिगत निन्दा करने से नहीं चूकते और जब तक श्वान की तरह इनको भी कुछ टुकड़ा न मिल जाय तब तक ये इनके पत्रों में चिल्लाते रहेंगे। निंदा, अपवाद, खण्डन और वह भी असभ्य ढंग से करना इनका प्रमुख कर्म है। यदि कुछ पैसे इन्हें दे दिये जाय तो ये मिथ्या प्रशंसा के भी पुस्तक बांध सकते हैं।

इनको न जात्युद्धार पर कुछ लेख है लिखना कहीं।
इनका न विज्ञापन-कला बिन काम है चलता कहीं।
अपवाद, खण्डन छाप देंगे भग्न करके शान्ति को;
इनको नमन शतवार है, है नमन इनकी क्रांति को।। ।।१६७।।

न तो इन अयोग्य एवं अनुभव हीन संपादकों को समाज के उद्धार को दृष्टि में रख कर लेख प्रकाशित करने हैं और न इनका विज्ञापनों के प्रकाशित किये बिना निर्वाह ही संभव है। ये मिथ्या अपवादात्मक एवं खण्डनात्मक समाचार प्रकाशित कर ये समाज की शान्ति को भंग कर देंगे। ऐसे महोदय संपादकों को मेरा सौ सौ प्रणाम स्वीकृत हो और इनकी ऐसी क्रान्ति को भी मेरा सौ सौ प्रणाम है।

उपदेशक व नेता

आख्यायिका कुछ आगई, कुछ याद जीवन हो गये,
कुछ आपके, कुछ अन्य के औ ज्ञात अनुभव हो गये,
कुछ सूक्तियों का युक्तिपूर्वक बोलना औ आगया—
व्याख्यानदाता हो गये; मुँह फाड़ना जब आगया ।।१६८।।

कुछ महापुरुषों के जीवन-चरित्र याद कर लिये; कुछ रोचक कहानियें सीखली, कुछ आपके और कुछ अन्यों के अनुभव में आई हुई बातें स्मृत करली, कुछ संगतिपूर्वक संभाषण करने का रङ्ग-ढङ्ग आगया—बस ज्योंही मुँह फाड़कर चिल्लाने का ढङ्ग आया कि व्याख्यानदाता, उपदेशक हो गये।

चाहे व्यसन के भक्त हैं, पर नारि में अनुरक्त हैं;
उपदेश करते वक्त तो ये हाय पूरे भक्त हैं।
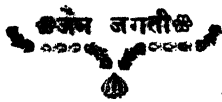
प्रतिकार, मत्सर, द्वेष की जलती उरों में आग है;
वे जाति हित क्या कर सकें जिनके बदन में दाग है ।।१६६।।

ये उपदेशक महोदय चाहे व्यसनी हो, चाहे परस्त्रीगामी हो; परन्तु उपदेश करते समय तो ये सचमुच सच्चे भक्त ही प्रतीत होते हैं। इनके हृदयों में प्रतिकार भावनायें, पारस्परिक राग-द्वेष के भाव, अनल से भी प्रखर और ज्वालमुख रहते हैं। वे भला समाज, देश एवं जाति का क्या कल्याण करेंगे, जिनके हृदय ही निरदाग नहीं हैं।

ऐसे अकिंचन जाति का नेतृत्व नेता कर रहे।
हर युक्ति से, हर भाँति से ये सिद्ध उल्लू कर रहे।
इनके अखाड़े भीम सेनी भूरि संख्यक लग रहे।
ये तो सहोदर पर चलाने वार अवसर तक रहे !! ।।१७०।।

ऐसे अयोग्य एवं दुराचारी नेता हाय ! हमारी समाज का नेतृत्व संभाले हुये हैं। ये हर प्रकार से और हर यत्न से अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। सर्वत्र देखिये, इनके अखाड़े लग रहे हैं और ये अपने बन्धु पर प्रहार करने के लिये उचित अवसर की चिन्ता में निम्न हैं।

विद्वान् इन उपदेशकों में एक मिलता है नहीं ;
ये सब अधूरे, मूर्ख हैं, इनमें न पंडित हैं कहीं।
आचार, शिष्टाचार की तो बात ही है तीसरी ;
है श्वान हर दम भूँकता, पर पूँछ कब सीधी करी ।।१७१।।

इन उपदेशक नेताओं में आपको एक भी व्यक्ति विद्वान्

नहीं मिलेगा। ये सर्व के सर्व अपूर्ण, मतिहीन हैं और अज्ञ हैं। इनके आचरण और शिष्टाचार को देखते हुये बड़ी ग्लानि उत्पन्न होती है। वस्तुतः कुत्ता भूँकता ही रहता है, लेकिन किसी कुत्ते की पूँछ सीधी हुई हो यह आज तक किसीने न देखा और न सुना।

उपदेश करने का अहो! लहजा जरा तुम देखलो;
गर्दभ-गले का फाड़ना, कपिकूदना तुम लेखलो।
भू-कम्प आसन कर रहा, घन-गर्जना ये कर रहे;
जन कर्ण भेदी तालियों की तड़तड़ाहट कर रहे ॥१७२॥

कुछ इन उपदेशक और नेताओं के व्याख्यान देने के ढंग को भी तो देखिये। इनका गदहे के समान मुँह फाड़-फाड़ कर जोर जोर से चिल्लाना, बंदर के समान आसन पर छलाँगें भर-भर कर रहना, आसन (स्टेज) का कंपित होते रहना और इनके मेघनादों पर जनता का कर्णभेदक तालियों की तड़तड़ाहट करना।

शोले उगलते स्वाँस हैं, मुँह से निकलती आग है;
चिनगारियाँ हैं आँख में, ज्वालामुखी-सा राग है।
तन से पसीना ढल रहा, तन का न इनको भान है;
घंटे खिसकते जा रहे, जिनका न कुछ भी ध्यान है ॥१७३॥

इनके मुँह में से अग्नि पड़ रही है, स्वाँस अग्नि के गोले बर्षा रहे हैं, नेत्रों में अग्निकण भर रहे हैं और इनकी वाणी में ज्वालामुखी का हृदय विदारक राग चल रहा है, वदन से

पसीना ढल रहा है, इनको अपनी देह की भी शुद्धि-बुद्धि नहीं है, घंटे व्यतीत होते चले जा रहे हैं, जिनका इन्हें कुछ भी ध्यान नहीं है—ये हैं इनके व्याख्यान देते समय के रोचक दृश्य।

मेरा न है अभिप्राय—आकर्षण न होना चाहिए;
व्याख्यानदाता बस प्रथम आदर्श होना चाहिए।
अभिव्यक्त करने की कला चाहे भले भरपूर हो;
वह क्या करेगा हित किसी का, त्याग जिससे दूर हो॥१७४॥

उक्त कथन से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आकर्षण पैदा न किया जाय। मैं आकर्षण का सर्वथा विरोध करता हूँ, यह बात नहीं। परन्तु आकर्षण से सहस्रों गुण मूल्यवान और महत्व की वस्तु है—व्याख्यानदाता का आदर्श होना। विषय समझाने की कला चाहे व्याख्यानदाता में कितनी भी क्यों न हो अगर उसका जीवन जनता की दृष्टि में पतित है, वह असंयमी है, लोभी है तो उसका कोई भी कला पूर्ण व्याख्यान जनता को लाभदायक नहीं हो सकता।

संगीतज्ञ

संगीत ज्ञाता आज गायक रंडियों से रह गये!
गायन सभी हा! ईश के गायन मदन के बन गये।
सुनकर उन्हें अब भावना विभुभक्ति की जगती नहीं।
कामाग्नि उठती भड़क है मन आग हा! बुझती नहीं॥१७५॥

संगीत के आचार्य भी आज वेश्याओं की भाँति संगीत-कला का प्रदर्शन करने लग गये। गायन भी ईश्वर भक्ति की भावनाओं से रहित होकर काम भावनाओं से भरे होने लग गये, जिनको सुनकर आज ईश्वर की भक्तिभावनाओं के उत्पन्न होने के स्थान में कामाग्नि भड़कती है और मन के तल में प्रज्वलित अग्नि कभी भी शांत नहीं होने पाती।

गायक रिझाने ईश को अब गान हैं गाते नहीं!
वे भक्ति भावों को जगाने गान हा! गाते नहीं।
श्रीमंत उनके ईश हैं, उनको रिझाना है उन्हें।
दुर्वासना मनमत्थ की उनकी जगाना है उन्हें॥ १७६॥

अब संगीतज्ञ ईश्वर का कीर्तन करने के लिये भक्ति की भावनाएँ पैदा करने के लिये भजन स्तवन नहीं करते हैं। आज इन संगीतज्ञों के श्रीमंत ही ईश्वर हैं और इन श्रीमंत-ईश्वर को प्रसन्न करना तथा उनकी कामेच्छा को प्रदीप्त करना ही एक मात्र उनका ध्येय है, कर्त्तव्य रह गया है।

संगीत अब बाजार है, हा! शक्ति हो तो क्रय करो!
तुम गीत में गीतज्ञ ग्राहक को रुचे वह लय भरो!
संगीत यों अब हो गये हा! वस्तु पोषण की अहो!
कविता कवीश्वर कर रहे अनुकूल ग्राहक के अहो! ॥१७७॥

हा! अब संगीत बाजार में विक्रय होने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु हो गया है। पास में पैसा हो तो संगीत श्रवण करो। हे भाग्यशाली गायको! आप भी ग्राहकों की अभिरुचि

देख कर गीत में लय भरा करिये! हा! हंत! आज गायन उदरपूरण करने के अर्थ हो गया। महाकवि महोदय भी, देखिये गायकों की रुचि को ध्यान में रख कर कविता की रचना कर रहे हैं!

मृत को जिलाने की अहो! संगीत में जो शक्ति थी।
हा! गायकों के कण्ठ से जो फूट पड़ती भक्ति थी।
वह गायकों के पेट के हा! फेर में पड़ पच गई।
उत्सव सजाने की हमारी चीज अब वह बन गई॥ ॥१७८॥

संगीत में जो मुर्दों में प्राण फूँकने की शक्ति थी, गायकों की कल ध्वनियों में से जो ईश्वरभक्ति फूट पड़ती थी हा! वह गायकों के उदरपोषण के चिंतन में पड़ कर नष्ट हो गई। संगीत अब केवल हमारे उत्सव सजाने की वस्तु रह गया है।

साहित्य-प्रेम

साहित्यिकों का भाव तो हा! क्यों भला होने लगा;
दो एक हो, उनसे भला हा! अर्थ क्या सरने लगा!
वे भी अगर होते कहीं शशि, सूर तो संतोष था;
जिनवर्ग कोई काल में हा! एक कोविद-कोष था!! ॥१७९॥

हमारी समाज में साहित्यिकों का अस्तित्व तो भला होने क्यों लगा? नाम मात्र के एक दो साहित्यिक व्यक्ति हो तो उनसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। वे भी अगर एक, दो ही होकर भी तुलसीदास (सूर्य्य) और सूरदास (चंद्र) होते

तो भी हम पर्याप्त मान लेते । हा ! किसी समय में यह हमारा संपूर्ण समाज ही एक विद्वान् वर्ग था ।

साहित्य का आनंद हमको हाट में ही रह गया !
हा ! नव सृजन साहित्य का अब बाट में ही रह गया !
विद्वान् कोई भाग्य से यदि हाट पर आ जायगा ;
दुत्कार के वह साथ में दो बाट मुँह पर खायगा !!! ॥१८०॥

अब साहित्य का आनंद हमको दुकानदारी में ही मिलने लग गया है । बाटों (तोले) की व्यवस्था नित नई और भिन्न प्रकार से करने में हमको वह आनंद आता है जो एक साहित्यिक को नित नवीन और नवीन शैली की साहित्य रचना में आता है तो हम उसका निरादर तो करते हैं ही, कभी कभी उसकी मुँह पर दो बाट मारकर पूजा कर देते हैं ।

लिखना हमें निज नाम भी पूरा अभी आता नहीं !
साहित्य में फिर नाम करना किस तरह आता कहीं !
ऐसी निरक्षर जाति में विद्वान् फिर कैसे बढ़ें !
साहित्य-दुर्गमश्रृङ्ग पर यह जाति हा ! कैसे चढ़े ! ॥१८१॥

इसी का फल समझिये कि आज हम लोगों में से अधिकांश को अपना नाम भी शुद्ध लिखना नहीं आता । तब फिर हम साहित्य के क्षेत्र में यश प्राप्त कैसे कर सकते हैं और यश प्राप्त करना जाने भी तो कैसे जाने ? ऐसी निरक्षर जाति में विद्वानों की संख्या कैसे बढ़ सकती है और ऐसी निरक्षर जाति

साहित्य के महान् दुर्गम पर्वत पर कैसे आरोहण कर सकती है।

साहित्य जीवन गीत है, साहित्य जीवन प्राण है,
साहित्य युग का चित्र है, साहित्य युग का त्राण है;
साहित्य ही सर्वस्व है, साहित्य सहचर इष्ट है;
साहित्य जिसका है नहीं, जीवन उसीका क्लिष्ट है ॥१८२॥

साहित्य ही समाज के जीवन का आनंद है, प्राण है, युग का चित्र है और दुर्युग में रक्षक है, समाज सर्वस्व है और अभिन्न कल्याणकारी संगी है। जिस समाज एवं जाति का साहित्य नहीं है, उस समाज एवं जाति का जीवन बड़ा दुःखी है।

साहित्य जैसी वस्तु पर जिसकी उपेक्षा दृष्टि हो;
ऐसा लगे-उस पर हुई अब काल की शुभ दृष्टि हो।
साहित्य जैसी चीज का भी क्या अनादर योग्य है?
हे बन्धुओ! अब क्या कहूँ? मिलता न अक्षर योग्य है!!! ॥१८३॥

साहित्य जैसी वस्तु की अवहेलना करना क्या किसी भी दृष्टि से समुचित समझी जा सकती है! परन्तु फिर भी अगर साहित्य की अवहेलना होती प्रतीत होती हो तो यह समझ लेना चाहिए की क्रूर काल महाराज की अब उस साहित्य की अपेक्षा करने वाली जाति एवं समाज पर कृपा दृष्टि हुई है। साहित्य जैसी वस्तु का भी क्या कभी अपमान करना योग्य है? हे भ्राताओ! आपको अब क्या कहूँ, मुझको कोई योग्य शब्द भी नहीं मिलता कि जिसके द्वारा मैं आपको संबोधन करूँ।

साहित्य

अब आधुनिक साहित्य पर भी ध्यान करना चाहिए ;
साहित्य युग का चित्र है—आ नयन लखना चाहिए ।
साहित्य सरवर था कभी शुचि पद्म भावों से भरा ;
हा ! आज वह अश्लील है अपवित्र घावों से भरा ॥१८४॥

इस युग में रचे जाने वाले साहित्य पर भी तो कुछ विचार करना चाहिए । साहित्य अपने युग का एक विशद चित्र समझा जाता है । अतः इस युग के साहित्य की समालोचना करना अत्यावश्यक है । किसी समय में साहित्य का सरोवर सुन्दर सुन्दर कमल-से निर्मल भावों एवं भावनाओं से परिपूर्ण होकर सुशोभित था । इस युग में वही साहित्य असंबद्ध, अशुद्ध भावों एवं कल्पनाओं को धारण कर अश्लील हो रहा है । जैसे कोई आदर्श एवं पवित्रात्मा महापुरुष शुद्र एवं क्षुद्र प्रकृति वालों के करों में आहत होकर अनादृत होकर पड़ा हो ।

युग, जाति का साहित्य ही बस एक सच्चा चित्र है;
जिसका न हो साहित्य वह होती अकिंचन मित्र ! है ।
साहित्य जीवन-मन्त्र है, साहित्य जीवन प्राण है;
साहित्य ही सर्वस्व है, उत्थान की सोपान है ॥१८५॥

किसी युग एवं जाति का अगर इस पृथ्वी मण्डल पर कोई विशद और सत्य चित्र है तो वह साहित्य ही है । जिस जाति का साहित्य नहीं वह जाति नगण्य है, तुच्छ है, अस्तित्व-हीन है । जाति के जीवन का मूल मंत्र एवं प्राण साहित्य है ।

जाति का सर्वस्व एक मात्र साहित्य है। जाति के उत्थान की पददण्डी साहित्य ही है।

साहित्य में नव वृद्धि तो होती न कुछ भी दीखती;
कुल भ्रष्ट करने की उसे अभिलाष अविरल दीखती।
कुछ इधर से, कुछ उधर से हा! अपचयन हैं कर रहे—
विद्वान, हा! निज नाम से पुस्तक प्रकाशित कर रहे ॥१८६॥

नव नवीन एवं मौलिक रचनाओं से तो साहित्य की वृद्धि नहीं होती दिखाई पड़ती है। केवल उसे भ्रष्ट एवं पतित करने की ही चेष्टायें दृष्टि में आती हैं। इस युग में ऐसे विद्वान् हैं जो कुछ इधर से लेकर, कुछ उधर से लेकर ग्रन्थ रचते हैं और अपने नाम से उन ग्रन्थों को प्रकाशित करते हैं।

साहित्य मौलिक का कौतुक, कबड्डी खेल है;
निर्बोध बच्चों का तथा यह धर-पकड़ का खेल है।
नहिं शब्द वैभव श्लिष्ट है, नहिं भाव रोचक है वहाँ;
रस, अर्थ का पत्ता कहीं मिलता न हमको है वहाँ ॥१८७॥

जितना कष्ट छोटे २ लड़कों को कबड्डी आदि कौतुकों एवं खेलों के खेलने में पड़ता है तथा आँख-मिचावन के खेल में जितना श्रम पड़ता है; उतने कष्ट एवं श्रम से ही आज के साहित्य का सहज एवं सरलतया निर्माण हो रहा है। शब्दों की सुन्दरता एवं भावों की पुष्टतामयी रोचकता आज साहित्य में है ही नहीं। रस एवं शब्दार्थ का भी पूरा पूरा परिचय नहीं हो पाता।

मस्तिष्क होते थे हमारे भक्तिभावों मे भरे!
चरित्र, दर्शन, ज्ञान के निर्भर सदा जिनसे फरे!
त्यागी, विरागी, धर्मध्वज जिनके सदा आदर्श थे!
अध्यात्म तृष्णा के लिये रसस्रोत वे उत्कर्ष थे!! ॥१८८॥

हमारे मस्तिष्क कल्याणमयी भक्ति की भावनाओं से परिपूर्ण रहते थे। हमारे ऐसे भक्ति भावों से भरे मस्तिष्कों से ही आज तक ज्ञान, दर्शन एवं चरित्र जैसे महोत्तम विषयों का ज्ञान उत्पन्न हुआ है, उन मस्तिष्कों के लिये विचारणीय, मननीय अलिखनीय आदर्श एक मात्र त्यागी, विरागी एवं महान् धर्मात्मा पुरुष ही थे जो अध्यात्म पिपासा को शान्त करने के लिये एक परम पावनो पीयूष धारा थे।

शृङ्गार के निर्भर प्रवाहित आज पर वे कर रहे!
संसार में सौन्दर्य्य का अश्लील चित्रण कर रहे!
इन मस्तकों को देख कर हमको निराशा हो रही!
ज्ञानेन्द्रियों का कोष होगा रत्नभृत का भो! नहीं? ॥१८८॥

ज्ञान धारा प्रवाहित करने वाले वे ही मस्तिष्क आज शृङ्गार की यमुना बहा रहे हैं। संसार में पावन सौन्दर्य का अश्लील चित्रण कर यों काम वासनाओं की जागृति और वृद्धि कर रहे हैं। इन मस्तिष्कों के ये दुष्कर्म अवलोक कर हमको निराशा हो रही है। हे परमात्मन्! क्या फिर से ये मस्तिष्क विचार रत्नों से भरे-पूरे न होंगे।

हा! भूरि संख्यक ग्रंथ, पुस्तक रात दिन हैं छप रहे;
इनके लिये ही आज कितने छाप खाने चल रहे!

व्यय द्रव्य अगणित हो रहा, पर लाभ कौड़ी का नहीं !
मैले; अरोचक भाव हैं; है ग्रन्थ जोड़ी का नहीं ! ॥१६०॥

वैसे ग्रन्थ एवं पुस्तकें पर्याप्त संख्या में रात दिन प्रकाशित हो रहे हैं। इनके प्रकाशन के लिये ही कितने ही छापेखाने चल रहे हैं। अपरिमित धन इनके प्रकाशन में इस प्रकार व्यय तो हो रहा है, परन्तु लाभ एक कौड़ी का भी नहीं। ग्रन्थ के भाव अपवित्र ही एवं अरोचक हैं और काव्य की दृष्टि से तो वह सर्वथा अयोग्य ग्रन्थ हैं ही।

हो चोर, लम्पट, धृष्ट, वंचक, मूर्ख, खर, मार्गोन्मुखी ;
कामी, कुचाली, द्रोहप्रिय औ सर्वथा धर्मोन्मुखी !
पर इन नरों के आज जीवन हैं प्रकाशित हो रहे ;
साहित्य में हा ! हाँ अपावन ग्रन्थ संमिल हो रहे !! ॥१६१॥

ऐसे मनुष्यों के आज जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहे हैं जो चोर हैं, लम्पट्टी हैं, शुद्रप्रकृति हैं, ठग हैं, मूर्ख हैं, अपढ़ हैं, कुपथिक हैं, व्यभिचारी हैं, व्यसनी हैं, द्रोही हैं और सर्व प्रकार से धर्म के विरोधी हैं। बड़ा दुःख है, ऐसे शुद्रों के जीवन चरित्रों से परम पावन साहित्य का भण्डार बढ़ाया जा रहा है !

आख्यायिकोपन्यास हम भी अन्य सम हैं रच रहे ;
लिखना न आता है हमें; प्रतियोग पर हैं कर रहे !
यों दुषित संस्कृति कर रहे फैला दुषित वातावरण ;
हम कामपूजन कर रहे रतिभाव का कर जागरण !! ॥१६२॥

२०

अन्य समाज के साहित्यिकों के समान हम भी सामाजिक कहानियां एवं उपन्यास रच रहे हैं। परन्तु वस्तुतः हम को कहानियें और उपन्यासों की रचना करना नहीं आती है और मात्र प्रतियोगिता के भावों से प्रेरित होकर ऐसा कर के कुत्सित कहानियों एवं उपन्यासों की रचना से वातावरण को विकृत कर संस्कृति को बिगाड़ रहे हैं। शृंगारिक भावों को जमा कर हम मात्र मदनदेव की आराधना कर रहे हैं

त्यक्ता, कुचाली, सुन्दरी, रतिरूपसी, मन-मोहिनी,
प्रिय-प्रेयसी, पुर-भामिनी, अभिसारिका, जन-सोहिनी!
कवि, लेखकों की ये सभी उल्लेखनीया नायका,
फिर क्यों न पढ़ कृति आपकी पथभ्रष्ट हो कवि शायका!!॥१६३॥

आज के कवियों के ग्रन्थ एवं काव्यों की चरित्रनायिका ऐसी स्त्रिया हैं जो सर्वथा सर्वांशतः पतिता है, पति ने जिन्हें घरबहिष्कृता कर दी है जो वासनाओं को जागृत करने के लिये सफल सुन्दरी हैं, लावण्य में जो रति की होड़ करती हैं, मन हरण करने में जो परम चतुरा हैं, जिनके प्रति हर एक का प्रेम सहज ढलता है, वैश्यावृत्ति करती हैं, परपुरुष सेविका है, जन साधारण में जिनका खुला व्यवहार है—ऐसी नायिकायें आज कवि एवं लेखकों के निकट वर्णनीया हैं फिर कवि एवं लेखक! आपकी कृतियों को पढ़ कर सुकोमल चित्ता अनवद्यांगी सुकुमारियें कुत्सित प्रभावों से प्रभावान्वित होकर पतिता क्यों न होवे।
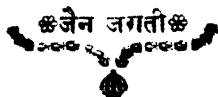
ये ग्रंथ अब इस काल में साहित्य के मुख-अंश है।
निःकृष्ट नाटक, रास, चंपू हाय! अब सर्वांश है!
उल्लेख कर रतिरूप का कवि काम रस बतला रहे।
कामी जनों के काम को हा! रात दिन भड़का रहे॥१६४॥

ऐसे ग्रन्थ जिनकी चरित्रनायिकायें ऊपर वर्णिता स्त्रियाँ हैं आधुनिक साहित्य में प्रधान स्थान रखते हैं और शेष सर्व रिक्तस्थानों पर निर्विवाद रूप से पूर्णतया प्रतिष्ठित हैं निःकृष्ट नाटक, रास, चंपू! कविगण इस प्रकार सुन्दरियों का मोहक ढंग से चित्रण कर कामरस को प्रवाहित करने में संलग्न हैं, कामीपुरुषों की कामवासनाओं को उद्दीप्त कर हैं।

हा! आधुनिक साहित्य में नहि शील वर्णन पायगा;
कुल्टा, कुचाली नारि का अख्यान केवल पायगा।
पढ़कर जिन्हें हम गिर रहे, हैं गिर रही सुकुमारियाँ;
हा! जल-पवन जैसा मिले, वैसी खिलेंगी क्यारियाँ॥१६५॥

इस युग में रच जाने वाले साहित्य में ऐसे ग्रन्थ नहीं मिलेंगे जिनमें शील, शिष्टाचार पर कुछ लिखा गया हो। कुल छलभरी एवं पुँश्चली स्त्रियों के आख्यान ही उन ग्रन्थों में मिलेंगे। जिनको पढ़कर हम और हमारी सुकुमार बहिनें दोनों ही गिर रहे हैं। जैसा अच्छा या बुरा जलवायु प्राप्त होगा वैसी ही कृषि की क्यारियों का अच्छा-बुरा विकाश होगा!

आता न अक्षर एक है, तुकबंध करना जानते;
ग्रामीण रचना का सृजन साहित्य-रचना मानते।

निःकृष्ट ऐसे काव्य भी हा ! काव्य माने जा रहे ;
विद्वान कोई भी नहीं सच्चे दृगों में आ रहे ॥ १९६ ॥

एक शब्द का भी जिनको प्रयोग तक करना भलीभाँति नहीं आता है, जो केवल तुकबन्ध करना जानते हैं वे अपनी ग्रामीण रचनाओं को साहित्यिक रचना समझते हैं। और उनके ऐसे अधम ग्रन्थ ही आज जनता में काव्य समझे जा रहे हैं। मेरी दृष्टि में तो कोई भी सच्चा विद्वान् नहीं दिखाई दे रहा है।

दौरात्म्य कवि का पात्र है, कथनीय भ्रष्टाचार है।
स्वच्छंदता, दुर्वासना, कुविचार कविता सार हैं।
कवि स्वाद अमृत के चखाकर पात्र विष से भर रहे।
कलि काल का आदेश पालन तो नहीं हैं कर रहे ? ॥१९७॥

आधुनिक कवियों के निकट चरित्र नायक दुरात्मा पुरुष है और कविता में वर्णनीय वस्तु स्वच्छन्दता, दुर्वासना एवं कुविचार हैं। पूर्वज कवियों ने अमृत के प्याले भर भर कर पिलाकर एक छत्र आदर्श प्रतिष्ठा स्थापित की थी क्या आधुनिक कवि अपने भक्तों एवं पाठकों को उस अलक्ष्य प्रतिष्ठा की ओट लेकर विष के प्याले पिला रहे हैं, या ये कविगण इस कलियुग में यमराज के आदेश का परिपालन जनता को भुलावे में डाल कर तो नहीं कर रहे हैं।

अब आत्मबल सुविचार पर लेखक न लिखते लेख हैं।
आदर्शता, दृढ़ धैर्य के होते नहीं उल्लेख हैं।

प्राचीन आगम शास्त्र तो इनके लिये ना चीज हैं ;
प्रक्षिप्त नभ में पाठको ! होता न पुष्पित बीज है ॥१९८॥

आधुनिक लेखक गण अब आध्यात्मिक एवं सुविचार देने वाले विषयों पर लेख नहीं लिखते और न उनके लेखों में संकट में धैर्य्यच्युत न होने के और आदर्श पर अडिग रहने के ही वर्णन होते हैं। इन लेखकों के निकट प्राचीन आगम एवं धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय मनन और अपने पाठकों से समक्ष इन धर्मग्रन्थों का रहस्योद्घाटन, महत्वप्रदर्शन अरुचिकर हैं। धर्म शिक्षा ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के हृदय को सुविचारों की कृषि के योग्य बनाती है। इन कवि एवं लेखकों के धर्मशिक्षाहीन विषय ठीक वैसे पल्लवित एवं फलित होना तो दूर रहा अंकुरित भी नहीं होते जैसे आकाश में फेंका हुआ बीज कभी भी अंकुरित नहीं होता है।

प्रतिकार संकट का नहीं करना सिखाते हैं कहीं;
जब तक न हो पूरा पतन विश्राम इनको है नहीं !
कवि लेखको ! तुम धन्य हो, हा कर्म अच्छा कर रहे ;
अवगुण सिखाते, पतित करते, च्युत प्रतल से कर रहे !!॥१९९॥

आधुनिक कवि एव लेखक संकटों का निराकरण (नाश) करना नहीं सिखाते बल्कि जब तक संकटस्थ मानव का पूर्ण पतन न हो जाय तब तक उसको ये धैर्य्यस्खलित, कायर बनाते हुये न हिचकेंगे, न रुकेंगे। हे कवि गण ! लेखकगण ! आप धन्य है। अपनी प्रतिभा एवं कलम का अच्छा प्रयोग कर रहे हैं ! आप अवगुणों को सिखाते हैं, पतित करते हैं और फिर

गिरते को ऐसा धक्का देते हैं कि कहीं उसे ठहरने को या अटक जाने को भी स्थान न रह जाय तब आप का कविकर्म सफल होना समझा जाता है !!

आदर्श नर औ नारि के जीवन लिखे जाते नहीं ;
आख्यायिकोपन्यास के ये अब विषय होते नहीं !
नहिं शौर्य्य के, नहिं धर्म के हमको पढ़ाते पाठ हैं ;
हा ! आधुनिक साहित्य के तो और ही कुछ ठाट हैं ! ॥२००॥

आदर्श स्त्री एवं पुरुषों के प्रभावोत्पादक जीवन अब ये नहीं लिखते हैं। और न ऐसे पुरुषों के चरित्र अब कहानी एवं उपन्यास के विषय समझे जाते हैं। ये लेखकगण अब हमको वीरता एवं धर्म के पाठ नहीं पढ़ाते हैं। हा ! वर्तमान साहित्य का झुकाव कुछ और ही विचित्र प्रकार का है जो मानव समाज का अनिष्टकर, एवं अमंगल कारी है।

शुचि दान संयम, शील के, तप ज्ञान, ब्रह्मा चार के—
उल्लेख लेखक, कवि करें जो आज धर्माचार के,
होगा न विक्रय ग्रन्थ का, इनमें न रस इनको कहीं !
आनन्द जो रतिरास में वैराग्य में इनको नहीं !! ॥२०१॥

इस काल में अगर लेखक एवं कवि दान, संयम, शील, तप, ज्ञान, ब्रह्मचर्य और और धर्माचारों के विषयों पर ग्रन्थ रचने लगे तो उनके ऐसे ग्रन्थों की बिक्री भी नहीं होगी और मुख्य बात यह भी है कि ऐसे ग्रन्थों की रचना में इनकी स्वयं की रुचि भी नहीं लगती। जो आनंद स्त्रैणविषय के वर्णन करने में आता है वह वैराग्य के वर्णन में इनको नहीं मिलता है।

सभायें

इतनी सभायें हैं हमारी और की जितनी नहीं;
ज्यों-ज्यों कलह बढ़ते गये, त्यों-त्यों सदा खुलती रहीं।
लड़ना, जहाँ भिडना पड़े; अनिवार्य ये होती वहीं;
करने सुधारा जाति का का खोली न हैं जाती कहीं !!॥२०२॥

हमारी समाज में सभायें इतनी संख्या में हैं कि किसी अन्य समाज में इतनी सभायें नहीं होंगी। ज्यों-ज्यों हमारी समाज में पारस्परिक कलह बढ़ते गये, त्यों-त्यों ये भी खोली जाती रहीं। सभाओं का खुलना वहीं अनिवार्य हो जाता है जहाँ समाज के दलों में मुठभेड़ व झगड़े होने की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। जाति एवं समाज का उद्धार एवं सुधार करने की दृष्टि से ये सभायें प्रायः नहीं खोली जाती हैं।

इतिहास लेकर आप कोई सभा का देखलें;
उनके किये में जो यदि अणुमात्र हित भी लेखलें।
तो जो कहें, वैसा करूं; मुण्डन हमारा हो गया:
हा ! गाँठका तो धन गया: घर में बखेड़ा होगया !!२०३॥

आप किसी भी सभा का इतिहास आदि से आज तक का अवलोकन करिये, आपको उसमें ऐसा अणुमात्र भी कार्य नहीं मिलेगा जो सर्व समाज की हित की दृष्टि से किया गया हो। अगर मिल जाय तो यह शर्त रही कि आप जो कहेंगे मैं वह सेवा करूँगा ! हमारा इन सभाओं ने सर्वनाश कर डाला। इनके उद्घाटन, पोषण, जीवन मरण में अगणित द्रव्य

भी व्यय हुआ और वह सब व्यर्थ गया और फिर ऊपर से कलह भी सुदृढ़तम हो गया।

ज्यों अधमरा तलवार का फिर सह न सकता वार है;
ठोकर लगे को फिर लगे धक्का—पतन दुर्वार है।
जितनी सभायें खुल रहीं—प्रतिशोध-गह्वर-गड्ड हैं।
हम नेत्रहीनों के लिये ये हाय! गहरे खड्ड हैं!! ॥२०४॥

अगर अर्धमृत पर फिर तलवार का प्रहार किया जाय तो वह उसे सहन नहीं कर सकेगा। ठोकर खाते हुये को अगर पीछे से धक्का दिया जाय तो वह सभल नहीं सकेगा—प्रथम के लिये मृत्यु और द्वितीय पतन अनिवार्य रूप से प्राप्त होगा। ठीक इसी प्रकार ये जितनी भी सभायें खुली हुई हैं अथवा और नवीन खुल रही हैं सब की सब बदला लेने की भावनाओं से प्लावित है और प्रतिवार करने के समुचित अति अगाध गड्डस्थल हैं कि गिरने पर फिर जहां से पुनः बाहर निकलना अति असम्भव है। सचमुच हम अज्ञानी एवं अन्धभक्तों और अविवेकी श्रद्धालुओं के लिये ये सभायें गहरे खड्ड हैं।

करना सुधारा है नहीं, इनके दुधारा हाथ में।
करने जिसे हो एक के दो, हैं उसी के साथ में।
प्रख्यात होना हो जिसे, अथवा जिसे धन चाहिए।
मिल जायगी सुविधा सभी उसको यहाँ जो चाहिए ॥२०५॥

सचमुच इनका ध्येय समाज-सुधार का नहीं है। इन

सभाओं के हाथों में सदा नङ्गी तलवार है। जहाँ एक के दो टुकड़े करने हों वहाँ इनका सहयोग सहज प्राप्य है। किसी व्यक्ति को ख्याति अथवा धन चाहिए तो इन दोनों प्राप्ति के लिये उस व्यक्ति को यहाँ हर प्रकार सुविधा मिलेगी। अर्थात् ये सभाय फूट फैलाती हैं और गुण्डे इनकी आड में धन और मिथ्या नाम प्राप्त करते हैं।

मण्डल

अब मण्डलों का काम तो भोजन कराना रह गया;
कर्तव्य सेवा, धर्म सब जूते उठाना रह गया।
सब जाति में हो संगठन ये ध्येय इनके हैं कहाँ;
है ब्रह्मव्रत जिनमें नहीं, उनमें भला हित है कहाँ? ॥२०६॥

अब मण्डलों का कर्तव्य मेले, महोत्सवों में भोजन की व्यवस्था करना तथा जूतों की सभाल रखना मात्र रह गया है और मण्डल इसी को सेवा एवं धर्म का परिपालन समझते हैं। जाति में संगठन हो यह अब इन मण्डलों का ध्येय नहीं रहा है। जिन मण्डलों में वस्तुतः महाव्रत का परिपालन नहीं होता है उन मण्डलों से क्या कल्याण की आशा की जा सकती है?

स्त्रीजाति व उसकी दुर्दशा

हे मातृ! भगिनी! अम्बिके! जगदम्बिके! विश्वेश्वरी!
होती न जानी थी अहो! यह अवदशा मातेश्वरी;

चेरी अहो ! तुम हो गई, तुम अब रमण की चीज हो !
इस अवदशा की आप तुम मेरी समझ में बीज हो ॥२०७॥

हे माते ! तू ही बहन है, सरस्वती है, पार्वती है, लक्ष्मी है। हे जगद्वंदनीये मातेश्वरी ! तेरी यह अवदशा हो जायगी, यह कभी भी नहीं जाना था। अहो आज तुम दासी हो, भोग की एक वस्तु हो। मेरी दृष्टि में यह सब तुम्हारा स्वयं का दोष है जो कि आज तुम इतनी पतित हो।

तुम में न वे पति-भाव हैं, तुम में न स्त्री के कर्म हैं !
मूर्खा सदा रहना तुम्हारा हो गया अब धर्म है !
गृह नायिका, गृह देवियाँ होने न जैसी आज हो !
कुलचण्डिनी, कुलखण्डिनी, कुलभक्तिका तुम आज हो !॥२०८॥

तुम अब वे आदर्श पतिव्रता एवं सर्वगुण सम्पन्ना स्त्री नहीं रही हो। अमर अमर मूर्खा रहना तो तुम्हारा एक मात्र ध्येय-सा बन गया है। तुमको जो पहिले घर की लक्ष्मी अथवा प्रधाना समझा जाता था, अब तुम उस पद के योग्य नहीं रह गई हो, वरन् तुम आज कुल में कलहा कारिणी, कुल का उच्छेद करने वाली एवं कुल का सर्वनाश करने में अनुरक्ता हो।

हा ! आज तुम से वंश की शोभा न बढ़ती है कहीं !
नर-रत्न तुम अब दे सको—वह शक्ति तुम में है नहीं !
बंध्या सभी तुम हो गई—यह बात भी जँचती नहीं;
सन्तान की उत्पत्ति में लज्जित करो उरगी—सही ॥२०९॥

हे माताओ ! अब तुम्हारे वंश एवं कुल की शोभा में वृद्धि
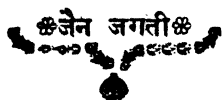
नहीं होती है। तुम में अब पुत्ररत्न देने की भी सामर्थ्य नहीं रह गई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अब तुम सब बाँझ हो गई हो और यह किसी प्रकार भी संभव नहीं क्योंकि अब तो तुम संतान इतनी उत्पन्न करती हो कि सर्पिणी भी इतनी संतान क्या पैदा करेगी!

शीला, सुशीला, सुन्दरा मन की न अब तुम रह गईं!
हा साध्वियें तो मर गई, तुम कर्कशायें रह गईं!
उजड़े भवन को आज तुम प्रासाद कर सकती नहीं!
टूटे हुये तुम प्रेम बंधन जोड़ फिर सकती नहीं!! ॥२१०॥

अब तुम पूर्व जैसी हृदय की कोमला, सलज्जा एवं विनीता नहीं हो! हा! आदर्श स्त्रियाँ तो मर गई और तुम कलह कारिणी स्त्रियें बच गई हो। नष्टप्राय हुये भवनों को वैभव-शाली प्रसाद बनाने की तुम में जो सामर्थ्य थी वह सामर्थ्य अब तुम में नहीं, है और न तुममें टूटे हुये प्रेम के बधनों को पुनः जोड़ने की ही शक्ति है।

लक्ष्मी कहाने योग्य री! अब हो नहीं तुम रह गई!
संपन्न करने की तुम्हारी शक्तियें सब बह गई!
विष-फूट के बोना तुम्हारा बीज का अब काम है!
वामा तुम्हें जग कह रहा—वामा उचित ही नाम है ॥२११॥

अब तुम लक्ष्मी कही जाने के योग्य नहीं हो क्यों? लक्ष्मी के समान अब तुम्हारे में गुण नहीं हैं। गृह को सर्व प्रकार से सम्पन्न करने की जो तुम्हारे में शक्तियें थीं, वे सब बह गई हैं।

अब तो विषैली फूट के बीज बोना तुम्हारा प्रधान कर्म है। संसार तुमको वामा (उलटा) कह कर पुकारता है, वस्तुतः तुम्हारा वामा नाम समुचित ही है क्योंकि अब तुम्हारे सब ही कर्म उल्टे हैं।

निर्बुद्धिपन औ नारिहट नारी! तुम्हारा पेख्य है।
नव वेष वेश्या-सा तुम्हा आज नारी! लेख्य है।
स्त्रीदक्षता, चातुर्यता, लज्जा न तुम में दीखती।
मूर्खा, परार्या फूहड़ा सब भाँति से हो लीखती!! ॥ २१२ ॥

हे नारी! आपका दुराग्रह और निर्बुद्धिपना तो अवलोकनीय ही है। साथ ही वेश्या के सदृश आपका यह वेष-शृंगार भी देखने योग्य है। वस्तुतः अब वह स्त्री का कुशलता, चतुराईएवं लज्जा आप में नहीं दिखाई पड़ती। सत्य कहूँ तो आप अब सदा मूर्खा, फूहड़ा और परायी स्त्री-सी ही ज्ञात होती हैं।

तुम शील-भूषण भूल कर हा! नेह भूषण से करो!
प्राणेश अपना छोड़कर तुम स्नेह दूजे से करो।
धिक्कार तुमको आज है, तुम डूब पानी में मरो।
है जल रही घर में अनल-तुम क्यों न जल उसमें मरो॥२१३॥

तुम पतिव्रत धर्म को तिलाञ्जली देकर अब आभूषणों पर रीझती हो। अपने प्राणनाथ को परित्यक्त कर अन्य पुरुष की इच्छा रखती हो। तुम्हें कोटि कोटि धिक्कार है। इस जीवित रहने की अपेक्षा तुम्हारे लिये पानी में डूब मरना अच्छा है। तुम्हारे घर में ही आग्नि जल रही है, उसी में जल कर इस कलंकित जीवन का अंत क्यों नहीं कर देती हो।

संतान-पोषण भी तुम्हें करना तनिक आता नहीं !
तब मातृ तुमको क्यों कहें, तुम शत्रु हो माता नहीं !
हे नाथ ! माता इस तरह मातृत्व यदि खोने लगें !
संतान बोलो किस तरह गुणवान फिर होने लगे ॥२१४॥

हे स्त्रियो ! आपको अपनी संतान का पालन-पोषण करना भी जब भली प्रकार नहीं आता है तो फिर आपको माता क्यों कहा जाय ! आप शत्रु हैं माता नहीं। हे परमात्मन् ! अगर मातायें इस प्रकार मातृत्व खोने लगेंगी तो फिर किस प्रकार संतान गुणवान बन सकेगी

नर का नारी पर अत्याचार ।

नर ! नारियों के इस पतन के आप जिम्मेवार हो ;
तुम कोमलांगी नारियों पर हाय ! पर्वत-भार हो ।
अधिकार इन पर कर लिया हा ! स्वत्व इनका हर लिया ।
रसचार करने के लिये दीक्षित उन्हें है कर लिया ॥ २१५ ॥

हे पुरुषो ! स्त्रियों के इस महा पतन के उत्तरदायी आप हैं। आप लोग इन सुकुमार अंगनाओं पर गिरि के समान भार हैं। आपने इन को आधीन कर इनका सर्वस्व हरण कर लिया। विषय भोग करने के लिये ही आपने उन्हें विवाह की दीक्षा दी है।

रमणी कहीं है महल की, पर्दानशीना है कहीं।
है थापती गोमय कहीं, व्यंजन बनाती है कहीं।

व्ययशील इनका दीन-सा इस भाँति जीवन हो रहा।
मल-मूत्र धोना रात-दिन कर्तव्य इनका हो रहा॥ २१५॥

इन स्त्रियों की पराधीनता एवं दीनावस्था की भी कहीं सीमा है। कहीं ये प्रासाद में उपभोग की वस्तु हैं तो कहीं ये बाहरी जगत की दृष्टि से बचाकर पर्दे में ही रक्खी जाती हैं, कहीं ये गली-वीथियों में गोबर उठाती फिरती हैं तो भोजनादि बनाने का कार्य करती हैं। इस प्रकार इनका समस्त जीवन व्यतीत हो रहा है। पुत्र एवं पुत्रियों का, गुरुजनों का मल-मूत्र धोना ही इनका चौबीसों घन्टों का कर्तव्य हो रहा।

कहला रही अर्धाङ्गिनी, पर हा! न पद सम मान है!
दुत्कार, डण्डे मारना तो हा! इन्हें वरदान है!
कुल्टा, कुचाली, राँड, रण्डी नाम इनके पड़ रहे!
सम मान था नर के कभी, यों मान उनके झड़ रहे!! ॥२१५॥

स्त्री कहलाने को तो अर्धाङ्गिनी कही जाती है, परन्तु हाय! उनका इस पद के अनुसार मान कहाँ है। धिक्कारना, डन्डे मारना तो उन विचारी अबलाओं को वरदान हो गये हैं। कुल्टा, कुचाली, राँड-रंडी आदि अपनामों से उन्हें संबोधित किया जाता है। हाय! जिनका मान कभी पुरुषों के बराबर समझा गया था एवं रक्खा गया था आज उनस्त्रियों का मान इस प्रकार झड़ रहा है अर्थात् इस प्रकार पददलित हो रहा है।

श्रुति, नाक इनका काटना! इनको छड़ी से दागना!
देना न भोजन मास भर! पटहीन घर से काढ़ना!

माता पिता को बोलना अपशब्द इनके हाय! रे!
आसान हैं वरदान ये, अब नारि हैं असहाय रे!! ॥२१६॥

स्त्रियों का नाक, कान काटना, गर्म गर्म शलाकाओं से उनकी देह को दागना, उनको माह माह तक भोजन न देना, घर से बस्त्रहीन करके उनको निकलना और उनके माता-पिता को अपशब्द बोलना पुरुषों के लिये एक अति साधारण बात है। हाय! स्त्री अब सब प्रकार से असहाया है, दीना है।

सेवन परायी नारि का भी हा! हमारा क्षम्य है।
पर परपुरुष का दर्श भी उनका न होता क्षम्य है!
सम्मान नारी जाति के जिस जाति में होते नहीं!
उस जाति के हा! शुभ दिवस आये, आवेंगे नहीं ॥२१६॥

हम तो परस्त्रीगमन करें और हमारा वह भी क्षम्य है। अबला स्त्री अगर किसी भद्रपुरुष के दर्शन मात्र भी करलें तो यह भी उसका अक्षम्य अपराध हो जाता है। जिस जाति में स्त्रीवर्ग का मान नहीं है, उस जाति का भाग्योदय नहीं हुआ है और नहीं होगा।

नर क्या सुता के जन्म को दुर्भाग्य फल कहते नहीं?
उनको पढ़ाने के लिये नर यत्न क्या करते कहीं?
होकर पिता नर सुत, सुता में भेद कैसे जानते?
उनके पतन में दोष नर निज को न कैसे मानते? ॥२२२॥

पुत्री के जन्म पर पुरुष अपना दुर्भाग्योदय समझते हैं और पुत्रियों को पढाने की चेष्टा भी पुरुष तनिक मात्र भी नहीं

करते। हाय! पुरुष, पिता हो कर भी पुत्री और पुत्र में भेद समझते हैं; फिर सोचिये, पुरुष स्त्री जाति की अवनति में अपना दोष मानते हुये क्यों हिचकते हैं।

व्यापार

कौशल-कला व्यापार की अब वे न बातें हाय! हैं!
मस्तिष्क में हम क्या करें उठती न चालें हाय! हैं!
हा! देश निर्धन हो रहा, हा! जाति निर्धन हो रही!
सन्तान पाकर हाय! हम-सी मातृभूमी रो रही!! ॥२२१॥

अब पूर्व जैसा हमारा व्यापार, कला-कौशल समुन्नत नहीं है। हम भी क्या करें; मस्तिष्क में भी वैसे उपाय उठते ही नहीं हैं। हा! देश और जाति दोनों कंकाल दरिद्र बनते जा रहे हैं। यह हमारी जन्मभूमि हम जैसी संतान को प्राप्त कर (अपने भाग्य को) रो रही है।

अब तो न जगडू शाह औ मुंझाल जिनदत्त सेठ है!
मक्कार साहूकार हैं, घर में न बाहर पेठ है!
व्यापार भारत का कभी था जगत भर फैला हुआ!
तुम देखलो हा! आज वह व्यापार गलियों का हुआ ॥२२३॥

अब श्रेष्ठी जिनदत्त, मुंझाल महता तथा जगडूशाह नहीं रहे। इस युग के श्रेष्ठी (शाहूकार) प्रथम गणना के धूर्त हैं, जिनका कहीं भी विश्वास नहीं है। एक समय था जब भारतवर्ष का व्यापार समस्त संसार में फैला हुआ था। आज देखिये वही भारत गली-कूचों में व्यापार करने योग्य रह गया है।

व्यापार मुक्ता, रत्न का अब स्वप्न की-सी बात है!
चूना-कली में भी नहीं जमती हमारी बात है!
बदला जमाना हाय! या बदले हुये हम आप हैं!
हम पर भयंकर काल की गहरी लगी मुख छाप है ॥२२३॥

मुक्ता, माणिकों का व्यापार करना हमारे लिये अब स्वप्न की बाते हैं। अधिक तो क्या, अब चूना-कली का भाव करते समय भी हम हिचकाते हैं। समय ही परिवर्तित हो गया या हमारी ही कायापलट हो गई या हमारे मुखों पर कृतान्त की मुद्रा गहरी लग गई।

व्यापार में थे अग्रणी हा! आज पीछे भी नहीं।
थे विश्वपोषक वैश्य हम, अब पेट की पटती कहीं।
व्यापार कौड़ी का हुआ, कौड़ी बन हम साथ में।
अब तेल, मिर्च रह गई, तकड़ी हमारे हाथमें ॥२२४॥

व्यापारिक क्षेत्र में जहाँ हम सब से प्रधान रहते थे वहाँ अब हमारी गणना सब मे पिछड़े हुओं में भी तो नहीं रही! एक समय था जब हम विश्व भर का भरण-पोषण करने वाले वैश्य कहलाते थे, आज अपने ही पेट भरने के लाले पड़ रहे हैं। व्यापार भी नष्ट हो गया और साथ में हम भी विनष्ट हो गये। अब हम वैश्यों के करों में तकड़ी है और हम तेल-मिर्च तोलने योग्य रह गये हैं।

था सत्यमय व्यापार, शाहूकार हम थे एक दिन!
अब हा! हमारा रह गया है झूठ में व्यापार घिन!

२१

हमको हमारे धर्म से भी झूठ प्रियतर होगया।
अब तो कहें क्या झूठ तो हा! स्नायु तन का हो गया॥२२५॥

एक युग था कि हम सत्यव्रती व्यापारी थे और हमारा व्यापार सत्यमय था; परन्तु लज्जा की बात है कि आज हम बिना झूट के व्यापार करही नही सकते हैं। यह कितने बड़े दुःख की बात है कि आज हमको झूठ धर्म से भी प्रियतम लगता है। अधिक क्या कहें! अब तो झूठ हमारी देह की प्राणवायु वाहक नाड़ी है, जिसका अवरोध हो जाने पर हम एक क्षण भी व्यापार क्षेत्र में जीवित नहीं रह सकते।

कर झूठ-सच्चा हाय! हम निज बंधुओं को लूटते!
धन-रक्त को उनके निरंतर जोंक बन कर चूँसते!
वंचक, प्रपंची, धूर्त अब हमको सभी कहने लगे!
व्यापार के संबंध हम से बंध सब करने लगे!॥२२६॥

व्यापार में झूठ-साँच करके हम अपने ही भ्राताओं को लूटते हैं और इस प्रकार उनके धनरूपी रक्त का शोषण निरंतर करते रहते हैं। हमारा यह स्वभाव अब प्रसिद्ध हो गया है। अतः सब लोग हमसे व्यापारिक संबंध दिनो-दिन कम कर रहे हैं और हमको ठग, विश्वासघाती और झांली समझते हैं।

हम आज भी श्रीमंत हैं, व्यापार भारी कर सकें,
लाकर विदेशों से तथा धन राशि घर को भर सकें।
जिस चीज की सर्वत्र हो अति माँग वह पैदा करें,
कल कारखाने खोल दें, पक्का सदा धंधा करें॥२२७॥
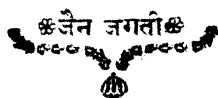
पूर्व जैसे श्रीमंत तो यद्यपि हम नहीं हैं, फिर भी अभी भी श्रीमंत हैं और भारी व्यापार करने की क्षमता रखते हैं। अगर हम चाहें तो आज भी विदेशों का धन लाकर हम देश को समृद्ध बना सकते हैं। जिस वस्तु की अधिक चाहना हो, वह वस्तु हम उत्पन्न करें और सारे देश भर में ऐसे कारखाने खोलें जो देश की आवश्यकताओं को यहीं पूरा करदें और विदेशों में भी पक्का धंधा किया जा सके।

मिलती हमें जब दाल-रोटी कौन यह झंझट करें।
है कौन सी हम में पड़ी ऐसी विपद, खटपट करें।
सस्ता विदेशी बंधु को हम माल कच्चा बेचते।
फिर एक के वे पाँच सौ लेकर हमें हैं भेजते ॥२२८॥

परन्तु हमको जब दाल-रोटी आनंद से मिल जाती है, यह व्यर्थ ही खटपट क्यों करें। विदेशी व्यापारियों को हम अति साधारण मूल्य में भारत का कच्चा माल बेचते हैं और फिर वे विदेशी व्यापारी उस कच्चे माल से अनेक प्रकार की वस्तुयें तैयार कर हमको ही भेजते हैं और पाँच सौ गुणी कीमत वसूल करते हैं—यह है हमारे व्यापार का रंग और व्यापारिक नीति का ढंग।

धू, फाटका, सट्टा हमारा मुख्य धंधा रह गया।
संभव जरा है आ गई, मस्तिष्क जिससे फिर गया।
जापान, जर्मन, फ्रांस जिनमें अन्न तक भी था नहीं।
वे देखलो संपन्न हैं, अब शील भारत हा! नहीं ॥२२९॥

अब हमारा मुख्य धंधा तो जूआ खेलना, सट्टा और फाटका करना है। संभव है व्यापारिक समाज की वृद्धावस्था आ गई है, अतः मस्तिष्क में वह प्रौढ़ता न रह कर विपरीत बुद्धि घर कर गई है। जापान, जर्मन और फ्रांस जिनमें अन्न के भी लाले पड़ते थे, आज देखिये वे प्रदेश सर्वप्रकार से संपन्न हैं और यह लक्ष्मीवान भारतवर्ष अब लक्ष्मीवान नहीं रहा।

सर्वस्व घर का जा रहा, हा! क्यों न हम हैं देखते।
हम क्यों विदेशी माल में मिलता नफा हैं देखते।
सामान सारा भर गया घर में विदेशी हाय! क्यों।
घर से स्वदेशी माल को हमने निकाला हाय! क्यों?॥२३०॥

हम उत्तरोत्तर निर्धन होते चले जा रहे हैं यह हम क्यों नहीं सोचते हैं। विदेशी वस्तुओं के क्रय-विक्रय में मिलते हुये अकिंचन लाभ को हम लाभ क्यों समझ रहे हैं? अर्थात् अगर वे ही वस्तुएँ यहीं भारतवर्ष में बनायी जायँ तो कितना भारी लाभ होवे। हमारे घरों में समस्त विदेशी सामान भर गया है और स्वदेशी सामान को हमने तिलांजली क्यों दे दी? यह कितने बड़े दुःख की बात है।

हे नाथ! लक्ष्मी का कैसा विचित्र स्वभाव है।
जो देश के प्रति बढ़ रहे कुछ भी नहीं सद्भाव है।
जब तक विदेशी माल का आना न कम हो पायगा।
यह उत्तरोत्तर दीन भारतवर्ष होता जायगा॥२३१॥

हे परमात्मन् ! लक्ष्मी का ऐसा कैसा प्रभाव है, कि जिसके ऊपर इसकी सुदृष्टि होती है, उसकी दृष्टि कुदृष्टि हो जाती है, देश के प्रति उसके हृदय में अनुराग नहीं रह जाता है। जब तक विदेशी वस्तुओं का भारतवर्ष में आना कम नहीं किया जायगा, तब तक यह देश अधिकाधिक निर्धन होता जायगा।

आत्मबल

जिस जाति का, जिस धर्म का जग में न कुछ सम्मान है;
वह जाति जी सकती नहीं, जिसका मरण ही मान है।
निज जाति का, निज देश का जिसके न उर में मान है;
संतान ऐसी से कभी हा ! बलवती आशा न है ॥२३२॥

जिस जाति एवं धर्म का संसार में कुछ भी आदर नहीं, वह जाति एवं धर्म अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकते। मृत्यु का आलिंगन ही उनके लिये श्रेयस्कर है। ऐसी संतान से कोई आशा नहीं, जिसकी आत्मा में जाति एवं धर्म के प्रति कुछ भी संमान-भावनायें नहीं हैं।

हे बंधुओ ! तुम सत्य ही बदनाम होने योग्य हो;
संसार के जीवित जनों में तुम न रहने योग्य हो।
हर देश के, हर जाति के हैं चरण आगे पड़ रहे;
हो क्या गया ऐसा तुम्हें जो पद तुम्हारे अड़ रहे ? ॥२३३॥

हे भ्राताओं ! सत्य ही तुम अपमानित होने के योग्य हो; संसार के उन प्राणियों जिनका जीवन जगा रहा है, तुम रहने

योग्य नहीं। हर जाति एवं हर देश आगे बढ़ रहा है; परन्तु तुम्हें, प्रतीत नहीं होता ऐसा क्या हो गया जो तुम्हारा एक चरण भी आगे को नहीं उठता।

मुझको तुम्हारी इन नसों में बल नहीं है दीखता;
क्या अंत घड़ियाँ आ गई हैं ! दम निकलता दीखता।
यदि मरण भी हो जाय तो चिंता किसी को कुछ नहीं;
क्या लाभ है उस देह से, है प्राण उसमें जब नहीं ? ॥२२४॥

हे बंधुओ ! आपकी नसें बलवान प्रतीत नहीं होती। स्वाँस निकलता-सा प्रतीत होता है, क्या अन्तिम समय तो संनिकट नहीं आ गया है ? आपका अगर जीवन अन्त को प्राप्त भी हो जाय तो संसार में किसी को भी किंचित दुःख न होगा। उस शरीर को अब संभाल कर रखने से लाभ ही क्या है, जिसमें प्राण रहे हो नहीं ?

पर पूर्वजों के नाम पर कालिख अहो ! जो पोत दी।
हा धवलयश कौस्तुभमणी को पंक में जो छोड़ दी।
जीना जिसे—मरना उसे, मरना जिसे-जीवित वही।
हमने मिलाया धूल में कुलकीर्ति को—गर्हित यही ॥२२५॥

उन पूर्वजों के धवल यश में हमने जो कलंक लगा दिया, उस धवल यश रूपी कौस्तुभमणी को पंक में जो हमने फेंक दिया। जीवित है, वह मरेगा। मरेगा, वह जीवित है। पूर्वजों के धवल यश को हमने धूल में मिला दिया, यही तो घृणास्पद है।

कायर तुम्हें बक्काल, बणिया आज जग है कह रहा।
कुछ बोलने के भी लिये तो तल नहीं है रह रहा।
तुम में न अब वह तेज है, नहिं शक्ति है असिधार में।
नारी सताले आप की चाहे भले गृहद्वार में॥ २३६॥

संसार आज आपको कायर, बक्काल, बणिया आदि विशेषणों से संबोधित करता है। प्रतिकार करने के लिये भी तो हमारे पास में कुछ ऐसा नहीं है जो उनके मुखों को बन्ध कर सकें। अब न आप में वह तेज है और तुम्हारी तलवार में वह बल है। भले कोई आपके ही घर में आपकी बहू-बेटियों का अपमान करलें, आप उन आततायियों का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

नहिं देश में, नहिं राज्य में कुछ पूँछ है भी आपकी।
हा जिधर देखूँ, मिल रही लानत तुम्हें वे भाप की।
तुम चोर गुण्डों के लिये हा! आज घर की चीज हो।
मरुदेश वासी बंधुओं को देख लो—जी खीज हो॥२३७॥

आपका मान नहीं तो आपके ही प्रान्त (राज्य) में है और न देश में ही कुछ। जिस ओर दृष्टिपात करता हूँ आपको अगणित अपमान सहन करते ही देखता हूँ। चोर और गुण्डे, जब चाहें तब आप पर हाथ साफ़ करलें, उनके लिये आप घर में रक्खो हुई एक वस्तु है। अगर मेरे इस कथन से आप अप्रसन्न होते है तो इन मारवाड़ी बन्धुओं को जो स्थल-स्थल पर अमानित हो रहे हैं, देखकर सत्यासत्य का निर्णय कर सकते हैं।

तुमको अहिंसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है;
इसको क्षमा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है?
बस आततायी पर चलाना खड्ग-जीवनवाद है ॥२३८॥

यह मिथ्या है कि तुमको अहिंसा के सिद्धान्त ने कायर बना दिया, आततायियों से भय खा कर पीछे हटते रहना और उसे दया या क्षमा कहना भी मिथ्या है। आपको अपने पूर्वजों का इतिहास क्या स्मरण नहीं है! अत्याचार को रोकने के लिये अगर अत्याचार करना ही आवश्यक एवं अनिवार्य हो जाता है तो ऐसा अत्याचार अत्याचार नहीं, क्योंकि ऐसे अत्याचार के मूल में पुण्य की स्थापना करने की भावनायें संनिहित रहती हैं और यही महापुरुषों के जीवन में संग्राम है। यही तो जीवन का अभिप्राय है, सार है।

जिसमें न है कुछ आत्मबल, वह आत्म जाग्रत है नहीं;
बिन आत्मबल के बंधुओ! कुछ काम होता है नहीं।
बस जाग कर के बंधुओ! तुम प्रथम घर-शोधन करो;
तुम खोदकर जड़ दोष की, दुख जाति के मोचन करो ॥२२९॥

वह प्राणी चलता-फिरता हुआ भी सोया ही हुआ है अगर उसमें आत्मा जाग्रत होकर आत्मबल प्रकट नहीं हुआ है। बंधुओ! बिना आत्मशक्ति के विश्व में आप कुछ भी नहीं कर सकते। हे बंधुओ! अतः प्रथम आत्मबल जाग्रत करो और अपना संशोधन करो। दोष एवं अवगुणों को निर्मूल कर के

और जाति के दुःखों का निवारण करो।

हे बंधुओ ! बस आज से ही कमर कसना चाहिए;
अब सह चुके हो बहुत ही, आगे न सहना चाहिए।
मिलकर सभी भाई परस्पर आज अग्रिम आइये;
हैं आप भी कुछ चीज़ जग में, सिद्ध कर दिखलाइये ॥२४०॥

हे भ्राताओ ! आप अब बहुत सहन कर चुके हैं, अब आगे मत सहन करो। विपदाओं को अवध्वस्त करने के लिये तैयार हो जाओ। सब बंधुगण एकता कर आगे बढ़ो और विश्व को दिखा दो कि आप का भी कुछ महत्वपूर्ण अस्तित्व है।

राष्ट्रीयता

जिसको न अपने देश से कुछ प्रेम है, अनुराग है,
वह व्यक्ति हो या जाति हो वह भार है, वह दाग है।
जिसने न जीवन में कभी निज देशहित सोचा नहीं;
उस जाति की उस व्यक्ति की संसार में गणना नहीं ॥२४१॥

जिस जाति एवं व्यक्ति ने कभी भी देश के कल्याण का चिंतन नहीं किया, देश के प्रति कभी भी प्रेम प्रदर्शित नहीं किया या जिनके हृदय में देशानुराग नहीं है, वह जाति और वह व्यक्ति देश के लिये कलंक है, भार स्वरूप है और उनकी संसार में कोई गिनती नहीं।

हममें न श्रद्धा, भक्ति हैं; नहिं देश हित अनुराग है।
अतिरिक्त हमको स्वार्थ के दूजा न प्रियता राग है।

स्वातंत्र्य हित ये देश भाई यातनाएँ सह रहे;
कितने हमारे में कहो निज देश हित तन दह रहे ? ॥२४२॥

हमारा देश के प्रति न प्रेम ही है और न श्रद्धा और भक्ति केवल अपने स्वार्थ के हमको अन्य कुछ भी प्रिय नहीं। ये हमारे देश बंधु मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिये कितनी कड़ी यातनाएँ सहन कर रहे है। हमारे में ऐसे कितने पुरुष निकलेंगे जो देश को स्वतंत्र करने के लिये अपने शरीरों को कष्ट दे रहे हैं ?

धन की हमारे पास में अब भी कमी कोई नहीं,
पर राष्ट्र के कल्याण में व्यय हो रहा कौड़ी नहीं।
!अविचरणीया क्षति हुई स्वातंत्र्य की इस क्रांति से,
हमने यही तो है कहा नारी-सुलभ मति-भ्रांति से ॥२४३॥

आज भी हमारे पास द्रव्य की कोई कमी नहीं है। (चाहे पूर्व की अपेक्षा भले कितना ही कम क्यों न हो) परन्तु देश के लिये हम एक कानी कौड़ी खर्च नहीं कर रहे हैं। उल्टा हमने यही कहा "इस स्वतंत्रता के आंदोलन से व्यापार को भारी क्षति पहुँची।" ऐसे वाक्य प्रायः मूढ़ स्त्रियां, जब उनकी बुद्धि थक जाती है तो कहा करती हैं।

अब वीर भामाशाह-सा हा ! देश-सेवी है नहीं;
बदला हमारा रक्त है या रक्त हम में है नहीं।
हमको हमारे स्वार्थ का चिंतन प्रथम रहता सदा;
हम देखते हा ! क्यों नहीं आई हुई घर आपदा !! ॥२४४॥
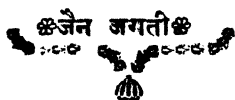
अब वीर भामाशाह के समान कोई देशभक्त साहूकार नहीं दिखाई देता। हमारा शोणित ही परिवर्तित हो गया या अब हम में शोणित रहा ही नहीं। सर्व प्रथम हमको अपना स्वार्थ संपादन करने का ही विचार रहता है। इस स्वार्थ के पीछे ऊपर आई हुई विपत्तियों को भी हम नहीं देख रहे हैं।

हिन्दू हमें कहना न, हम हिन्दू भला कब थे हुये ?
आदिम निवासी हिन्द के है हिंद से बदले हुये !
जिन धर्म तुम हो मानते, इस हुतु भाई ! जैन हो;
है हिन्दभूमी, राष्ट्र हिन्दू—हिन्दुओं में जैन हो ॥२४५॥

हम जैन बन्धु अपने आप को हिन्दुओं की गणना में गिनाने नहीं देते हैं। हमको हिन्दू मत कहो, हम कब हिन्दू बने थे ? हमारे ये शब्द हिन्दूस्थान के हिन्दूराष्ट्र के लिये अमङ्गल कारी है। भला हम हिन्दुस्तान के आदिम निवासी हो कर भी हिन्दुस्थान से इतने बदले हुये हैं। बन्धुओ ! आप जैनधर्मानुयायी हैं, इस लिये आप अपने साधर्मी वर्ग को जैन कह कर उसका अलग अस्तित्व रक्खे हुये हैं; लेकिन यथार्थ में आप इस हिन्दभूमी के हिन्दूराष्ट्र के अङ्ग होने के नाते हिन्दू हैं। हिन्दुओं में अवश्य जैन हैं।

राष्ट्रीय भावों से भरा जिस जाति का मन है नहीं;
उस जाति का तो स्वप्न में उद्धार सम्भव है नहीं।
जो देश वासी बन्धुओं के रुदन पर रोया नहीं;
उसके हृदय ने सच कहूँ मानवपना पाया नहीं ॥२४६॥

जिस जाति के मानस में राष्ट्र के प्रति कल्याण भावनायें नहीं हैं, उस जाति का कल्याण स्वप्न में संभव नहीं। जो व्यक्ति अपने देश के वासियों के दुःख पर दुःखी नहीं होता, वह मानव नहीं, उसके हृदय में मानवता के लक्षण नहीं।

कुलीनता

कौलिण्य कुलपति आपका पर्दानशी में रह गया!
गिरि पाप भी इसके सहारे ओट में ही रह गया!
अब मार कर हा! शेखियें तुम रख रहे कुछ मान हो!
चूहे उदर में कूदते, पर मूँछ पर तो धान हो! ॥२४७॥

हे गौरवान्वित कुल के अधिपति! आपके कुल का गौरव केवल पर्दा का अस्तित्व बनाये रखने में ही शेष रह गया है। आपके बड़े बड़े पाप के पर्वत इस पर्दे की ओट में आकर जनता की दृष्टि में स्पष्ट नहीं आ रहे हैं। यशस्वी पूर्वजों की कहानियें कह कर आप अपने मान का निर्वाह कर रहे हैं। 'पेट तो पाताल में और मूँछों पर धान' की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं।

कह दें तुम्हें वणिया' 'महाजन', रण वहीं मच जायगा;
उर 'शाह जी साहेब' पर दो बाँस पर उठ जायगा।
शाहपद, महता, मुसद्दी सब गोत्रवत हैं हो गये!
तुम रह गये हबशी सभी, पूर्वज यशस्वी हो गये ॥२४८॥

अगर आपको कोई वणिया, महाजन आदि शब्दों से संबो-

धन कर दें तो बस वहीं लड़ाई हो जायगी। कोई अगर आपको 'शाहजी साहब' कह कर पुकारे तो आपकी छाती दो बाँस की हो जायगी। शाह, महता और मुसद्दी तथा अन्य अन्य पद परंपरा से चले आने के कारण गोत्र से हो गये हैं और अब इन पदों में श्रेष्ठता के भाव अभिव्यञ्जित नहीं होते। आपके पूर्वज यशस्वी हो गये हैं, ये पद बात को प्रकट करते रहते हैं; परन्तु तो हबशी रह गये हैं।

व्यापार में, व्यवसाय में संकोच है होता तुम्हें !
भूखे उदर तुम सो सको, पर हाट में लज्जा तुम्हें !
हा ! मद्यसेवन चिह्न तो कौलिण्य कर तुम मानते !
कौलिण्यता मदिरा रमण कुल के शराबी जानते ! ॥२४६॥

कुलीनता की छाप धराने वाले बन्धुओ ! आप को व्यापार धन्धा करने में लज्जा का अनुभव होता है। आप क्षुधित ही भले सो जावेंगे; लेकिन दुकानादि करके दो पैसे कमाने में आप का गौरव चला जाता है जहाँ आप मद्यसेवन में कुलीनता समझते हैं। यह कुलीनता कैसी है ? मेरी तो समझ में नहीं आती। इसका अर्थ तो ऐसी कुलीनता का निरंतर भोग-पान करने वाले सज्जन ही समझें।

स्वास्थ्य

अगणित हमारे रोग हैं, हा ! एक हो तो बात हो !
हे नाथ ! काली रात है, कैसे दिवस का प्रात हो !

मुझको यहाँ पर मानसिक संताप गिनने हैं नहीं;
है शक्ति गिनने की कहाँ! जब स्वास्थ्य अच्छा है नहीं॥२५०॥

हम सहस्रों रोग से ग्रस्त हैं। एक रोग हो तो उसका उपाय भी विचारें। हे परमात्मन्! इस अतिघोर अमावस्या रात्रि का अस्तित्व होते हुये दिवसोदय कैसे होगा! मैं इस स्थल पर मानसिक दुःखों की गणना नहीं करूंगा। और करूँ तो भी कैसे करूँ, जब स्वास्थ्य ही अच्छा नहीं है?

ऐसा न कोई रोग है, जिसका न हम में भाव हो!
वह रोग ही कैसा भला, जिसका न हम पर दाँव हो!
संख्या हमारी लक्ष तेरह—रोग तेरह कोटि है!
सब बाल शिर के उड़ गये-मिलती न शिर पर चोटि है॥२५१॥

ऐसा कोई रोग विश्व में न मिलेगा, जिससे हम ग्रस्त न हों। वह रोग रोग ही कैसा जिसने हमारे पर आक्रमण ही न किया हो। हमारी संख्या तो तेरह लाख है; लेकिन हमारे रोगों की गणना तेरह कोटि होगी। शिर पर के बाल उड़ गये, चोटी का भी पता नहीं रहा। कहावत भी है—जिसके शिर में टाट उसके घर में ठाट। हमारी श्रीमंत समाज हीन वीर्य्य एवं पुरुषत्व हीन है अतः शिर के बाल शीघ्र ही पक जाते हैं और अशक्ति के कारण शीघ्र ही न्यून होने लग जाते हैं। फिर चोटी स्वयं ही नहीं रहने पाती और श्रीमन्त गंजे हो जाते हैं। इसलिये कहावत इस प्रकार होनी चाहिए, 'जिसके घर में ठाट, उसके शिर में टाट।' यह अधिक सत्य एवं उपयुक्त है।
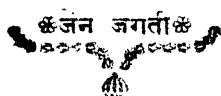
यदि काम कोई आपड़े, दो कोश जा सकते नहीं।
यदि भार कुछ ढ़ोना पड़े, चरण चल सकते नहीं।
कुछ तुन्दिलोदर मसनदोंके हैं सहारे लोटते।
हैं लोटते इस भाँति—क्या गर्दभ विचारे लोटते ॥२५२॥

हमारा स्वास्थ्य इतना पतित है कि अगर दो कोश जाने का कार्य आ पड़े तो नहीं जा सकते, अगर कोई भार लेकर चलना पड़े तो दो चरण भी नहीं चल सकते। कुछ तुंदिल बन्धु गद्दी-तकियों पर ही पड़े पड़े लोटा करते हैं और ऐसे लोटते हैं कि गर्दभ भी वैसा क्या लोटेगा!

हमको कभी निज स्वास्थ्य का होता न कुछ भी ध्यान है!
क्या रोग तन को हो गया—कोई न इसका ध्यान है।
विश्वास तुमको न यदि—मृत तालिका तुम देखलो।
हम वीर्य्यहीनों, स्वास्थ्यहीनों का मरण यों लेख लो ॥२५३॥

हम अपने स्वास्थ्य का तो कुछ भी ध्यान नहीं करते हैं। हमको क्या रोग हो गया है, इसकी भी हमको कोई चिन्ता नही रहती। अगर मेरे इस कथन में विश्वास न हो तो मृत-पुरुषों की गणना का पत्र देख लो, उसमें हम वीर्य्यहीनों एवं स्वास्थ्यहीनों की ही गणना अधिक मिलेगी।

हम ब्रह्मव्रत रखते नहीं, व्यायाम भी करते नहीं।
फिर रोग, तस्कर, दुष्ट के क्यों दाँव चल सकते नहीं?
हमसे किसी को भय नहीं, हमको डराते हैं सभी।
धनमाल के अतिरिक्त रामा भी चुराते हैं कभी ॥ २५४ ॥

हम न तो ब्रह्मचर्य्य का ही पालन करते हैं और न व्यायाम ही करते हैं, तब फिर रोग, चोर और दुष्टजनों का आक्रमण क्यों न होवे? हमसे कोई नहीं डरता, सब कोई हमको ही डराते हैं। धन माल का अपहरण तो वे करते ही हैं, कभी कभी इसके अतिरिक्त हमारी बहू-बेटियों को भी हरण कर जाते हैं।

ऐसा पतन हे नाथ! करना योग्य तुमको था नहीं!
हर भाँति से यों निःस्व करना उचित हमको था नहीं!
होगा कहाँ पर छोर?—अब तो हे विभो! बतलाइये!
अबतो अबल है भाँति सब हम! कुछ दया दिखलाइये!!॥२५५॥

हे परमात्मन्! ऐसा भयंकर पतन तो हमारा नहीं करना था, हर भाँति से हमको इस प्रकार हीन नहीं बनाना था। हे प्रभो! अब यह तो कहिये कि हमारे इस महापतन का अंत कहाँ होगा। अब तो हम सब प्रकार असमर्थ हैं, कुछ तो दया कीजिये।

धर्म-निष्ट

ये हाय! कैसे जैन हैं, घट में न हैं इनके दया!
सिद्धान्त इनके हैं दयामय, हाय! फिर भी बे दया!
बाहर सदाशय भाव हैं, बाहर दयामय भाव हैं;
अवसर पड़े पर देखना अंतर में कैसे दाँव है!! ॥२५६॥

ये महाशय कैसे जैन हैं? इनके हृदय को दया तो छू तक नहीं पाई। इनके जैन धर्म के सिद्धान्त तो सब ही दयामयी हैं,

परन्तु ये महाशय तो हाय ! दयाहीन हैं ! बाहर से तो इनके भाव दयामय एवं सदाशय प्रतीत होते हैं, लेकिन अवसर आने पर विदित होता है कि इनके मानसों में कैसी कैसी कुटिल चालें भरी हैं।

इन जैनियों ने झूठ में भी रस कला का भर दिया।
मीठे वचन मयी कर उसे हा! अधिक रुचिकर कर दिया।
व्यापार, कार्याचार, धर्माचार इनके झूठ हैं।
बाहर छलकता प्रेम है, भीतर हलाहल कूट है ॥ २५७ ॥

इन जैन बंधुओं ने तो झूठ जैसी गृणित वस्तु को भी कला का पुट देकर सुन्दर बना दिया और उसमें फिर मधुर वाणी का मिश्रण कर उसको और अधिक रुचिकर बना दिया। इन जैन बंधुओं के व्यापार, कार्य, धर्म-कर्म सब मिथ्या हैं, छल भरे हैं। बाहर प्रेम उमड़ता प्रतीत होता है। लेकिन इन सब व्यापारों के भीतर हलाहल विष लहरें खा रहा है।

मार्जार-सा इनका तपोबल पर्व पर ही लेख्य है;
उपवास, पौषध, सामयिक उपतप व्रताम्बिल पेख्य है।
निंदा, कलह, अपवाद के व्यवसाय खुलते हैं तभी;
एकत्र होकर देख लो ये काम करते हैं सभी ॥ २५८ ॥

पर्वादि मंगल दिवसों में इनकी तपस्या, धर्मश्रद्धा अवलोकनीय है। उस समय पर जिस छटा के साथ उपवास, व्रत, सामायिक, पौषध ये करते हैं, वह छटा मननीय है। उस समय

२२

ये बन्धु एकत्रित होकर परस्पर की निंदा, कलह, अपकीर्ति करते हैं—ये इनके मंगलपर्वों पर कृत्य होते हैं।

ये हाय! जितने शाह हैं, उतने समझिये चोर हैं।
इनसे बचो, इनसे बचो, अब मच रहे ये शोर हैं।
इन मारवाड़ी बन्धुओं के काम सब विकराल हैं।
इनको पिलावे दुग्ध जो घर में उसी के व्याल हैं ॥२५९॥

ये जितने शाहूकार प्रतीत होते हैं, उतने ही ये चोर हैं। अब सर्वत्र इनकी विशुद्ध पहिचान हो चुकी है। सर्वत्र यह सुनायी पड़ रहा है, इनसे बच कर रहो, इनसे बच कर रहो! इन मारवाड़ी भाइयों के कर्म भयंकर होते हैं। जो इनका स्वागत करता है, उसी के ये दुर्गति करते हैं!

वैसे हमारे बन्धु ये जल छान कर ही पीयँगे।
पर दीन का धन-रक्त ये हा! अनछना ही पीयँगे!
व्यापार माया-जाल है इनका, तनिक तुम लेख लो।
उभरें न पीढ़ी सात वें, जो फँस गये तुम पेख लो ॥२६०॥

वैसे हमारे ये बन्धु बड़े धर्मात्मा प्रतीत होते हैं। अनछना पानी का कभी भी सेवन न करेंगे, परन्तु दीन के धन-रूपी रक्त का पान करते समय ये कुछ भी विचार नहीं करेंगे। तुम भली प्रकार देखोगे तो इनका व्यापारकर्म भी एक मायावी जाल प्रतीत होगा। जो इस मायावी जाल के भुलावें में आकर फँस गया, फिर वह और उसकी सात पीढ़ी उद्धर नहीं सकतीं।

हा ! जैनियों की धर्मनिष्ठा स्वार्थनिष्ठा हो गई !
यो धर्मनिष्ठा पेट में पड़कर सदो को खो गई !
भीषण पतन इस भाँति का हा ! आज तक किसका हुआ !
हे वीर के अनुयायियो ! देखो तुम्हें यह क्या हुआ ?॥२६१॥

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जैनियों के धर्म-कर्म सब स्वार्थमय हो गये और इस प्रकार स्वार्थमयी होकर उनकी धर्मश्रद्धा सदा के लिये अपना अस्तित्व खो बैठी । ऐसा भयंकर अधः पतन आज तक किसी भी जाति का नहीं हुआ होगा । हे भगवान महावीर के भक्तो ! देखो, तुमको यह क्या हो गया ?

जातीय विडंबना

इन जाति-भेदों ने हमारा वर्ण विकृत कर दिया !
आन्तर प्रभेदों ने तथा अवशिष्ट पूरा कर दिया !
क्या-क्या न जाने बन गई ये जातियें इस काल में !
कैसा मनोहर देश था, थे आर्य हम जिस काल में ! ॥२६२॥

हमारे वर्ण को इन जाति के भेदों ने बिगाड़ डाला । रहे-सहों को फिर उपभेदों ने नष्ट कर डाला । न जाने कौन-कौनसी जातियें बन गईं । वह समय कितना अभिराम था जब कि हम सब एक मात्र आर्य कहलाते थे और कोई जाति व गोत्र न था ।

करने व्यवस्थित देश को ये वर्ण स्थापित थे किये;
प्रति वर्ण के कर्तव्य भी निश्चित सभी विध थे किये ।
थे विप्र विद्यादातृ औ रक्षक सभी क्षत्री हुये;
पोषक बने हम वैश्य गण, अन्त्यज तथा सेवी हुये ॥२६३॥

देश की सुन्दर व्यवस्था करने की दृष्टि से ही चार वर्णों की स्थापना की गई थी। प्रत्येक वर्ण के कर्म-धर्म भी निश्चित कर दिये गये थे। विप्रों का कर्तव्य पठन-पाठन, क्षत्रियों का रक्षा करना, वैश्यों का कर्तव्य कृषि-व्यापार करना और अन्त्यजों का कर्तव्य रहा अन्य वर्णों की सेवा करना।

पड़कर समय के फेर में ये वर्ण पैत्रिक धन हुये;
तब वर्ण वर्णान्तर हुये ये जाति जात्यन्तर हुये।
कितने पिता के नाम पर उपगोत्र स्थापित हो गये;
इस भाँति से वर वर्ण के लाखों विभाजन हो गये! ॥२६४॥

जो मनुष्य जिस वर्ण का कर्म करता था, वह उसी वर्ण का गिना जाता था, लेकिन कालान्तर में उसका वह वर्ण सदा के लिये निश्चित ही हो गया। फिर वर्ण में भी उपवर्ण, जाति और उपजातियें हो गई। कई गोत्र और उपगोत्र पिताओं के नाम पर भी पड़ गये, इस प्रकार एक वर्ण के लाखों टुकड़े हो गये।

हर एक मत के नाम पर हैं जातिदल कितने हुए?
अब एक नर के देखिये उपगोत्र कुल इतने हुये।
वह आर्य, हिन्दू, जैन हैं, श्वेताम्बरी, श्रीमाल हैं;
गच्छानुगत, वंशानुगत, गोत्रानुगत के जाल हैं ॥२६५॥

फिर कई जातियें धर्म एवं मतों के पीछे बन गई। अब देखिये एक मनुष्य के कितने गोत्रोपगोत्र हैं। वह आदि से आर्य हैं, देश से हिन्दू, धर्म से जैन, सम्प्रदाय से श्वेताम्बरी
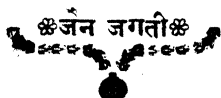
और जाति से श्रीमाल; गच्छ से तपा या खरतर; वंश से और गोत्र से फिर (१०-२०) दशा-बीशा हैं।

कुल जैन तेरह लक्ष होंगे अधिक होने के नहीं;
दस, बीस सहस्र गोत्र होंगे—अल्प होने के नहीं।
इस अल्प संख्यक जाति का ऐसा भया वह हाल है;
हा वह वर्ण का भी काल था, यह जाति का भी काल है ॥२६६॥

जैन स्त्री-पुरुषों की गणना तेरह लक्ष से ऊपर संभवतः नहीं है। परन्तु गोत्रोपगोत्र दश-बीस सहस्र होंगे। इस अल्प-संख्यक जाति की ऐसी भयंकर दुर्दशा है। एक वह भी समय था जब कि वर्ण की प्रधानता थी, और एक यह भी समय है जबकि अब जातियों की प्रधानता है।

जात्यन्तरिक फिर रोग बढ़कर साम्प्रदायिक बन गये।
पारस्परिक व्यवहार, प्रेमाचारन तक भी रुक गये;
इन दिग्पटों श्वेताम्बरों में अब नहीं होते प्रणय;
संकीर्ण दिन दिन हो रहे हैं शून्य में होने विलय ॥२६७॥

उप जातियों में से फिर साम्प्रदायिक वर्ग बन गये। यहाँ तक यह रोग बढ़ा कि वर्ग वर्ग में प्रेम एवं व्यवहार के संबंध भी रुक गये। दिगम्बरों में और श्वेताम्बरों में अब विवादि के सम्बन्ध नहीं होते हैं। इस प्रकार शून्य में समा जाने के लिये ही (मानो) दिन प्रतिदिन संकीर्ण होते जा रहे हैं।

कितने असर हम पर भयंकर आज इनके घट रहे;
होकर सहोदर, हाय! सब हैं रण परस्पर कर रहे।

अब वह न हममें प्रेम है, सौहृर्द है, वात्सल्य है ;
अब प्राणनाशक फूट का चहुँ ओर हा ! प्रबल्य है ॥२६८॥

इस प्रकार जातीय पिंडबना ने अपना भारी जाल बिछा रक्खा है। परस्पर भाई-भाई होकर भी इस प्रकार बुरी तरह लड़ रहे हैं। स्नेहु प्रेम एवं सहानुभूति अब हम में परस्पर नहीं रहे। सर्व नाशिनी फूट की शक्ति सर्वत्र हम में फैल रही है।

हाट माला

जी ! देखिये ये शाह हैं ये स्नान हैं करते नहीं ;
इनको बदलने वस्त्र भी अवकाश हैं मिलते नहीं।
है हाट इनकी शूद्र-सी दुर्गंधयुत सामान हैं ;
पर शूद्र तो ये हैं नहीं, ये शाह जी श्रीमान् हैं ॥ २६९ ॥

दुकान पर ये जो बैठे हुये हैं। शाहजी साहब हैं। ये स्नान बहुत ही कम करते हैं। वस्त्र परिवर्तन करने के लिये भी इनको अवकाश नहीं मिलता। शूद्र की दुकान जैसी आपकी दुकान है। दुकान का सामान दुर्गंधा है। परन्तु इनको कोई शूद्र न समझे, ये श्रीमान् शाह जी साहब हैं।

जीरा, मसाला, तेल इनका तोलना ही काम है;
इन शाह जी ने तोलने में ही कमाया नाम है।
जितने तरल, रस, पाक है—मिश्रण बिना नहिं एक है;
दूना, तिगुना कर चुके, नित भाव रखते एक हैं ! ॥२७०॥

इन शाह जी कर्म का मिर्च-मसालादि तोलने का है। तोलने में इन्होंने कौशल प्राप्त किया है। रस, पाक आदि जितने भी द्रवित पदार्थ हैं, सब में मिश्रण किया हुआ है। ये मूल धन का दुगुणा, तिगुणा कर चुके फिर भी हमेशा एक ही भाव रखते हैं।

व्यापार में बढ़ती इधर हैं कुछ दिनों से कर रहे;
दिन-रात इनके ग्राहकों से हाट घर हैं भर रहे।
सर्वत्र कन्या माल की है मांग दिन दिन बढ़ रही;
कन्या कुमारी मोहरों से, देखिये, हैं तुल रही! ॥२७१॥

कुछ समय से ये व्यापार में उन्नति कर रहे हैं। घर और दूकान दोनों में ग्राहक इतने जुड़ते हैं कि समा नहीं पाते। प्रतिदिन कन्यामाल की मांग बढ़ती जा रही है और कुमारी कन्यायें मोहरों से तोली जा रहीं हैं।

पुखराज, मानिक रत्न के व्यापार होते थे यहाँ!
अब देख लो चूना कली के ढेर हैं बिकते यहाँ!
जीवादियुत धानादि के भण्डार भी मौजूद हैं!
दोगे न यदि तुम दाम तो दो सैकड़े पर सूद है ॥२७२॥

हा! इन्हीं हाटों में कभी माणिक, रत्न, पुखराज के व्यापार होते थे। अब देखिये चूना-कली के ढेर लगे पड़े हैं। सब अन्नादि के भण्डार सजीव हैं। उधर सामान लेने वालों को मासिक दो रुपया प्रतिशत व्याज का देना पड़ता है।

जी! यह बड़ा बाजार है—श्रीमान शाहूकार हैं;
दिनरात सट्टा, फाटका ही आपका व्यापार है!

ये सब विदेशी माल के ऐजेन्ट ठेकेदार हैं;
इस ऐश के इनके विदेशी नाथ ही आधार हैं !! ॥२७३॥

यह बड़ा बाजार है। सब ही दुकानदार लक्ष्मीपति एवं साहूकार हैं। सट्टा और फाटका करना इन श्रीमतों का प्रमुख व्यापार है। ये सब के सब शाहूकार विदेशी मालके ऐजेन्ट हैं। इनके इस वैभव के आधार एक मात्र इनके विदेशी स्वामी हैं।

बाजार माणिक-कोष था हा ! शाह जी अरवेश थे !
अमरावती थी हाटमाला, शाह जी अमरेश थे !
मखमल, जरी, खाशा स्वदेशी हाट के सामान थे !
भरकर स्वदेशी माल को जाते सदा जलयान थे ! ॥२७४॥

एक समय था जब बाजार माणिक मुक्ताओं से भरे रहते थे और शाहूकार अरबपति थे ! बाजार की शोभा इन्द्रनगर की शोभा के सदृश थी और शाहूकार इन्द्र के सदृश थे। दुकानों में एक मात्र स्वदेशी सामान मखमल, जरी खाशा था और स्वदेशी माल को भरकर जहाज विदेशों में जाते थे।

अब तो विदेशी माल के ये शाह जी मध्यस्थ हैं !
अपने स्वदेशी माल के रे ! शत्रु ये प्रथमस्थ हैं !
देखो विदेशी माल से इनकी सजी सब हाट हैं !
घोषित दिवाले कर चुके, पर हाट में सब ठाट है ॥२७५॥

देश में विदेशी माल के मँगाने वाले एक मात्र आप शाहूकार ही हैं। ये शाहूकार स्वदेशी माल के प्रथम शत्रु हैं। देख लीजिये, इनकी दुकान विदेशीमाल से सुशोभित हो रही है।

कितनी कितने ही समय ये दिवाला निकाल चुके हैं, फिर भी इस समय इनकी दुकान में सब ही प्रकार का सामान विद्यमान है।

नेता हमारे देश के नारे लगाते ही रहे।
कारण विदेशी माल के वे जेल जाते ही रहे।
सहता रहे यह देश चाहे यातनाएँ नित कड़ी।
ये तोड़ने हा! क्यों लगे प्यारी प्रिया सम सुख-घड़ी ॥२७६॥

भारतवर्ष के नेतागण देश को स्वतंत्र करने के लिये अविदल प्रयत्न करते रहें और विदेशी वस्त्रों का प्रतिकार करने के कारण कारागारों की यातनाएँ सहन करते रहें, और सम्पूर्ण भारतवर्ष चाहे कड़े से कड़े संकट सहन करता रहे, परन्तु ये श्रीमंतगण प्रियतमा के समान अपने सुख भरे पंजों चिंता विषाद क्यों भरने लगे।

ये हेम, चाँदी दे रहे, पाषाण लेकर हंस रहे।
नकली विदेशी माल से यों देश अपना भर रहे।
अपने हिताहित का न होता, नाथ! इनको ध्यान क्यों।
इनके उरों में देश पर अनुराग है जगता न क्यों ॥२७७॥

ये श्रीमंत शाहूकार सोना, चाँदी विदेशियों के हाथों में बेचकर बदले में नकली पाषाण और विदेशी माल लेकर अपने देश को भर रहे हैं। हे परमेश्वर! इन शाहूकारों को अपने ही भले; बुरे के विचार पैदा क्यों नहीं होते। मातृभूमि के प्रति इनके हृदयों में प्रेम उत्पन्न क्यों नहीं होता?

मेरे विभो ! इनको घृणा क्यों देश से यों हो गई ।
अथवा विपद के भाव मे मत भ्रष्ट इनकी हो गई ।
तुम क्यों न चाहे जैन हो, पर देश यह है आपका ।
जिस भाँति से सम्पन्न हो यह, काम वह है आपका ॥२७८॥

हे ईश्वर ! इन शाहूकारों को मातृभूमि के ऊपर ऐसी अरुचि कैसे हो गई ? या ईश्वर ! विपत्तियों के कारण इनकी मलीन हो गई । हे भ्राताओं ! आप चाहे जैन हो या और कोई, परन्तु भारतवर्ष आपका पितृदेश है । जिस उपाय से भी यह देश सम्पन्न हो, वही उपाय आपको करना चाहिए ।

बेकारी ।

कितने युवक, नर प्रौढ़ हा ! बेकार होकर फिर रहे !
हत धैर्य्य होकर हाय ! क्या अपघात वे नहिं कर रहे ।
उनकी अकिंचन प्रार्थनाएँ क्यों नहीं स्वीकार हैं ।
वे योग्य हैं हर भाँति से, फिर क्यों उन्हें धिक्कार है ॥२७९॥

हमारे कितने योग्य युवक और प्रौढ़वय के पुरुष बेकार हैं । बेकारी से दुःखी होकर उनमें से कितने आत्मघात कर अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहे हैं । हे ईश्वर ! उनकी तुच्छ प्रार्थनाएँ भी हमको स्वीकार क्यों नहीं । वे सर्व प्रकार से योग्य हैं, फिर भी उनका तिरस्कार क्यों किया जाता है !

भोजन मिला कल प्रात को—चौबीश घंटे हो गये !
दो माह पहिले भेंट थे शिशु दो क्षुधा की हो गये !

है मूर्च्छिता माता पड़ी, नव जात शिशु मूर्च्छित पड़ा !
स्तंभित खड़े पति पार्श्व में, ज्योंही कहीं पत्थर गड़ा ॥२८०॥

कल प्रातःकाल भोजन मिला था। २४ घंटे व्यतीत हो चुके। सारा परिवार क्षुधा से पीड़ित हो रहा है। प्रसूतिगृह में माता क्षुधा से मूर्च्छिता पड़ी है, नवजात बच्चा भी मूर्च्छित पड़ा है, यह हृदयविदारक दृश्य देख कर पिता पार्श्व में ही अचल खड़ा है। इसी क्षुधा की वेदी पर २ माह पूर्व २ लड़के भेट हो चुके हैं। यह है भारतवर्ष में फैले हुये नग्न दरिद्र्य का नग्न चित्र।

वह जाति जिसके नर, युवक बेकार हैं, क्षयशील हैं;
उस जाति के तन में पतन के बीज ही गतिशील हैं।
यह आग ऐसी आग है, इस-सी न दूजी आग है;
यह जल उठी जिस भाग में, वह भस्म ही भूभाग है ॥२८१॥

जिस जाति के युवक एवं मनुष्य अकर्मण्य हैं, बेकार हैं वह जाति नष्ट हो रही है। ऐसी जाति की देह में पतन के बीज पनप रहे हैं। बेकारी की अग्नि ऐसी भयंकर अग्नि है कि इस अग्नि के सदृश अन्य कोई अग्नि नहीं। यह बेकारी की अग्नि संसार के जिस किसी भी भाग में प्रज्वलित हो उठी, वह भाग तो भस्म हुआ ही समझिये।

यह भी पतन के कारणों में एक कारण मुख्य है;
तुम जानते हो जाति की आत्मा युवक ही मुख्य है;
इनके पतन में है पतन, उत्थान में उत्थान है;
हा ! युववुबलक्षत् जाति का सचनिकट ही अवसान है॥२८२

जाति का पतन जिन अनेक कारणों से हुआ है, उन अनेक कारणों में एक मुख्य कारण जाति में बेकारी का होना भी है। आप समझते हैं; मुख्यकर युवकगण ही जाति की आत्मा होते हैं। युवकों के पतन पर जाति का पतन है और युवकों के उत्थान पर जाति का उत्थान है। जिस जाति का युवक बल क्षत हो गया है, उस जाति का अंत भी अति संनिकट है।

पर बहुत कुछ अब भी हमारे पाश में अवशिष्ट है;
हम हैं, युवक है, काम है, धन भी प्रचुर अवशिष्ट है;
इस हिंद के हर युवक को हम काम दे सकते अभी;
इस अग्नि की श्रम अम्ल से उपशाम कर सकते अभी ॥२८३॥

इतना होने पर भी आज हमारे पास फिर भी बहुत कुछ साधन है। हम हैं, युवक हैं, कार्य भी है और पूर्वजों का छोड़ा हुआ पर्याप्त धन है। इन साधनों के बल पर तो हम सारे भारतवर्ष के युवकों को कार्य पर लगा सकते हैं और बेकारी की धधकती ज्वाला को शान्त कर सकते हैं।

इस ओर यदि कुछ ध्यान हो, आगे न दुर्दिन आयँगे;
सुख के विगत दिन भी हमारे लौटकर आ जायँगे!
जिस दिन हमारे देश का कर्मी युवक बन जायगा;
सोया हुआ यह देश भारतवर्ष फिर उठ जायगा ॥२८४॥

अगर हम इस बेकारी को नष्ट करने का प्रयत्न करें तो भविष्य में हम को विपत्तियाँ सहन न करनी पड़ेंगी। हमारा

खोया हुआ वैभव भी पुनः लौट आयेगा। जिस दिन हमारे देश का प्रत्येक युवक काम पर लगा हुआ होगा, उस दिन यह भारतवर्ष जगा हुआ होगा।

अंध-परंपरा

अब भक्ति में भी गंध कुत्सित काम की बढ़ने लगी !
दुर्लय जहाँ पर दर्श थे, अब नारियाँ चढ़ने लगी !
पथ भ्रष्ट गुरुजन हो गये, श्रद्धा पर किंचित घटी।
पथ भ्रष्ट अनुचर हो गये, अतएव है अब तक पटी ॥२८५॥

आज भक्ति में भी कामवासनाओं ने अपना घर बना लिया है। जहां पुरुषों को बड़े पुरुषों के दर्शन भी होना कठिन था, आज वहाँ नारियों के मेले लग रहे हैं। (बड़े पुरुष और) अनुयायी (दोनों ही) पतित हैं, इसलिये अब तक व्यवहार बना रहा है।

हा ! पितृ धर्माचार्य रे ! सब दोष-आकर हो गये।
मन्दिर हमारे पूज्य भी हा ! मदन-मन्दिर हो गये।
जिस ओर देखो, उधर ही सब भाव विकृत हो गये।
हत्कर्म ! हत्‌ब्रह्म हा ! सत्‌धर्म हा ! हम हो गये ॥२८६॥

जो हमारे माता-पिता और धर्माचार्य जो पूजनीय और आदर्श थे जिनका अनुकरण कर हम अपने चरित्र को बनाते थे वे आज सब दोष और कुव्यसनों से भर गये। अधिक क्या प्रभुमन्दिर भी कामदेव के मन्दिर-से हो गये। जिस ओर देखो,

उस ओर ही भाव परिवर्तित से हुये से दृष्टि में आते हैं। हाय ! आज हम कर्महीन, धर्महीन, ब्रह्महीन हो गये।

त्यागी बने जो छोड़ कर संसार, माया, मोह को—
अपना रहे क्यों हाय ! वे फिर मान, ममता, कोह को।
माता, पिता, जाया, सुता, सुत, शिस्य गुरु, संशोध्य हैं।
बढ़ती हुई इनमें हमारी अंध ममता रोध्य है॥ २८७॥

जो संसार, माया और मोह भरे सब ही संबन्धों को छोड़ कर त्यागी बन गये, वे फिर हाय ! मान, अपनत्व और क्रोध के भावों को क्यों अपना रहे हैं। माता, पिता, पुत्र-पुत्री, स्त्री-पुरुष, गुरू-शिष्य सब की परीक्षा करना आवश्यक है और बढ़ते हुये अंध अपनत्व को रोकना अत्यन्त वांछनीय है।

गृह-कलह।

पति पत्नि से नहिं बोलता, पति से न भार्या बोलती।
सुत, तात से न बोलता, माता न सुत से बोलती।
श्वश्रू बहू लड़ती परस्पर कुत्तियों-सी आज हैं।
भाभी ननद लड़ती यहाँ हा ! धर्षिणी सी आज हैं॥२८८॥

स्त्री और पुरुष, पिता और पुत्र माता और बेटा परस्पर प्रेम संबन्ध यहाँ तक तोड़ बैठे हैं कि परस्पर साभाषण का व्यवहार भी रुक गया है। पुत्र-वधु और पति भीता परस्पर कुत्तियों के समान बुरी तरह लड़ती हैं और भाभी, ननद जब लड़ती हैं तो ऐसा लगता है मानो दो वैश्यायें लड़ रही हों।

ऐसा पतित गार्हस्थ्य-जीवन आज विभुवर हो गया !
हा ! स्वर्ग-सा गार्हस्थ्य सुखकर अब तपन-सा हो गया !
अब पुत्र की निज पितृ में श्रद्धा न है, वह भक्ति है।
माता-पिता की सुत, सुता पर भी न वह अनुरक्ति है ॥२८६॥

हे परमात्मन् ! स्वर्ग के सदृश सुखदायी गृहजीवन आज इतना पतित हो गया है कि अब उसे सांतवां नरक कहना चाहिए। माता-पिता में अब पुत्र की न वह श्रद्धा है और न भक्ति है और माता-पिता का भी पुत्र-पुत्री पर अब वैसा प्रेम नहीं है।

घर में न जब हा ! प्रेम है, बाहर भला कैसे बने !
हे नाथ ! ये कंटक-सदन चिर सुख-सदन कैसे बने !
फैला दिया अपना कलह ने एक विध साम्राज्य है !
शुचि प्रेम,श्रद्धा,भक्ति कर अब हा! न वह सुर-राज्य है॥२९०॥

हे स्वामिन् ! जब परिजन, कलत्रों से ही प्रेम न रहा तो अन्य पुरुषों से प्रेम कैसे हो सकता। ये कंटकपूर्ण गृह अब सुख पूर्ण कैसे बनेंगे ? कलह, झगड़ों ने अपना साम्राज्य सर्वत्र एक-सा फैला दिया है कि परस्पर प्रेम: पुज्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के उस देवराज्य का अब अंत हो गया।

छाया सघन तरु फूट की कच सघन हम पर छा गई !
पाताल में, ऐसा लगे जड़ हो सुधारस पा गई !
तम-तोम में आलोक की आछन्न किरणें हो गईं !
ये मिल गये भू-व्योम ऐकाकार जगती हो गई ॥२९१॥

फूट का वृक्ष बढ़कर इतना घना बन गया कि उसने हमको चारों ओर से इतना गहरा ढक लिया कि किरण के दर्शन भी दुर्लभ हो गये इतना विशाल और लंबा हो गया कि पृथ्वी और आकाश, दोनों को उसने मिला-सा दिया। ऐसा प्रतीत होता है इस फूट के वृक्ष की जड़ को कहीं पृथ्वी के अन्दर अमृत प्राप्त हो गया।

इस फूट में वह शक्ति है, सलिलोधि में जो है नहीं!
माता कहीं, है सुत कहीं, पत्ता पिता का है नहीं!
घर, राष्ट्र इसने आज तक कितने ऊजड़ हैं कर दिये!
इसको जहाँ अवसर मिला वृश्यिक वहीं हैं भर दिये ॥२६२॥

फूट में वह बल है कि जो एक महासागर में भी नहीं होता है। जिधर फूट का प्रवाह बहता है, उधर सब चौपट हुआ समझिये। यह माता, पिता, पुत्र को अलग कोषों दूर कर देती है। आज तक इस फूटने कितने असंख्य घर और राष्ट्र नष्ट किये हैं कुछ पता नहीं! जहाँ इसके चरण पड़ते हैं, वहीं वृश्चिक (बिच्छू) पैदा हो जाते हैं अर्थात् अशांति उत्पन्न हो जाती है।

कलिराज के शस्त्रास्त्र के ये बन्धुओं! अभ्यास हैं!
तुमको हिताहित सोंचने का पर न हा! अवकाश है!
तुम संगठन के सार से मायाविनी को खोद दो!
जड़ फूट की तुम खोद कर जड़ प्रेम की तुम रोप दो ॥२६३॥

फूट आदि भाव महाकाल के अस्त्र और शस्त्र हैं, इनका प्रचार महाकाल का अपना कार्य करना है। परन्तु आप कभी भी अपने कल्याण अकल्याण का तनिक भी विचार नहीं करते हैं और फूट जैसे विनाशकारी भावों को अपनाते चले जा रहे हैं। बन्धुओ! एक्य भाव उत्पन्न करो और इस फूट के उत्पन्न होते हुए अंकुरों को उन्मूल कर डालो। और उस जगह प्रेम के बीज लगाओ।

आतिथ्य-सेवा

अतिथ्य, सेवा-धर्म को तुमने न जाना आज तक!
सत्कार अपना ही किया है हाय! तुमने आज तक?
अपने उदर की भरण विधि तो श्वान भी हैं जानते!
जो अनिमंत्रित हो उसे भिक्षुक अहो तुम मानते! ॥२६४॥

मेरे बन्धुओं! आज तक भी आपने अतिथि-सत्कार का महत्म्य नहीं समझा है। आज तक आप अपना ही मान करते आये हैं। श्वान भी अपना उदर भर लेता है, फिर आप में और श्वान में अन्तर ही क्या रहा? आपके द्वार पर अगर कोई अतिथि आ जावे तो आप उसको भिक्षुक गणते हैं।

जिस जाति में आतिथ्य-सेवा भावनायें हैं नहीं;
मानवपना कहते किसे, उसने न देखा है कहीं!
आये हुये का द्वार पर हो मान तुम नहीं कर रहे;
कंजूस, निर्मम, बेहया हैं पुरुष तुमको कह रहे! ॥२६५॥

२३

जो जाति अतिथि-सेवा को महत्व नहीं देती, वह सच है, मनुष्यत्व किसे कहते हैं, नहीं समझती। बंधुओ ! आपके द्वार पर आप आये हुए अतिथि का सत्कार नहीं करते हो; इसी लिये मनुष्य आपको कृपण, निर्लज्ज, निर्भय कहते हैं।

तुम खा रहे हो सामने, सुख ऐश तुम हो कर रहे;
मारे क्षुधा के रो रहा जन, पर उसे नहिं लख रहे !
अभ्यर्थना, आतिथ्य तुम अपने जनों की कर रहे;
कोई अपरचित आगया मनुहार तक नहीं कर रहे !॥२६६॥

मेरे बंधुओ ! आप भोजन कर रहे हैं, ऐश वैभव कर रहे हैं और आपके समक्ष दीन मनुष्य रो रहा है, परन्तु आपके हृदय में उसका रोदन सुनकर, देखकर भी करुणा उत्पन्न नहीं होती। आप अपने ही संबंधियों की सेवा-शुश्रूषा आज तक करते रहे हैं; अपरिचित व्यक्ति की आप मिथ्या मनुहार भी नहीं करते।

दान

भूपेन्द्र नरपति मेघरथ कैसे सुदानी हो गये !
हरने क्षुधा वे श्वेन की भी थे तुला स्थित हो गये !
देते हुये अब दान कौड़ी निकल जाते प्राण हैं ?
क्या काम तन,धन आयगा,तन में न जिसदिन प्राण हैं।२६७॥

महादानी सम्राट मेघरथ को कौन नहीं जानता है ! मांस भक्षी बाज की क्षुधा को शान्त करने के लिये कपोत के स्थान में
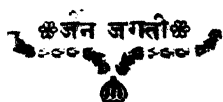
ये अपने को तोल कर देने को प्रस्तुत हुये थे। आज उन्हीं के अनुयायियों के प्राण एक कौड़ी का दान देने में निकल जाते हैं! यह तन और यह धन किस कार्य में आवेगा, जिस क्षण इस तन में प्राण नहीं रहेंगे।

सिगरेट, माचिस, पान में तुम हो करोड़ों खो रहे
पर दीन, दुखिया बन्धु को लखते हुये हो रो रहे!
तुम जैन हो या वर्णशंकर जैन के, तुम कौन हो?
ऐसे दयाहत् पूर्वजों की तो प्रजा नहिं, कौन हो? ॥२९८॥

व्यर्थ व्यय में आपका करोड़ों का धन जा रहा है; परन्तु दीन, दुःखी की सहायता आप करते हुये हिचक रहे हैं। आपके ये चरित्र देखकर शंका होती है कि आप जैन हैं या जैन पुरुषों के वर्ण शंकर (गोलक) हैं! क्योंकि ऐसे दयाहीन पुरुष वैसे दयावान जैन पूर्वजों की कभी भी संतान नहीं हो सकते।

कोटीश हो, लक्षेश हो, चाहे भले अल केश हो;
सकता न कर तुलना तुम्हारी आप याद अमरेश हो;
क्या काम का है वह मनुज पर हित न हो जिसने किया?
धन भी गया, वह भी गया, उपकृत न दीनों को किया!॥२९९॥

आप चाहे भले कितने भी संपत्ति शाली क्यों न होवे, इन्द्र भी आपके समक्ष तुच्छ क्यों न होवें परन्तु वह मनुष्य किस अर्थ का जिसने जीवन में परोपकार नहीं किया हो वह भी काल का भोजन बना, उसका वह धन, जिसमें वह इतना

अनुरक्त था, चला गया (नष्ट हो गया या उसको छोड़ना पड़ा) और दीन, असहाय पुरुषों की सहायता न की।

संयम

तुम जैन हो ? तुम ही बताओ, हम किसे जैनी कहें ?
जो राग-प्रेमी, द्वेष-सेवी हो उसे जैनी कहें ?
मन में बशा है मदनसुर, तन में रमा रस-ऐश है !—
क्या जैन होने के तुम्हारे चिह्न ये ही शेष है ! ॥३००॥

अगर आप अपने को जैन समझते हैं तो कृपया बतलाइये। जैन किस पुरुष को कहना चाहिए, जो राग-द्वेष का सेवन करता हो क्या उसको जैन कहा जाय ? आप कामी, रसिक और व्यसनी हैं। क्या आप अपने को केवल इन्हीं लक्षणों के आधार पर जैन समझते हैं।

मन पर तुम्हारा वश नहीं, वश चक्षु पर रहता नहीं,
जिह्वा तुम्हारी पर तुम्हारा वश कहीं चलता नहीं।
ये कर्ण भी स्वच्छन्द हैं, यह गन्ध-कामी नाक है,
उर में तुम्हारे स्पर्श की रहती जगी अभिलाष है। ॥३०१॥

मन, चक्षु और जिह्वा आपके वश में नहीं और नासिका और कर्ण भी स्वच्छंद हैं अर्थात् इन्द्रियों पर आपका तनिक भी अधिकार नहीं। हृदय में प्रति क्षण रतिभोग की अभिलाषा जाग्रत रहती है।

जब तक न संयम भावनाएँ आप में जग जायेंगी;
कल्याण की तब तक न कोई आशा भी दिखलायगी।
संयम-नियम तुम खो चुके, शैथिल्य-प्राणा हो चुके;
तुम पूर्व अपने मरण के चित्यास्थ सब विधि हो चुके॥२०२॥

जब तक आप इन इन्द्रियों को नहीं जीतेंगे, तब तक आपको अपने कल्याण की आशा नहीं बांधनी चाहिए। इन्द्रियों पर (का) अधिकार नहीं, जीवन में नियमितता नहीं रही, आचार-चरित्र में ढीले पड़ गये—आप इस प्रकार अपने को जीवित स्थिति में ही चिता (चित्य) पर रख चुके हैं।

शील

हा! शील का तो क्या कहें? हा शील शर्दी खा गया।
वत्सर अनेकों हो गये, पर स्वस्थ नहिं पाया गया।
अब तो तुम्हारा दोष क्या, जब बीज भी अब है नहीं।
क्या नाथ! कोई चीज! बिन बीज होती है नहीं?॥२०३॥

ब्रह्मचर्यव्रत के विषय में तो यहाँ कुछ भी कहना व्यर्थ है, क्योंकि उस व्रत को शर्दी लग गई और अनेक वर्ष व्यतीत होने पर भी वह अब तक स्वस्थ नहीं हो सका! शर्दी खाकर जब शील का बीज ही चला गया तब ऐसी स्थिति में हम जैनी अगर शीलवान न हों तो इसमें हमारा दोष भी क्या है! हे परमात्मन्! क्या संसार में बीज के अभाव में कोई वस्तु उत्पन्न ही नहीं होती है।

जिस शील के तुम शैल पर ऊँचे कभी थे यों चढ़े;
चढ़ कर उसी शैलेश से पर थे मोक्ष जाने को बढ़े!—
गिर कर उसी शैलेश से तुम आज चूर्णित हो गये!
संसार के तुम रज-कणों में चूर्ण हो कर खो गये॥३०४॥

जिस ब्रह्मचर्यव्रत, शील का आप लोग इतनी ऊँचाई तक पालन कर रहे थे और जिसका गहरा परिपालन कर आप मोक्ष पाने की चेष्टायें कर रहे थे, उसी शील को खोकर इतने भ्रष्ट एवं पतित हो गये कि आपके, आदर्श जीवन का अन्त ही हो गया।

पूर्वजों में संदेह

जिन पूर्वजों की देह से संभव हुई यह देह है,
उन पूर्वजों के वाक्य में होता हमें संदेह है!
मतिभ्रम हुआ अथवा हमारी बुद्धि कुंठित हो गई!—
प्रस्थान की तैयारियें अथवा अनैच्छिक हो गई! ॥३०५॥

हम पूर्वजों की संतान होकर, पूर्वजों के वाक्यों में (कथनों में) संदेह करने लगे हैं (यह कितनी लज्जा की बात है)। हमारी बुद्धि जड़ हो गई या भ्रमित हो गई या ये हमारे काल के निकट होने के लक्षण हैं कि जिससे इच्छा न होने पर भी इस संसार से रवाना होना पड़ेगा।

इतिहास अनुभव का किसी भी जाति का साहित्य है;
अनुभव किसी का खोगया, उसका विगत आदित्य है;
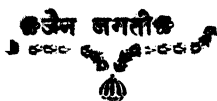
हमको न जाने क्या हुआ, क्या मत हमारी खो गई !
साहित्य ऐसे आप्त में शंका हमें क्यों हो गई ! ॥३०६॥

जाति के अनुभव का इतिहास ही उस जाति का इतिहास है। जिस जाति के पास अपने अनुभव का लेखा नहीं, उस जाति का भाग्यसूर्य अस्त ही समझिये। ज्ञात नहीं होता, हमारी बुद्धि नष्ट हो गई या कुछ ऐसा ही और हो गया। ऐसे कल्याणकारी साहित्य के प्रति आज हम इतने शंकाशील हैं; इसका क्या कारण है ?

नव कूप कोई खोद कर तत्काल जल क्या भर सका ?
तत्काल कर कोई कृषी नहिं है क्षुधा को हर सका।
क्या संपदा पैतृक कभी होती किसी को त्याज्य है ?
कुलपूत-भाजक के लिये तो भाज्य यह अभिभाज्य है॥३०७॥

क्या किसी ने यह सुना है कि कोई तृषित तत्काल कूप खोद कर, उस नव खनित कूप का पानी पीकर अपनी तृषा शांत कर सका है। यह आज तक तो संभव नहीं हो सका। दूसरों के अनुभव-धन से लाभ उठाने में हमारा कल्याण है। क्या पुत्र के निकट अपने माता-पिता की संपत्ति छोड़ने योग्य है ? वह संपत्ति कुलपुत्र के द्वारा उपभोग में ली जानी ही चाहिए।

आडम्बर

वैसा न अनुभव आज है, वैसी कोई बात है !
वैसी न अब है चन्द्रिका, श्यामा अमा कुहुरात है !

फिर भी उजाला दीपका कर तोम तम है हर रहे;
है प्राण तो तनमें नहीं, पर शव उठा कर चल रहे॥३०८॥

उन महान पूर्वजों जैसा न तो हमारा अनुभव ही है और वैसे हमारे में गुण और गौरव भरा अतीत जैसा यह वर्तमान युग भी प्रकाशपूर्ण नहीं। फिर भी वर्तमान युग में फैले हुये अंधकार को दीपक जला कर नष्ट करने की चेष्टायें कर रहे हैं, हमारी ये चेष्टायें इस प्रयत्न के समान हैं—देह में प्राण तो नहीं रहते और देह को उठा कर लिये फिर रहे हो।

केचिम्य ऐसे से कभी संमान बढ़ सकते नहीं;
शवको भले पकड़े रहो, पर प्राण आ सकते नहीं!
आडबंरों के शव जलाओ, तब कहीं जीवन रहे;
है नीर तो सरमें नहीं, पंकज वहाँ पर क्यों रहे॥३०९॥

मृत शरीर को लेकर फिरने जैसी मिथ्या चेष्टाओं से तन में प्राण नहीं आ सकते। इन मिथ्या आडम्बरों के नष्ट करने पर ही जीवन को बनने का अवकाश मिलेगा। सरोवर के जल हीन होने पर कमल कैसे खिले रह सकते हैं? अर्थात् सर में जल के शुष्क होने के क्रम के साथ ही कमल भी मुर्झाने लग जाते हैं।

दम्भ-पाखण्ड

हम जैन हैं जैनत्व तो हम में नहीं हरिनाम को!
हम शोधते हैं रात-दिन रति-पार्श्व में आराम को!

जल छान पीने में अहो! जैनत्व सारा रह गया!
काँदे, लषुन के त्याग में बस त्याग समुचित रह गया ॥३१०॥

बड़े अचम्भे की बात है कि हम में नाम मात्र को भी जैनत्व नहीं है फिर भी हम जैन हैं। कामनियों के सहवास के हम प्यासे हैं, वहीं हमारे लिये आराम है! वस्तुतः सत्य तो यह है कि जल छान कर पीने में सारे जैन धर्म का सार आ गया और काँदे लषुण के त्याग में सर्व त्याग आ गया।

अभिमान सच्चे जैन होने का न फिर भी छोड़ते;
मिथ्या वरण हो भग्न, हम तृण एक नहिं हैं तोड़ते!
इस दम्भ में, पाखण्ड में बस दम हमारा जायगा;
पाखण्ड काली रात्रि में जैनत्व शशि छिप जायगा ॥३११॥

इतना होने पर भी हम अपने आपको सच्चा जैनी समझते हैं। मिथ्या दिखावे को नष्ट करने के लिये तनिक भी यत्न नहीं करते। इस मिथ्या गर्व और पाखण्ड में ही हमारी जैन समाज का अन्त हो जायगा और जैन धर्म इस पाखण्ड की काली रात्रि के पूर्ण प्रकट होने पर चन्द्रमा के सदृश छिप जायगा।

हम में न अब वह तेज है, विभुवर! नहीं वह शक्ति है;
हम में न वह व्यक्तित्व है, हम अब नहीं वे व्यक्ति हैं।
श्रीमंत, धर्मी, बुद्धि शाली वैसे न पंडित योग्य हैं;
पर दम्भ तो मिथ्या हमारा लेखने ही योग्य हैं !!! ॥३१२॥

हे परमात्मन्। हम पूर्वजों के समान न तो धनी हैं, न बुद्धिमान् हैं, न तेजस्वी और शक्तिशाली हैं और न विद्वान् और धर्मात्मा और न हमारा व्यक्तित्व ही उतना ऊँचा है—संक्षेप में यह समझिये कि अब हम उन पूर्वजों जैसे जैन नहीं हैं; फिर भी हमारा जैन होने का दम्भ देखने योग्य है।

आवेदन

कितने दया के पात्र हैं, देखा दया सागर प्रभो।
कैसी दुराशागत दशा हा! हो गई मेरे विभो।
हे नाथ! तुम सर्व हुए हो, मैं क्या तुम्हें नूतन कहूँ।
पर आँह तो तुम ही कहो, किसको भला तुम बिन कहूँ॥३१३॥

हे दयानिधि परमात्मन्! आपने देख लिया कि हमारी दशा कितनी दयनीय है, कितनी पतित होकर निराशा की सीमा तक पहुँच गई है। हे ईश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप से क्या छिपा है, मैं आपको क्या नवीन कहूँ! परन्तु दुःख आपके अतिरिक्त किसे सुनाऊँ।

हे नाथ! पंकिल यों रहेंगे भक्त होकर आपके?
सब कुछ हमारे आप हैं, हे नाथ! हम हैं आपके।
क्या नाथ! दुर्दिन देश के शुभतर न होने पायँगे?
तो नाथ! अब तुम ही कहो, जीने अधिक हम पायँगे॥३१४॥

हे भगवान्! इस प्रकार हम पतन के दलदल में कब तक पड़े सड़ते रहेंगे? क्या देश की स्थिति सुधर अच्छी नहीं
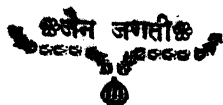
होगी ? क्या हम इस स्थिति में ही रहकर अधिक जीवित रह सकेंगे ? हे ईश्वर ! आप हमारे हैं और हम आपके हैं, इस संबन्ध को तो विचारिये ।

हे नाथ ! भारत हीन है । संतान इसकी दीन हैं ।
बलहीन हैं, मतिहीन हैं, हा ! घोर विषयालीन हैं ।
सद्बुद्धि देकर नाथ ! अब हमको सजग कर दीजिये ।
यह संतमस विपदावरण का नाथ ! अब हर लीजिये ॥३१४॥

हे ईश्वर ! भारतवर्ष सर्व प्रकार से आज पतित है । इसकी संतान बल-बुद्धिहीन और कुव्यसनी हैं । आप सद्बुद्धि देकर देश को जाग्रत बनाइये और घनो-छायो हुओ विपत्तियों के अंधकार को अब नष्ट कर दीजिये ।

होकर पिता क्या सुध तुम्हें लेनी नहीं है पुत्र की ?
अपयश तुम्हारा क्या नहीं, अपकीर्ति हो जब गोत्र की ?
हम हैं पुरातन भक्त तेरे, आज भी हम भक्त हैं;
सब भाँति विषयासक्त होकर भी तुम्हीं में रक्त हैं ॥३१५॥

हे भगवन् ! आप पिता हैं और हम पुत्र ! क्या पिता को पुत्र की सुध नहीं लेनी चाहिए ? संतान, परिवार को अपकीर्ति से क्या आपको अपकीर्ति नहीं होती ! हम अनंत काल से आपके परम भक्त रहते आये हैं और आज भी, यद्यपि सब ही प्रकार से हम दुर्व्यसनी और विषयी हैं, आप ही के भक्त हैं, एक मात्र आप में ही हमारी श्रद्धा है, भक्ति है ।

जब-जब बढ़ा अतिचार जग में, जन्म तुम धरते रहे;
निज भक्तजन के दौःख्य को तुम हो सदा हरते रहे।
अब नाथ! बनकर वीर जग में जन्म धारण कीजिये;
पुष्पित, फलान्वित दौःख्यवन को मूल से खो दीजिये॥३१७॥

जब-जब अत्याचार बढ़ा आप अवतार धारण करते रहे और इस प्रकार नित्य भक्तों का संकट निवारण करते रहे। हे भगवन्! महावीर बनकर एक बार और मनुस्यदेह धारण कीजिये और घने, विशाल वन के सदृश फैले हुये इस दुःख के वन को उन्मूल करिये।

परतंत्र भारतवर्ष को स्वाधीन अब कर जाइये;
हम भक्त होकर आपके किसको भजें बतलाइये?
बढ़ता हुआ गौवध तुम्हें कैसे विभो! सहनीय है!
दयहीन दयानिधि!हो रहे क्यों!जबकि हम दयनीय है?॥३१८॥

हे परमात्मन्! इस पराधीन हुये भारत देश को स्वतंत्र बना जाइये हम एक मात्र आपके भक्त हैं, फिर कहिये हम किसका भजन करें? दुःख में और किसका स्मरण करें? हे भगवन्! यह बढ़ता हुआ गौबध आपको किस तरह सहन हो रहा है! हम इस समय सर्व प्रकार से दया के पात्र हैं, फिर भी आप दयासागर होकर दया रहित कैसे बन रहे हैं? दया क्यों नहीं करते?

फिर से दयामय! राक्षसों में प्रेम-रस भर जाइये;
हम पतित होकर हो रहे पशु, मनुज फिर कर जाइये।

गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अब दुख अधिक नहिं दीजिये, हर लीजिये विपदावरण॥३१६॥

हे भगवन् ! अवतार धारण कर एक वार पुनः इन दयाहीन हुये नर हृदयों में दया का संचार कर जाइये । हम सर्व प्रकार पतित होकर पशु सहश्र हो रहे हैं, हमें फिर से मनुष्य बना जाइये । आप गोपाल का अवतार लेकर फिर कब संसार में जन्म लेंगे ? हे भगवन् ! अब हमको अधिक न सताइये, हमारी विपत्तियों को नष्ट कर दीजिये ।

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुख नष्ट हो ;
यह सह चुका है दुःख अति, इसको न अब तृण कष्ट हो ।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय है ;
पर आपके बल के बिना तो हम सदा असहाय हैं ॥३२०॥

हे ईश्वर ! हमारी यही प्रार्थना है कि हमारा देश स्वतन्त्र हो, इसके सभी दुःखों का अब अंत हो, अत्यन्त दुःख झेल चुका है, अब आगे तृण सहश्र भी इसको कोई कष्ट न हो । हम भी हमारा बल पहुंचते यत्न ही कर रहे हैं, फिर भी आपके बल के बिना हम सदा असहाय हैं ।

कैसे कहूँ भावी यहाँ ? कैसे सजग परिजन करूँ ?
मैं आप तिमिराभूत हूँ, कैसे तिमिर में पग धरूँ !
जिस युक्ति से भावी कहूँ, वह युक्ति तो बतलाइये ;
दैवज्ञ मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही लिखवाइये ॥

हे परमात्मन्! मैं मेरे देश का भविष्य फल किस प्रकार लिखूँ और मेरे देशवासी बांधवों को किस प्रकार फिर जाग्रत करूँ? जब कि मैं आप स्वयं अज्ञान होकर अंधकार में ग्रस्त हूँ! बतलाइये कैसे चरण रक्खूँ! हे भगवन्! वह उपाय कहिये, जिस उपाय से मैं भविष्य का वर्णन कर सकूँ! मैं ज्योतिषी नहीं हूँ, यह आप ही मुझ से लिखवाइये।

———

भविष्यत्-खण्ड ।

लेखनी ।

हा ! गा चुकी है लेखनी ! तू भूत, सम्प्रति रो चुकी ।
कर ध्यान भावी का अभी से हीन संज्ञा हो चुकी ?
विस्मृत न कर व्रत लेखनी ! तुझको न व्रत क्या स्मृत रहा ?
मैं क्या लिखूँ ! कैसे लिखूँ ! मुझसे न लिखते बन रहा ॥१॥

हे लेखनी ! गौरव शाली भूतकाल का वर्णन तू ने सोल्लास किया । वर्तमान का वर्णन तूने रोते-रोते किया । भवष्यि का ध्यान आते ही क्या तुझको मूर्च्छा आ गई ? तेरी यह प्रतिज्ञा कि जैन-जगती के तीनों कालों का वर्णन कर के तू विश्राम लेगी—क्या तू भूल गई ? लेखनी कहती है, 'मैं क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ ! मुझसे किसी भी प्रकार लिखते नहीं बन रहा है ।'

लेखनी के उद्‌गारः—

दिनकर दिवसहर हो गया ! रजनीश कुहुकर हो गया !
जलधर अनलसर हो गया ! मृदु वायु विषधर हो गया !
रातें दुरातें हो गई ! भाई विभो ! रिपु हो गये !
आशा दुराशा हो गई ! अब धर्म पातक हो गये ॥२॥

राजा प्रजारिपु हो चुके ! श्रीहंत धनपति हो चुके ।
जोगी कुभोगी हो चुके ! रोगी निरोगी हो चुके !

हत् शील हा ! हत्धर्म हा ! हत्कर्म भारत हो चुका।
हो जायगा जाने न क्या, जब आज ऐसा हो चुका ॥३॥

सूरज, चन्द्रमा, समुद्र, वायु, रात्रि, भ्राता, और धर्म सर्व अपने अपने स्वभाव और धर्म को छोड़ कर विपरीत प्रकृति हो गए हैं। राजा प्रजा के शत्रु, धनवान निर्धन, योगी दुर्व्यसनी तथा जो स्वस्थ थे आज रोगी हो गये हैं। भारतवर्ष धर्म से, कर्म से और सदाचार से विहीन हो चुका है ! जब इस समय भी यह स्थिति है तब नहीं जाना जा सकता कि आगे जाकर यह और किस अवगति को प्राप्त होगा।

अवसर कुअवसर आज है ! हा ! बुद्धि भी सविकार है।
वैशम्य, विषया-भोग, मत्सर, राग के व्यापार हैं।
सर्वत्र अंधाचार, हिंसाचार, अधमाचार हैं।
तुम में समाकर हो गये कृतकृत्य पापाचार हैं ॥४॥

अब भी समय है चेतने का यत्न अब भी कर सको;
अब भी नशों में शक्ति है, जीवन मरण को कर सको।
जो हो चुका, सो हो चुका अब ध्यान उसका मत करो;
पापी अनागत के लिये सब मंत्रणा मिलकर करो ॥५॥

जिस समय को अवसर समझते हैं, वही कुअवसर निकल जाता है। बुद्धि में विकार आ गया है। विषमता, विषय-वासना, राग, द्वेष तथा अत्याचार, हिंसायें और निकृष्ट आचरण सर्वत्र व्यापक हुये-से दिखाई दे रहे हैं। समस्त पापा-

चरण तुम्हारी शरण पाकर कृतकृत्य हो गये। परन्तु फिर भी चाहो तो चेत सकते हो, अभी तो उपाय करने का समय है। इस अवदशा में भी तुम्हारी रगों में ताकत है। मृत्यु को अभी भी तुम जीवन बना सकते हो। भूत काल का तनिक भी विचार मत करो। आने वाले अंधकारपूर्ण भविष्य के लिये सर्व जन एकत्रित होकर विचारण करो।

उद्बोधन

मेरे दिगम्बर भाइयो! श्वेताम्बरो! मेरी सुनो;
मैं भी सहोदर आपका हूँ, आज तो मेरी सुनो।
पारस्परिक रण द्वन्द्व को हम रोक दें बस एक दम;
कंधे मिलाकर साथ में आगे बढ़ा दें रे! कदम ॥६॥

हे मेरे दिगंबर तथा श्वेताम्बर भ्रातागण! मैं भी आप ही का एक भाई हूँ। कृपा करके मेरे कथन को भी श्रवण कीजिये। 'बस हम एक दम पारस्परिक कलह का अंत कर दें और कंधे से कंधा जुड़ा कर आगे कदम बढ़ा दें।'

हम पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना ही हमारा धर्म है;
पुरुषार्थ करने पर न हो वह कौन ऐसा कर्म है?
होकर मनुज नैराश्य को नहिं पाश लाना चाहिए;
नर हैं, नहीं तन में कभी खर भाव आना चाहिए ॥७॥

पुरुषार्थ-धर्म का पालन करने वाला ही पुरुष कहलाता है। हम पुरुष हैं। पुरुषार्थ करने पर ऐसा कौन है असंभव कर्म, जो

नहीं किया जा सकता है। मनुष्य होकर हम को निराश नहीं होना चाहिए। हमारे तनों में गदहों के भाव कभी भी नहीं आना चाहिए। गदहों के भाव लाकर हम परमात्मा के इस श्रेष्ठतम् नर रूप का अपमान करते हैं।

हम ही ऋषभ, अरनाथ हैं, भुजबल, भरत, बलराम हैं;
हम ही युधिष्ठिर, भीम हैं, घनश्याम, अर्जुन. राम हैं!
कंधे भिड़ाकर हम चलें, फिर क्या नहीं हम कर सकें?
कालिराज के काले शिविर उन्मूल जड़ से कर सकें ॥८॥

भगवान् ऋषभ देव और अरनाथ तथा चक्रवर्ती भरत और बाहुबली कृष्ण और बलराम, युधिष्ठिर और भीम, अर्जुन और श्रीरामचन्द्र हम ही तो हुये हैं और हम ही हो सकते हैं। संगठित होकर अगर हम सर्व आगे बढें तो क्या नहीं कर सकते हैं? यमराज के तने हुये भयंकर तंबुओं को उखाड़ कर सदा के लिये नष्ट कर सकते हैं!

पारस्परिक इस द्वेष के ये तीर्थ, आगम मूल हैं;
अमृत गरल है हो रहा! किसकी यहाँ पर भूल है?
मतिभ्रष्ट हम हैं हो रहे! हम द्वेष में हैं सन रहे!
इस हेतु आगम, तीर्थ भी सब प्राण-नाशक बन रहे!!!॥६॥

तीर्थ स्थल और साहित्य जो आज हमारे पारस्परिक कलह के कारण माने जाते हैं। यहाँ यह सोचने की आवश्यकता है कि अमृत विष के समान क्यों हो रहा है। हम स्वयं बुद्धिभ्रष्ट

हो गये हैं तथा द्वेष जैसे दुर्गुण से संयुक्त है। तब भला कल्याणकारी तीर्थ और आगमों की आड़ लेकर हम सर्वनाश को मोल लेवें, इसमें इनका क्या दोष है ?

'जिनराज वाङ्मय' नाम की संस्था प्रथम स्थापित करें ;
दोनों दलों के ग्रन्थ जिन-साहित्य में परिगणित करें।
संमोह, पक्षापक्ष का कोई नहीं फिर काम हो,
ऊपर किसी भी ग्रन्थ के नहिं साम्प्रदायिक नाम हो ॥१०॥

सर्व प्रथम 'जिनराज वाङ्मय' नामक एक साहित्य संस्था स्थापित करें। और वहाँ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों साहित्य का संग्रह हो। इस संस्था से प्रकाशित होने वाले किसी भी ग्रंथ पर साम्प्रदायिक नाम नहीं होना चाहिए। इस संस्था में पक्षापक्ष को स्थान ही नहीं मिलना चाहिए।

ये साम्प्रदायिक नाम यों कुछ काल में उड़ जायँगे ;
सतान भावी को खटकने ये नहीं कुछ पायेंगे।
यों एक दिन जाकर कभी क्रम एक विध बन जायगा ;
सर्वत्र विद्याभ्यास में यह भाव ही लहरायगा ॥११॥

समय पाकर ये सारे साम्प्रदायिक नाम नष्ट ही हो जावेंगे। आगे आने वाली संतति को इससे पश्चात्ताप नहीं होगा। इस प्रकार एक समय जाकर साहित्य का क्रम एक-सा हो जावेगा और सर्वत्र विद्याध्ययन में यही सामंजस्य भरा-पूरा रहेगा।

हैं भिन्न पुस्तक, भिन्न शिक्षक, भिन्न हैं सब श्रेणियें;
होती न क्या पर स्कूल में हैं एक भाषा शैलियें!
विद्यार्थियों में किस तरह होता परस्पर मेल है!
हो भिन्न भी यदि श्रेणियें, बढ़ता न मन में मैल है ॥१२॥

पाठशाला में कक्षायें, पुस्तकें और शिक्षक अपनी अपनी जगह भिन्न-भिन्न होते हैं। फिर भी पढ़ाने का ढंग और भाषा का माध्यम सब कक्षाओं में एक ही रहता है। विद्यार्थियों में परस्पर अनुपम संगठन होता है। कक्षायें भिन्न होने से विद्यार्थियों के मन में पारस्परिक द्वेष नहीं बढ़ता है।

यदि साम्प्रदायिक मोह हम इन मंदिरों से तोड़ दें;
सब साम्प्रदायिक स्वत्त्व को हम तीर्थ में भी छोड़ दें—
फिर देखिये कृतयुग यही कलियुग अचिर बन जायगा;
यह साम्प्रदायिक रोग फिर क्षण मात्र में उड़ जायगा ॥१३॥

मन्दिर और तीर्थों के साथ जो हमारा साम्प्रदायिक ममत्व और अधिकार लगा हुआ है, अगर वह हटा दिया जाय तो फिर देखिये यह कलियुग सत्ययुग-सा सुखदायी प्रतीत होगा और साम्प्रदायिक रोग उन्मूलित ही हो जायगा।

यह काम यदि हो जाय तो बस जय-विजय सब होगई।
भ्रातृत्व हममें आगया, जड़ फूट की बस खो गई।
कवि, शेष वर्णन भाग्य का फिर क्या हमारा कर सके?
हम-सा सुखी संसार में फिर कौन बोलो रह सके! ॥१४॥

साम्प्रदायिक रोग के नष्ट होते ही सर्व प्रकार की विजय प्राप्त हो गई; फूट जड़ से उखड़ गई; भाईचारा प्रतिष्ठित हो गया। हमारे उस सौभाग्य का वर्णन करने में कवि और स्वयं शेषनाग भी असफल रहेंगे। संसार में हमारे समान कोई सुखी नहीं मिल सकेगा।

हाँ, देखने ऐसा दिवस दृढ़ यत्न होना चाहिए;
बलिदान तक के भी लिए कटिबद्ध होना चाहिए।
हे नाथ! दो सद्बुद्धि, जिससे सहज ही यह काम हो;
फिरसे हमारा जैन-जग अभिराम, शोभा-धाम हो ॥१५॥

उस सुदिन को देखने के सुदृढ़ यत्न किये जाने चाहिए। प्राण देने का भी अवसर आ जावे तो तैयार रहना चाहिए। हे परमात्मन्! हमको सुमति दीजिये, जिससे हमारा साम्प्रदायिक रोग नष्ट करने का कार्य सहज हो जाय और फिर हमारा यह जैन-जगत शोभा का स्थान और अभिनव सुन्दरता प्राप्त करे।

आओ समस्यायें विचारें आज मिलकर हम सभी;
हम दो नहीं, हम शत नहीं, हैं लक्ष तेरह हम अभी।
इतना बड़ा समुदाय बोलो, क्या नहीं कुछ कर सके?
डट जाय तो गिरी राज का समतल धरातल कर सकें ॥१६॥

आज भी हम तेरह लाख हैं एक या दो तो नहीं हैं। आओ! सब मिलकर इन उपस्थित विषम स्थितियों पर विचार करें। मनुष्यों का इतना बड़ा संघ क्या नहीं कर सकता? अगर

प्रतिज्ञा कर लें तो हिमालय पर्वत को भी तोड़ कर समतल भूमि बना सकते हैं।

अनुचर सभी हो वीर के, तुम वीर की संतान हो;
जिसके पिता, गुरु वीर हो, फिर क्यों न वह बलवान हो?
विभुवीर के अनुयायियो! लज्जित न पुरखों को करो;
नर हो, न आशा को तजो, होकर न पशु तुम यों मरो ॥१७॥

भगवान महावीर के अनुयायी हो। उस महावीर की संतान (उसके द्वारा प्रवर्तित धर्म के मानने वाले) हो। जिस पुरुष के पिता और गुरु दोनों अगर वीर हों तो वह बलवान हो, इसमें आश्चर्य ही क्या है! हे महावीर के अनुयायियों! पूर्वजों को लज्जित मत करो। नर हो। निराश नहीं बनो। पशुवत जीवन व्यतीत करके मत मरो।

सबके चरण हैं, हाथ हैं, अवशेष कुछ बल-बुद्धि है;
कुछ दो चरण आगे बढ़ो, पुरुषार्थ में धन-रिद्धि है!
पूर्वज तुम्हारे वीर थे, तुम भीत, कायर हो गये!
नर के न तुम अब रूप हो, तुम रूप पशु के हो गये ॥१८॥

सब के हाथ और चरण हैं। कुछ बल और बुद्धि भी है। साहस करके दो कदम उठाकर कुछ आगे तो बढ़ो। पुरुषार्थ में धन और रिद्धि रहती है। तुम्हारे पूर्वज वीर थे और आज तुम कायर और डरपोक हो रहे हो। तुम मनुष्य का रूप नहीं हो, पशु का रूप हो।

अवसर पड़े पूर्वज हमारे देखलें तुम्हें कहीं;
मैं सत्य कहता हूँ सखे ! पहिचान वे सकते नहीं।
तन, मन, बचन व्यवहार में वैपर्य्य देखो आ गया;
मनुष्यत्व के अब स्थान में दनुजत्व तुममें छा गया ॥१६॥

अगर तुम्हारे पूर्वज दैवयोग से तुमको देख लें; मैं सत्य कहता हूँ, वे तुमको पहिचान नहीं सकते। तुम स्वयं देखो, तुम्हारे तन में, मन में, वचन में विपरीतता आ गई है। तुम्हारे में मनुष्यत्व की जगह राक्षसीपन भर गया है।

देखो न विधवायें घरों में किस तरह हैं सड़ रहीं;
सब ठौर तुममें धूम कैसी शिशु प्रणय की बढ़ रही।
खलु ब्रह्मव्रत ही नीम है उत्थान की वैसे अरे;
जब नीम ही दृढ़ है नहीं, मंजिल नहीं कैसे गिरे ?॥२०॥

विधवाओं की तुम्हारे घरों में कैसी दयनीय स्थिति हो रही है। फिर बालविवाह का प्रकोप है। मेरे भाइयो ! उत्थान की नीम तो ब्रह्मचर्य्य व्रत के पालन करने में है। जब नीम ही सुदृढ़ नहीं है, तो उसके ऊपर बनी हुई मंजिल कैसे नहीं गिर पड़ेगी ?

आत्म-संवेदन

हे देव ! अनुचित प्रणय के सहते कुफल अब तक रहे।
यों मूल अपनी जाति का हम खोदते अब तक रहे।

हा ! इस अमंगल कार्य से हम स्वाह, आधे बन चुके।
जो रह गये आधे अभी, यम-बन्ध उन पर कस चुके ॥२१॥

हे परमात्मन् अनुचित विवाह प्रथाओं में पड़ कर अब तक हम अपने किये का दुष्परिणाम भोग रहे हैं और इस प्रकार हम अपनी जाति का मूल ही उखाड़ रहे हैं। इस अहितकर अनुचित विवाह प्रथा से हम मृत प्रायः और न्यूनसंख्यक हो चुके हैं, इन रहे हुये न्यूनसंख्यकों पर भी यमराज के बंधन लागू हो गये हैं।

शिशु-पत्नि का कैसे भला पति साठ के से प्रेम हो !
सोचो जरा तुम्हीं भला, उस ठौर कैसे क्षेम हो !
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का विस्तार फिर हा ! क्यों न हो !
हा ! अपहरण, अपघात हो ! हा ! भ्रूण-हत्या क्यों न हो !!॥२२॥

बालपत्नि का साठ वर्ष की आयु वाले वृद्धपति से प्रेम कैसे जुड़ सकता है ! कष्ट करके कुछ तो सोचो, क्या ऐसे दम्पति आनंद-क्षेम से रह सकते हैं ? वहाँ तो व्यभिचार का जन्म होगा। दूषित प्रेम का फैलाव होगा, अपहरण, आत्मघात और भ्रूणहत्या जैसी घटनाएं घटेंगी।

नारी निरंकुश हो रही, पति भाग्य अपना रो रहे !
बिष पत्नि पति को दे रही, पतिदेव मूर्छित हो रहे !
आये दिवस ऐसे कथन सुनते ही हैं रहते प्रभो !
जब तक न हो तेरी दया, होगा न कुछ हमसे विभो !!॥२३॥

बालपत्नि स्वच्छंदता से रहती है, वृद्धपति अपने भाग्य को दोष देते हैं ! बालपत्नि वृद्धपति को विष देती है ; पतिराज मूर्च्छित पड़े हुये हैं । हे परमात्मन् आये दिन ऐसी ही दुर्घटनायें सुनते रहते हैं । जब तक तेरी सुदृष्टि नहीं होगी, हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ जावेंगे ।

तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
यों आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं !
कारण हमारे पतन के सब हैं निहित इस दोष में !
हे आत्मियों ! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष में !!॥२४॥

हे मेरे बन्धुओ ! मैं भली प्रकार सोचकर तथा आवेश में नहीं आकर आप से यह निवेदन कर रहा हूँ कि अच्छी शिक्षा नहीं होने से यह दुर्दशा प्राप्त हुई है । पतन के सर्व कारणों का मूल इसी एक दोष में है ।

होता तनिक भी ज्ञान यदि तुममें, न होती यह दशा !
इस हेतु तुम भी मूर्ख हो, नारी तुम्हारी कर्कशा !
शिक्षा बिना मतिधर मनुज उल्लू, निशाचर यक्ष है !
हम इस कथन की पुष्टि में खर लेख लो-प्रत्यक्ष है !!!॥२५॥

अगर तुम ज्ञानवान होते तो आज तुम्हारी यह दुर्दशा नहीं होती । यह सोचकर यह कहा जा सकता है कि तुम भी मूर्ख हो और तुम्हारी स्त्रियाँ भी कर्कशायें हैं । बुद्धिवान मनुष्य बिना सुशिक्षा के उल्लू, राक्षस और यक्ष के समान है अर्थात् वह

अपनी बुद्धि का उपयोग अनुचित ढंग से करता है। गदहा जैसे पशुओं में पीछे है, उसी प्रकार मनुष्य समाज में हम पीछे हैं, यही हमारे मूर्ख होने का प्रमाण है।

मिलकर सभी क्या अज्ञता का भार हर सकते नहीं ?
दीपक जला तम तोमका क्या नाश कर सकते नहीं ?
साहस करें—सब हो सके—हमको असंभव कुछ नहीं;
नरवर नपोलिन वीर को क्या था असंभव कुछ कहीं ?॥२६॥

हम सब संगठित होकर प्रयत्न करें तो क्या अज्ञानता को दूर नहीं कर सकते ? दीपक जला कर क्या घने अंधकार का नाश नहीं किया जा सकता है ? प्रयत्न करने से सब होता है। असंभव कुछ भी नहीं है। नरश्रेष्ठ नेपोलियन के लिये क्या असंभव था ? कुछ भी नहीं।

भेद-भाव-कुभाव को अब भूल जाना चाहिए,
सब साम्प्रदायिक मोह-माया त्याग देना चाहिए,
फैली हुई दुष्फूट का सिर तोड़ देना चाहिए,
सबको सहोदर मानकर मनको मिलाना चाहिए ॥२७॥

पारस्परिक भेदों को, बुरे विचारों को विस्मृत करना चाहिए। साम्प्रदायिक मोह और ममत्व को भी छोड़ देना चाहिए। विस्तार पाई हुई इस बुरी फूट की कपाल-क्रिया कर देनी चाहिए। प्रत्येक जन को बंधु मानकर उससे मन मिलाना चाहिए।

करना हमें सबसे प्रथम विस्तार शिक्षाचार का;
होता यहीं पर जन्म है सद्ज्ञान, शिष्टाचार का।
धर्मार्थ, शिवपद, काम का हरिद्वार शिक्षाचार है;
दैन्यादि रोगों के लिए यह एक ही उपचार है ॥२८॥

हमारा सर्व प्रथम कर्तव्य शिक्षा का विस्तार करना है। इस दयनीय स्थिति और सर्व विषाक्त परिस्थितियों को सुधारने का एक मात्र उपाय यही है। सुशिक्षा ही ज्ञान और सदाचार की माता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये सिंहद्वार यह सुशिक्षा ही है।

शिक्षा बिना उत्थान संभव हो नहीं सकता सखे!
शिक्षा बिना नहिं कर्म कोई पुण्य हो सकता सखे!
हा! देव! कुत्सित कर्म कैसे बढ़ रहे हैं नित नये!
आदर्शता में क्या विभो! होंगे न हम विश्रुत नये? ॥२९॥

शिक्षा बिना उत्थान भी संभव नहीं और कोई भी कर्म पुण्यपद को प्राप्त नहीं कर सकता। हे भगवन्! कैसे कैसे कुकर्मों की नित्य-प्रति वृद्धि हो रही है। हे परमात्मन्! आदर्शता में क्या हम फिर विख्यात नहीं होंगे?

क्या बन्धुओं! अब भी तुम्हें संचेतना नहीं आयगी?
तुम खो चुके सर्वस्व, अब बाजी बदन पर आयगी!
हे बन्धुओं! अब तो जगो, अब तो सहा जाता नहीं!
संबोध करता हूँ तुम्हें, मुझ से रहा जाता नहीं!!! ॥३०॥

हे बन्धुओं ! क्या अब भी तुम सावधान नहीं होओगे। तुम सर्वस्व खो चुके हो अब तुम्हारे पास में एक मात्र तुम्हारा शरीर बचा है। अब तो जागिए। तुम्हारी यह असावधानी मुझसे देखी नहीं जाती। मुझसे रहा नहीं जा रहा है, इसलिये मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

आचार्य, साधु, मुनि

गुरुराज ! तुम संसार के परित्यक्त नाते कर चुके,
तुम मोह-माया कामिनी के कक्ष को भी तज चुके,
ऐसी दशा में आपको झंझाल जब कुछ है नहीं—
काठिन्य जिसमें हो तुम्हें ऐसा न फिर कुछ है कहीं ॥२१॥

हे गुरुदेव ! आप संसार-त्यागी हैं। मोह-माया-सी रहित हैं। इस प्रकार आप सर्व सांसारिक झंझटों से एक दम मुक्त हैं। ऐसी स्थिति में कहीं भी कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसमें आप के लिये कठिनाई हो।

जग से प्रयोजन है नहीं, जग से न कोई अर्थ है ;
परिवार, नाते, गौत्र के सम्बन्ध सब निःअर्थ है।
निर्धन बने कोटीश चाहे, भूप कोई रंक हो ;
तुमको किसी से कुछ नहीं—सब ओर से निःशंक हो ॥२२॥

संसार से आपको कोई अर्थ, कोई प्रयोजन नहीं है। जाति, गौत्र और वंश संबंधी सारे संबंधों से आप परे हैं। निर्धन भले

धनी हो जायँ और राजा रंक क्यों न हो जायँ—आप ऐसी चिंताओं से मुक्त हैं। सर्व प्रकार से आप निडर हैं।

गुरुदेव ! चाहो आप तो सब कुछ अभी भी कर सको ;
तुममें अभी भी तेज है, तुम तम अभी भी हर सको।
सम्राट् हो कोई पुरुष, कोई भला अलकेश हो ;
अवधूत हो तुम, क्या करे वह भूप हो, अमरेश हो ॥३३॥

गुरुराज ! अगर आप करना चाहें तो अभी भी सब कुछ कर सकते हैं। इस पतनावस्था में भी आप में घोर (अज्ञान) अंधकार को नष्ट करने की ताकत है। कोई भले क्यों नहीं सम्राट्, कुबेर, राजा और इन्द्र हो। आप निडर, परमहंस साधु हैं। आप के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं होता।

पर साधुपन जब तक न सच्चा आपका गुरु होयगा;
जो तेज तुममें है, नहीं कुछ भी प्रदीपक होयगा।
गुरु ! आपको भी राग-मत्सर; मोह माया लग गई !
पड़कर प्रपंचों में तुम्हारी साधुता सब दब गई !! ॥३४॥

परन्तु आप में रहा हुआ वह तेज नहीं चमक सकता, जब तक कि आप सच्चे साधु नहीं हैं। आप भी राग, मत्सर, मोह, मायादि अवगुणों से भर गये हैं। फलतः आपको भी अनेक प्रपंचों ने घेर लिया है और इस प्रकार आपकी साधुता दब गई है।

जब तज चुके तुम विश्व को-अपमान, आदर कुछ नहीं;
उन्मुख सभी हो जायँ तुमसे—कर सकेंगे कुछ नहीं।

त्यागी-विरागी-साधु हो, अवधूत हो, तप-प्राण हो;
संभव असंभव कर सको तुम कर्म-प्राण-प्राण हो ॥३५॥

जब आप संसार त्यागी हैं, फिर मानापमान क्या ? समस्त दुनिया आपका शत्रु भले क्यों नहीं हो जाय। आपका वह क्या बिगाड़ सकती है ? आप त्यागी हैं, वीतराग हैं, साधु हैं, अवधूत हैं, तपस्वी हैं और वह प्राणी हैं जिसका कर्म ही प्राण है। असंभव बातों को आप संभव करके दिखा सकते हैं।

कर में तुम्हारे आज भी गुरुराज ! यह जिन जाति है;
सकती न हिल इस ओर से उस ओर कोई भाँति है।
तुम हो पिता, यह है सुता— विच्छेद कैसे घट सके ?
शाखा भला निज वृक्ष से क्या भिन्न होकर फल सके ॥३६॥

गुरुदेव ! इस पतनावस्था में भी यह समस्त जैन समाज आपका ही आज्ञानुवर्ती है। आपके आदेश के अभाव में यह इधर से उधर भी हिल नहीं सकती है। आप पिता हैं, यह पुत्री है। फिर दोनों के बीच में अंतर कैसे रह सकता है ? वृक्ष से कोई शाखा क्या अलग होकर फल और फूल सकती है ?

जिन जाति जीवन-प्राण के तुम मर्म हो तुम धर्म हो,
तुम योग हो तुम ऐश हो तुम ज्ञान हो, तुम कर्म हो,
आगम, निगम हो शास्त्र हो साहित्य के तुम मूल हो,
आध्यात्म-जीवन के लिए जलवायु तुम अनुकूल हो ॥३७॥
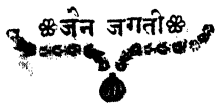
आप जैनसमाज के जीवन और प्राणों के मूल आधार हैं, और उसका धर्म भी आप ही हैं। सिद्धिदायक योग, कीर्त्तिदायक वैभव, कल्याणकारी ज्ञान और रागद्वेषरहित कर्म जैन समाज के तो आपही हैं। उसके नीति ग्रंथ, कथाग्रंथ और धर्मग्रंथ आप ही हैं। उसके साहित्य के मूल जन्मदाता आप ही हैं। धार्मिक जीवन के लिये आपका सत्संग रूपी जलवायु ही लाभप्रद है।

हा ! हंत ! हे भगवंत ! कैसे आज हो तुम, क्या कहूँ ?
मैं बहुत कुछ हूँ कह चुका, इससे अधिक अब क्या कहूँ ?
मैं नम्रता से कर रहा हूँ प्रार्थना गुरु ! आपसे,—
गुरुदेव ! अपगति आपकी अज्ञात क्या है आपसे ? ॥३८॥

हे भगवन् ! अत्यन्त दुःख की बात है कि आज आप कितने पतित हो चुके हैं ! क्या कहूँ ? पर्याप्त कह चुका हूँ। उससे अधिक और क्या कहूँ ? सविनय आप से यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप अपनी अधोगति को देखिये। क्या यह आप से छिपी हुई है ?

मुनि वर्ग में सर्वत्र ही हैं रण परस्पर हो रहे !
इस रण-थली में धर्म के सब तत्व मूर्दे हो रहे !
तन, मन, वचन अरु कर्म में पहले तुम्हारे योग था !
आचार में, व्यवहार में नहिं लेश भर भी रोग था ॥३९॥

सर्व जगह साधुओं में भी कलह फैला हुआ है। और इस कलह के कारण धर्म के सर्व तत्व निस्सार हो रहे हैं। पूर्व काल में आप तन, मन और वचन से एक थे। आपके आचार और व्यवहार एक दम विशुद्ध थे!

जब साम्प्रदायिक द्वेष, मत्सर से तुम्हें भी द्वेष था;
उन सद् उरों में आपके जब क्लेश का नहिं लेश था,
जिन जाति का उत्थान भी संभव तभी था हो सका!
जब गिर गये गुरु! आप, पतनारंभ इसका होसका ॥४०॥

जैन समाज का उत्थान भी तभी हो सका था कि जब आप सम्प्रदायिक द्वेष और मत्सर से एक दम दूर रहते थे और कलह आपके मानसों को छू तक नहीं सका था। आप जब पतित हो गये तो समाज का पतन भी प्रारंभ हो गया।

जिन धर्म के कल्याण की यदि है उरों में कामना,
जिन जाति के उत्थान की यदि है उरों में चाहना,
इस वेशपन को छोड़कर सम्यक्त्व-व्रत तुम दृढ़ करो;
यों साम्प्रदायिक व्याधियों का मूल उच्छेदन करो ॥४१॥

यदि जैन धर्म और जैन समाज का उद्धार और अभ्युदय आप सचमुच चाहते हैं, तो साधुवेष ही सब कुछ है—इस पाखण्ड को त्याग कर विशुद्ध सम्यक्त्व व्रत में सुदृढ़ होइये और इस प्रकार साम्प्रदायिक रोगों का निराकरण कीजिये।

कंचन तुम्हें नहिं चाहिए, नहिं चाहिए तुमको प्रिया;
फिर किस तरह गुरु! आपमें यों चल रही है अनुशया!
आत्माभिसाधन के लिये संसार तुमने है तजा;
फिर प्रेम कर संसार से क्यों आप पाते हैं सजा ॥४२॥

ये सुवर्ण और स्त्री, जिनके लिये ही संसार में झगड़े उठते हैं, जब आपको नहीं चाहिए, फिर किस कारण साधु साधु में कलह मचा हुआ है? आत्म कल्याण करने के लिये तो आप संसार त्यागी बने और फिर संसार से प्रेम करके दण्ड क्यों पा रहे हैं?

बदला हुआ है अब जमाना, काल अब वह है नहीं;
उस काल की बातें सभी अनुकूल घटती हैं नहीं।
युग-धर्म को समझो विभो! तुमसे यही अनुरोध है,
कर्तव्य क्या है आपका करना प्रथम यह शोध है ॥४३॥

पहिले वाला समय अब नहीं है। यह एक दम विपरीत समय है। उस काल की समस्त बातें इस काल में एक दम अनुकूल नहीं हैं। प्रार्थना यही है कि युग के स्वभाव को देख कर यह निश्चय करना चाहिए कि मूल आदर्श को यथावत् स्थिर रखने के लिये आपका क्या कर्तव्य है।

इसमें न कोई झूठ है, अब मोक्ष मिलने का नहीं,
तुम तो भला क्या सिद्ध को भी मोक्ष होने का नहीं।
तिस पर तुम्हें तो राग, माया, कोह से अति प्रेम है,
श्रावक, श्रवण मिलकर उठो अब तो इसी में क्षेम है ॥४४॥

२५

यह नग्न सत्य है कि इस भौतिकवाद के युग में कोई भी मोक्ष गति प्राप्त करने योग्य क्षमता प्राप्त नहीं कर सकता। आप तो क्या अगर सिद्ध भी कहीं हों, उनको भी यह कठिन होगा। फिर आप तो राग, माया और क्रोध से भरे-पूरे हैं। कल्याण अब तो है तो एक मात्र संगठित रूप से मिलकर उठने में है इसके लिये साधु और श्रावक दोनों को मिलकर प्रयत्न करना चाहिए।

गुरु! आप मुनिपन छोड़कर श्रावकपना धारण करें—
ऐसा कथन मेरा नहीं, शिव! शिव! हरे! शिव! शिव! हरे!
जब तक नहीं गुरु! साधुगण सम्यक्त्व-पद तक जा सकें,
उपयुक्त तब तक के लिए यह कथन माना जा सके ॥४५॥

गुरुराज! इस का आप यह अर्थ नहीं लगावें कि मैं यह चाहता हूँ कि आप साधुवेष त्याग कर पुनः गृहस्थी बन जावें। अरिहंत! अरिहंत! मेरा कथन ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। बात केवल इतनी है कि जब तक आप में वह सम्यक्त्व-पद प्राप्त करने की योग्यता उपस्थित नहीं हो जाती है, तब तक के लिये मेरी यह प्रार्थना मान्य रहनी चाहिए।

तुम पीटते हो ढोल अपने साधुपन का विश्व में;
आदर्श क्या वह साधुपन अब है तुम्हारे पार्श्व में?
इस नग्नपन से नग्नपन अब तो नहीं गुरु पा सको;
यदि आज मत्सर छोड़ दो, कल को उसे तुम पा सको ॥४६॥

साधुत्व की आप डींग मारते हैं। क्या वह आदर्श साधुत्व आपके पास में है? इस पतित अवस्था में आप नग्नावस्था में रह कर वह नग्नता अर्थात् निर्लेपता प्राप्त नहीं कर सकते। हाँ, अगर आप मत्सरादि अवगुणों से रहित हो जाते हैं, तो निर्लेपावस्था अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

तब ढोंग, आडम्बर तुम्हें मिथ्या न करना चाहिए;
वैसे न हो जब आज, नहिं वैसा दिखाना चाहिए।
शास्त्रोक्त साध्वाचार तुम जब पाल सकते हो नहीं;
आचार में शोधन करो ऐसा कि कुछ तो हो सही॥४७॥

ऐसी दशा में मिथ्याडंबर और ढोंग करना व्यर्थ है। वैसे आदर्श साधु जब आज नहीं हैं, तो वैसे दिखाने की कपट क्रिया भी नहीं करनी चाहिए। शास्त्रोक्त विधि से जब आचार आप पूरा २ नहीं पाल सकते हैं, तो फिर आचार में संशोधन करना चाहिए, जिससे कुछ तो कार्य किया जा सके।

ये गच्छ, स्तुति अरु पंथ गुरुवर! आपके ही पंथ हैं;
ये थे कभी सुन्दर, मनोहर—आज विकृत पंथ हैं।
इन गच्छ, स्तुति अरु पंथ के जब तक न झगड़े अंत हों—
तब तक नहीं संभव कहीं उत्थान—तुम धीमन्त हो॥४८॥

ये गच्छ, स्तुति और साम्प्रदायें सर्व आपके ह तो उत्पन्न किये हुये हैं। कभी ये उपयोगी और सुन्दर थे; लेकिन आज घातक हो उठे हैं। आप तो बुद्धिमान हैं। सहज समझा जा

सकता है कि इनके जब झगड़े शान्त होंगे, तब ही उत्थान संभवित समझना चाहिए।

तुमको पड़ी पर गर्ज क्या, तुम ध्यान क्यों देने लगे !
मरते हुए का बाप रे ! तुम क्यों भला करने लगे !
गिरते हुए पर आप गुरुवर ! टूट विद्युत से गिरे !
ऐसी दशा में आश है क्या हाय ! जीवन की हरे ! ॥४९॥

परन्तु आप को ऐसी क्या चिंता है, जो आप इधर ध्यान देवें। जो मरण-प्राय हो रहा है, उसका भला करने से लाभ ही क्या है ! हम पतित तो हैं ही और ऊपर से फिर आप बिजली के समान टूट कर गिर पड़े। ऐसी स्थिति में जीवित रहने की क्या आशा की जा सकती है ?

अतिचार, शिथिलाचार गुरुवर आपका अब लेख्य है !
घृत-दुग्ध की बहती हुई सरिता तुम्हारी पेख्य है !
मिष्टान्न बिन अब एक दिन होता तुम्हें गुरु ! भार है !
मेवे, मसाले उड़ रहे—अंगूर बस रसदार है !!! ॥५०॥

गुरुराज ! आपका आचार में शैथिल्य और अतिचार अत्यन्त शोचनीय स्थिति को पहुँच चुका है। आपके पात्रों में घी और दूध बहता है। मिठाई के बिना आपको एक दिन भी भारी हो जाता है। अब तो मेवे, मसाले और रसदार अंगूर उड़ते हैं, जो कामोत्तेजक खाद्य पदार्थ हैं।

गुरु ! पड़ गये तुम स्वाद में, उपवास, व्रत सब उड़ गये !
अतएव गुरुवर ! श्रावकों के दास, भिक्षुक बन गये !
अब प्रेमियों के दोष गुरु ! यदि आप जो कहने लगे,—
घृत-दुग्ध, रस मिष्टान्न में गुरु ! दुख तुम्हें होने लगे ॥५१॥

गुरुराज ! स्वादिष्ट व्यंजनों में आपकी जिह्वा पड़ गई। फलतः उपवासादि व्रत अन्त प्रायः हो गये। दूसरा परिणाम इसका यह निकला कि आप गृहस्थियों के दास (चापलूस) और भिखारी बन गये। अपने प्रेमी श्रावकों को इसी हेतु अब आप सच्ची २ बातें नहीं सुना सकते। अगर सुनाने लग गये तो घी, दूध और मिष्टान्न के मिलने में भारी विघ्न उठ खड़ा होगा।

उपवास दो दो माह के भी आज तुम में कर रहे;—
हा ! हन्त ! ये सब मान-वर्धन के लिये हैं कर रहे !
पाखण्ड-प्राण साधुओं का राज्य है फैला हुआ।
सहवास इनका प्राप्त कर सद्साधु भी मैला हुआ ॥ ॥५२॥

ऐसे भी साधु हैं जो दो २ माह के उपवास करते हैं। बड़ी शर्म की बात है कि वे यह सब अपनी प्रसिद्धि के लिये करते हैं। पाखण्डी साधुओं का समस्त जैन समाज में प्रभाव फैला हुआ है। इन पाखण्डी साधुओं के सहवास में रह कर अच्छे साधु भी मलीन हो रहे हैं।

गुरु ! वेष-धारी साधुओं की क्यों भला बढ़ती न हो।
जब है इधर पड़ती दशा, फिर क्यों उधर चढ़ती न हो !

शिशु क्रीत करने की प्रथा, तुम में विनाशी चल गई ;
वे क्रीत दीक्षित क्या करें, जिन के हृदय की मर गई ॥ ॥५३॥

गुरुराज ! वेषधारी साधुओं की सर्वत्र पटे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जब हम भी पतित हो रहे हैं; तो दोनों ओर मेल बना रहे तो स्वाभाविक ही है । छोटी आयु वाले बालक खरीद कर साधु बनाने की अति निंदनीय रीति चल पड़ी है । वे क्रीत साधु जिनकी इच्छायें अतृप्त ही रह गई हैं, साध्वाचार को भला कैसे पाल सकते हैं ?

सुविरक्त होकर विश्व मे नर साधु-व्रत धारण करें;
कल्याण वह अपना करें, त्रय ताप वह दारुण हरें ।
गुरुदेव ! पर यह बात तो है आपके वश की नहीं;
अब आप इसमें क्या करें, जब भावना जगती नहीं?॥५४॥

संसार से जो अच्छी प्रकार तृप्त होकर साधु बनता है, वह ही अपना कल्याण करता है और जन्म, जरा और मृत्यु के दारुण दुःखों का अंत करता है । गुरुराज ! परन्तु यह आप के अधिकार की तो बात नहीं है । साधु बनने की जब किसी में भावना ही उत्पन्न नहीं होती है, आप का क्या दोष है ?

अब एक मेरी प्रार्थना है, आप यदि गुरु ! मानलें;
यह वेष पावन भूलकर यह वेष भिक्षुक जानलें ।
गुरुदेव ! भिक्षुक से अधिक अवमान तो है आपका ?
तुम पूज्य अपने को कहो, नहिं पूज्य-पद है आपका ॥५५॥

अगर आप मानें तो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि आप के इस वेष को साधु का वेष कह कर साधुवेष का अपमान नहीं कीजिये। इस वेष को अब भिक्षुक का वेष ही समझना चाहिए। एक भिक्षुक से अधिक अब आपका सम्मान भी नहीं रहा है। आप भले अपने को पूज्य समझें, वह पूज्यपद तो अब आपका नहीं रहा है।

जिस क्षेत्र में तुम फूट के हो बीज गुरुवर! बो चुके,
उस क्षेत्रफल में आप भी आराम से बस सो चुके।
निष्कर्ष अन्तिम यह हुआ इस अवदशा पर ध्यान दो;
गुरु! काटकर यह शस्य कुत्सित आज जीवन दान दो॥५६॥

जैन समाज में फूट के बीज आपने ही तो बोये हैं। फिर आप की भी शांति से रात्रि कैसे व्यतीत हो सकती है? तात्पर्य यह है कि इस अवदशा पर हे गुरुराज! विचार करिये और फूट के बीजों की जो यह विषाक्त कुकृषि हो गई है, उसको काट कर जीवन-दान दीजिये।

गुरुदेव! पूर्वाचार्यवत् आदर्श जीवन तुम करो,
पंचेन्द्रियों का संवरण कर शीलमय संयम करो।
त्रयगुप्ति, पंचाचार का, व्यवहार का पालन करो,
जीवन करो तुम समितिमय, आचार्य-पद सार्थक करो॥५७॥

गुरुराज! पूर्वज आचार्यों के समान आदर्श जीवन बनाइये। पांचों कर्मेन्द्रियों का जीतकर शीलमय संयमव्रत का

परिपालन करिये। तीनों गुप्तियों का, पांचों आचार और व्यवहार का और समितियों का विधिपूर्वक पालन करके आचार्य पद को सफल बनाइये।

दुःशीलता में वैर हो, तुमको घृणा हो रूप से,
तुमको न कोई अर्थ हो श्रीमंत, निर्धन, भूप से।
गौरव-भरी प्राचीनता की ज्योति फिर वह जग उठे,
यह रवि उदय के आगमन पर तम तिलामिल जल उठे ॥५८॥

शीलव्रत से प्रेम हो, रूप में घृणा हो, श्रीमंत और निर्धन के अंतर से कुस्नेह हो, ज्योतिष्पूर्ण वह प्राचीन गौरव फिर जगमगा उठे। इस सूर्य के उदय होते ही यह अज्ञानता का घोर अंधकार विकल होकर नष्ट हो जायेगा।

चारित्र—दर्शन—ज्ञानमय वातावरण जलवायु हो;
ऐसा सुखद वातावरण हो-क्यों न हम दीर्घायु हो?
गुरुवर! अहिंसावाद का जग को पढ़ा दो पाठ तुम;
हम रह गये पीछे अधिक-आगे बढ़ादो आज तुम ॥५९॥

जैन समाज का जलवायु चारित्र, दर्शन और ज्ञान से बना वातावरण हो। यदि यह सुखकर वातावरण उत्पन्न हो जाय तो जैन समाज के दीर्घायु होने में फिर क्या शंका है? गुरुराज! संसार को अहिंसावादी बना दीजिये। हम संसारी बहुत पीछे रह गये हैं, आप आगे बढ़ा दीजिये।

इस साम्प्रदायिक द्वेष-मत्सर-राग को तुम छोड़ दो,
खण्डित हुये इस धर्म के तुम खण्ड फिर से जोड़ दो।
अब भी तुम्हारा तेज है—इतने पतित तो हो नहीं,
आज्ञानुलंघन हम करें गुरु ! धृष्ट इतने तो नहीं ॥६०॥

गुरुराज ! इस साम्प्रदायिक द्वेष, राग और मत्सर का त्याग कर दीजिये। अनेक खण्डों में विभाजित हुये इस जैन धर्म को पुनः जोड़कर एक बना दीजिये। इस पतितावस्था में भी आप में तेज अवशिष्ट रहा हुआ है, इतने अधिक पतित नहीं हुये हैं। गुरुराज ! और हम भी इतने क्षुद्र नहीं हैं कि आप की आज्ञाओं की अवहेलना करें।

साध्वियें

हे साध्वियों ! स्त्र्युद्धार का अब भार तुम सभाल लो,
जिनके लिये तुम थीं चली पति-गेह तजकर सार लो।
नारीत्व में शृंगार के जो भाव घर कर घुस गये—
उनके अखाड़े तोड़ दो सद् भाग्य जग के जग गये ॥६१॥

हे साध्वियों ! स्त्रियों का सुधार करने का उत्तरदायित्व आप संभाल लीजिये। स्त्रीजाति का समुद्धार करने के लिये ही आपने गृहस्थाश्रम को जब छोड़ा है तो अब उस कार्य को करके व्रत पूर्ण करना चाहिए। स्त्रियों की एक मात्र शृंगार के प्रति जो आसक्ति हो गई है, उसको विनष्ट कर दीजिये। बस संसार का सौभाग्य खुल जायगा।

स्त्रीवर्ग का सिंहावलोकन आज तुम आचरण करो,
स्त्रीवर्ग को पूज्ये ! उठाने का अचल व्रत तुम करो।
आदर्श होंगे आप तो आदर्श होंगी नारियें,—
यदि बढ़ रही हैं आप कुछ, तो बढ़ सकेंगी गृहणियें ॥६२॥

स्त्रीजाति की दशा का आप पूरा निरीक्षण करिये और उनके उत्थान का व्रत लीजिये। अगर आप आदर्श हैं और अपनी उन्नति कर रहा हैं तो गृहणी स्त्रियाँ भी अवश्य आदर्श होंगी और आगे बढ़ेंगी।

हे साध्वियों ! फिर आप भी तो साधुओं के तुल्य हैं;
इनसे न कुछ हैं आप कम—इनमें न कम कुछ मूल्य है।
आत्मार्थ साधन के लिये तुमने तजा पतिगेह को;
समझो न कोई चीज़ फिर इस निज विनश्वर देह को ॥६३॥

हे साध्वियों ! गौरव, प्रतिष्ठा और पद में आप भी साधुओं के ही समान हैं ! आत्मा का कल्याण करने के लिये ही आपने पतिगृह को त्यागा है, अतः इस नाशमान देह से कुछ भी ममत्व नहीं रक्खो।

नेता

नेताजनों ! यदि धर्म है कुछ आपके इस प्राण में;
सर्वस्व यदि तुम दे रहे हो जाति के कल्याण में।
फिर क्यों नहीं जूना नया तुम आज तक कुछ कर सके;
हमको परस्पर या लड़ाकर उदर अपना भर सके ?॥६४॥

नेतागण! आपके मानसों में यदि धर्म का कुछ अंश है और जाति के उद्धार के लिये आप अपना सर्वस्व स्वाह कर रहे हैं; फिर भी समाज में कुछ नया-जूना नहीं बन रहा है—आश्चर्य है। प्रतीत ऐसा होता है कि समाज में फूट डाल कर आप लोग अपना पोषण ही कर सके हो।

तुम साम्प्रदायिकता तजो, तुमको न इससे नेह हो;
हमको मिलाने में तुम्हारे एक मन, धन, देह हो।
करते रहोगे इस तरह दृढ़ हाय! क्या दल-बंदियाँ?
कब आयगी वह भावना, जब खोल दोगे ग्रंथियाँ?॥६५॥

साम्प्रदायिक ममत्व को त्याग दो। तन, मन और धन लगाकर हमको संगठित करने का प्रयत्न करो। इस प्रकार दल-बंदियां कब तक करते रहोगे? हमारे में पड़ी हुई कपट की गांठें खोलने की तुम्हारे अन्तरों में भावनायें कब उठेंगी?

व्याख्यान की नेताजनों! इस काल में नहिं माँग है;
खर-रेंकना; कपि-कूदना तो मसखरों का स्वांग है।
व्याख्यान के ही साथ में कुछ काम भी करते रहो;
बस कार्य में जो तुम कहो परिणित उसे करते रहो॥६६॥

इस युग में गदहों, बन्दरों तथा मसखरों की चेष्टायें करते हुये केवल व्याख्यान देने की अधिक आवश्यकतायें नहीं है। कुछ कार्य कीजिये। जो आप लोग कहते हैं, वह कर के दिखाइये।

होते तुम्हारे स्वागतों को रोकते हैं हम नहीं ;
पर ईश के समतुल तुम्हें हम मानलें - संभव नहीं ।
स्वागत तुम्हारे स्टेशनों पर शौक से होते रहें ;
अपखर्च जब तुम रोकते, फिर खर्च यों होते रहें ? ॥६७॥

स्थल-स्थल पर जो तुम्हारे स्वागतोत्सव किये जाते हैं, हम उनको बंद करना नहीं चाहते । परन्तु यह असंभव है कि हम आपको ईश्वर के बराबर स्वीकार करलें । रेल्वे-विश्राम स्थलों पर भले तुम्हारे स्वागत किये जायं । परन्तु अपव्यय रोकने का आप उपदेश देते हैं और फिर इस प्रकार व्यर्थ व्यय चलते रहें—यह उचित है ?

नेताजनों ! तुम स्वागतों की चीज केवल हो नहीं ;
व्याख्यान देने मात्र से बन जायगा सब—सो नहीं ।
कर से करो तुम काम अब, यह काम ही का काल है;
दुर्गुण हमारे हैं अधिक, दुर्दैन्य-सैन्य विशाल है !! ॥६८॥

नेतागण ! आप केवल स्वागत की वस्तु नहीं हैं । एक अकेली व्याख्यान क्रिया से सब बनने वाला नहीं है । यह युग हाथ से कार्य करने का है अतः हाथों से कार्य कीजिये । इधर हम अवगुणों के प्रकोप से कमजोर हो रहे हैं और उधर दारिद्र्य का विशाल सैन्य हमारे पर आक्रमण किये हुये है !

अतिचार पापाचार दिन-दिन लेख लो हैं बढ़ रहे !
अनमेल अनुचित पाणि-पीडन रात-दिन हैं बढ़ रहे !

इस साम्प्रदायिक भूत से ही भूत वैभव खो चुके !
जिनके घरों में भूत हों, उनके जगे घर सो चुके !! ॥६६॥

प्रतिदिन अतिचार, पाप, अनुचित विवाह बढ़ रहे हैं। तथा इस साम्प्रदायिकता के भयंकर ममत्व को पाल कर हमने वह अतीत का गौरव भी विनष्ट कर दिया। जिनके घरों में भूत (एक यानि) निवास करते हों, उनके भरे-पूरे वे घर भी एक दिन निर्जन स्थल बन जाते हैं।

नेताजनों ! अब जाति-जीवन है तुम्हारे हाथ में;
जीवन-मरण-भवितव्यता सब कुछ तुम्हारे हाथ में।
यह जाति आशागीर है, तुम आप आशागार हो;
तुम यत्न कुछ ऐसे करो बस अचिर जात्युद्धार हो ! ॥७०॥

नेतागण ! जाति का जीवन और मृत्यु तथा इसका भविष्य सब आपके अच्छे और बुरे प्रयत्नों पर आश्रित है। जाति को आप से आशा है। आप कुछ ऐसे प्रयत्न कीजिये कि जिससे जाति का उद्धार शीघ्र हो सके।

उपदेशक

करके दया उपदेशकों ! ऐक्यता पर जोर दो;
बिखरे हुए हैं रत्न माला के—उन्हें फिर जोड़ दो।
अपवाद-खंडन-चोट से चक-चूर अब करना नहीं;
गिरते हुए पर वज्र का आघात फिर करना नहीं ॥७१॥

हे उपदेशकगण ! सर्वत्र संगठन का प्रचार कीजिये । समाज-रूपी माला के पुरुष-रूपी रत्न यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं, उनको फिर पिरो कर सुन्दर समाज-रूपी माला तैयार कर दीजिये। बिखरे हुये रत्नों पर फिर अपवाद, खंडन की चोटें मारकर उन्हें चक-चूर नहीं कर डालना । पतित हुये पर फिर बज्र का प्रहार नहीं करना ।

हमको जगाने के लिये तुम यत्न उर भरकर करो ;
तुम अब नहीं पर साम्प्रदायिक रोग को वर्धित करो !
सहयोग दो गिरते हुए को फिर उठाने में हमें ;
उसको लगादो मार्ग में, पथ-भ्रष्ट जो दीखे तुम्हें ॥७२॥

हमको जाग्रत बनाने के लिये आप शक्तिभर उपाय करिये। अब इस विषाक्त साम्प्रदायिक रोग की वृद्धि मत करना । गिरे हुये को उठाने में हमको सहयोग दीजिये और जो पथ-भ्रष्ट हो गया है, उसको मार्ग में पुनः लगा दीजिये ।

श्रीमन्त

श्रीमन्त ! बोलो, कब तलक तुम यों न चेतोगे अभी ?
क्या अवदशा में और भी अवशिष्ट देखोगे अभी ?
तुम कर्म से, तुम धर्म से हो पतित पूरे हो चुके !
आलस्य, विषयाभोग के आवास, अड्डे हो चुके !!! ॥७३॥

हे धनवानजन ! कब तक आप असावधान बने रहेंगे ? क्या अभी भी आपके पतन में कुछ कमी दिखाई देती है ? कर्म

तथा धर्म—दोनों दृष्टियों मे आप पूर्ण पतित हो चुके हैं। आलस्य और विषयादि भोगों के आप पूरे घर बन चुके हैं।

है अज्ञता तुमको प्रिया सम, विषय रस निज बन्धु हैं;
है रोग तुमको पुत्र सम, कलदार करुणासिन्धु है।
तुम भोग में तो श्वान हो, तुम स्वार्थ में रण-शूर हो;
परमार्थ में तुम हो वधिर, अपने लिये तुम सूर हो ॥७४॥

अज्ञानता आप को स्त्री के समान प्यारी है, विषय का आनंद सहोदर के समान निकटतम् संबंधी है, रोग पुत्र के समान हृदय का टुकड़ा है, रुपया ईश्वर तुल्य है। भोगों में कुत्तों के समान आतुर, स्वार्थपरता में तत्पर और सावधान तथा परोपकार में बहिरे और अपने आप के लिये आप बहादुर पुरुष हो।

नहिं ध्यान तुमको जाति का, चिंता नहीं कुछ धर्म की;
उन्मूल चाहे देश हो,—सोचो नहीं तुम मर्म की।
रोते हुए निज बन्धु पर तुमको दया नहिं आ रही;
उनके घरों में शोक है, लीला तुम्हें है भा रही ?॥७५॥

आप को जाति और धर्म का कोई ध्यान नहीं है। देश भले रसातल को पहुंच जाय। आप प्रमुख बातों की ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं देते हैं। सहोदर भले करुणाक्रंदन करता रहे; आप के हृदय पसीजते नहीं। उनके घरों में शोक छाया रहे, परन्तु, आपके घरों में रासलीला का होना बंद नहीं हो सकता।

रसचार श्रीधर ! आपका अब लेखने ही योग्य है !
क्रंदन तुम्हारे बन्धु का भी श्रवण करने योग्य है !
श्रीमन्त ! देखो तो तुम्हारा वृत कैसा हो रहा !
दयनीय हालत देखकर यह जन तुम्हारा रो रहा !॥७६॥

हे श्रीमन्तजन ! आपकी रसक्रीड़ायें विचारणीय हैं और आपके सहोदर का करुणाक्रंदन सुनने योग्य है। आपका यह नैतिक पतन देखकर इन पंक्तियों के लेखक को रोना आता है।

अब रह गये कुल आपके ये चार जीवन-सार हैं—
रतिचार है, रसचार है, शृङ्गार है, रसदार है।
तुमको कहाँ अवकाश है 'रतिजान' के तनहार में !—
क्या तार उर के हिल उठेंगे दीन की चित्कार में ?॥७७॥

स्त्रियों के साथ रमण करना, विषयभोगों में लिप्त रहना, सुन्दर और अमूल्य वेष-भूषा करना और सुन्दर और स्वादिष्ट व्यंजनों का सेवन—इन केवल चार बातों में ही आपके जीवन की सफलता है। वैश्याओं के नृत्य और गान से ही आपको छुट्टी कहाँ है ? क्या दीन की चित्कार आपके हृदयों के तारों को हिला सकेगी ! (मुझको तो शंका है।)

तुमको पड़ी क्या दीन से ! क्यों दीन का चिन्तन करो !
नानी मरी है आपकी जो आप यों झंझट करो !
रसचार पीछे क्या छिपा है आपको कुछ भान है ?
कृतकाम कौशल हो रहा यमराज का कुछ ध्यान है ?॥७८॥
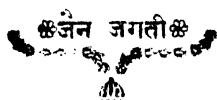
ऐश और आराम को त्याग कर आप दोनों का चिंतन करें, ऐसी आपको क्या पड़ी है? आपकी नानी माता का मरण तो हुआ ही नहीं है, जो आप विषयरस को भंग करके किसी भी प्रकार का श्रम करें। परन्तु आप को यह भी ज्ञान है कि इस विषयानंद की ओट में यमराज अपना कार्य बड़ी कुशलता के साथ करता जा रहा है।

तुम जाति का, तुम देश का दारिद्र्य चाहो हर सको;
यह कारखाने खोलकर तुम निमिष भर में कर सको।
धनराशि कुछ कमती नहीं अब भी तुम्हारे पास में;
कैसे सकोगे सोच पर सोते हुए रनिवास में!! ॥७९॥

अगर आप विचार लें तो कल-कारखाने खोलकर देश की दरिद्रता को क्षण भर में नष्ट कर सकते हैं। आपके पास में धन की इस युग में भी कमी नहीं है। परन्तु विचारणीय तो यह है कि स्त्रियों के साथ रमणक्रिया करने में आप इतने अनुरक्त हो रहे हैं कि वह सोच भी नहीं सकते।

श्रीमन्त हो, पर वस्तुतः श्रीमन्तता तुम में नहीं;
लक्षण कहीं भी आप में श्रीमन्त के मिलते नहीं।
श्रीन्मत भामाशाह थे, श्रीमन्त जगडूशाह थे;—
वे देश के, निज जाति के थे भक्तवर, वरशाह थे ॥८०॥

आप श्रीमन्त तो हैं, परन्तु आपका हृदय श्रीमन्त का नहीं है तथा श्रीमन्त के गुण आप में दिखाई नहीं देते। श्रीमन्त

२६
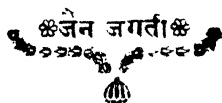
तो भामाशाह और जगड़ूशाह थे, जो देश और जाति के परम भक्त थे, उच्चकोटि के शाहूकार थे।

उन मस्तकों में शक्ति थी, उनको रसों में मुक्ति थी;
निजजाति प्रति, निज धर्म प्रति उनके उरों में भक्ति थी।
श्रीमन्त वे भी एक थे, श्रीमन्त तुम भी एक हो—
कंजूस, मक्खीचूस तुम श्रीमन्त नम्बर एक हो ॥८१॥

वे पूर्वज श्रीमन्त प्रखर बुद्धिमान, व्यसनविहीन, जाति और धर्म के परम भक्त थे। एक वे श्रीमन्त थे, और एक आप भी श्रीमन्त हैं। कितना अन्तर है? आप प्रथम श्रेणी के कंजूस और मक्खीचूस श्रीमन्त हैं। आप से दूसरों को क्या लाभ पहुँच सकता है?

नहीं धर्म से कुछ प्रेम है, साहित्य में अनुराग है!
अतिरिक्त रति-रस-रास के किसमें तुम्हारा राग है?
वय अल्प की तुमको प्रिया वय साठ में भी मिल सके;
ऐसे भला रसरास में तुम ही कहो, चख खुल सके? ॥८२॥

साहित्य तथा धर्म से आपको किंचित प्रेम नहीं। स्त्रियों के साथ रसलीला करने के अतिरिक्त आपकी रुचि किसी सात्विक विषय में नहीं। आपको साठ वर्ष की आयु में भी जब अल्प वय की बाल-पत्नि का प्राप्त होना सहज होवे तो ऐसी विषय भोग की स्थिति में आपके नेत्र कैसे खुल सकते हैं?

तुमको तनिक भी जाति का दुर्दैन्य खलता है नहीं ?
पड़ती उधर यदि है दशा, चढ़ती इधर तो है सही ?
हैं आप भी तो जाति के ही अंग अथवा अंश रे!
भूचाल से शायद अचल होते न होंगे ध्वंश रे !॥८३॥

समाज दीन बनता जा रहा है। परन्तु इससे आप को कोई चिंता नहीं होती है। होना भी क्यों चाहिए ? अधिक मनुष्य जब अधिकाधिक गरीब बनते जाते हैं, तब ही तो कुछ श्रीमंत अधिकाधिक धनवान स्वभावतः होते जाते ही हैं ! आप जाति में चाहे अंग अथवा अंश रूप से हो, परन्तु, क्या जब भूचाल आते हैं, तब पर्वत नष्ट नहीं होते हैं ?

अवहेलना कर जाति की तुम स्वर्ग चढ़ सकते नहीं;
रहना उसी में है तुम्हें, हो भिन्न जो सकते नहीं।
श्रीमन्त ! चाहो आप तो सम्पन्न भारत कर सको,
आर्थिक समस्या देश की सुन्दर अभी भी कर सको ॥८४॥

जाति की अवहेलना करके आप स्वर्गपति नहीं बन सकते। जाति में ही आपको रहना पड़ेगा। जाति से अलग होकर आप जीवित नहीं रह सकते। आप विचार कर लें तो भारतवर्ष को सुखी और समृद्ध बना सकते हैं।

तुमने किया क्या आज तक ? क्या कर रहे तुम हो अभी ?
अधिकांश लेखा दे चुका; अवशिष्ट भी सुन लो अभी।
पर चेतना से हाय ! तुम कब तक रहोगे दूर यों ?
मूर्च्छा कहो कब तक तुम्हारे से न होगी दूर यों ?॥८५॥

आप श्रीमन्तों ने जो किया है और जो कर रहे हैं, उसका बहुत कुछ वर्णन किया जा चुका है। शेष जो रह गया है, उसको भी सुना देता हूँ। बड़ी दुःख की बात है, आप इस प्रकार उदासीन रह कर संचेतना से कब तक दूर रहेंगे? क्या सचेत नहीं होंगे?

पैसा तुम्हारे पास है जब, क्या तुम्हें दुःख हो सके?
नव नव तुम्हारे पाणि-पीड़न सरलता से हो सके!
झगड़े-बखेड़े जाति में दिन-रात तुम फैला रहे;—
क्या जाति के हरने नहीं तुम प्राण जीवन पा रहे? ॥८६॥

आप धनवान् हैं। आप को क्या दुःख है? आप नौ-नौ विवाह सहज कर सकते हैं। आये दिन आप जाति में झगड़े-बखेड़े फैलाते रहते हैं। जाति के प्राणों का हरण करने के लिये ही आप जीवित रह रहे हैं।

तुम बिन कहीं हम हैं नहीं, हम बिन नहीं कुछ आप हो;
हम हैं अनुग सब आपके, अग्रग हमारे आप हो।
अतिरिक्त हमको आपके फिर कौन जन सुख कन्द है?
हम,—आपमें शिव प्रेम हो—आनन्द ही आनंद है ॥८७॥

फिर भी आप के बिना हमारा और हमारे बिना आपका अस्तित्व ही खतरे में है। आप हमारे अग्रणी हैं और हम आपके अनुयायी हैं। आपको छोड़ कर अन्य कौन जन हम को सुखदायी हो सकता है? आपमें और हमारे में अगर विशुद्ध प्रेम हो जाय तो फिर आनन्द की क्या कमी?

अब छोड़कर यह रास-रस कुछ जाति का चिंतन करो;
मजबूत कर निज जाति को तुम जाति में सुख-धन भरो।
समझो धरोहर जाति की, निज राष्ट्र की निज कोष को;
कौशल, कला, व्यापार से सम्पन्न कर दो देश को ॥८८॥

विषयभोग को त्याग कर जाति का कुछ विचार करो। जाति को सुदृढ़ और सुखी बनाओ। आपकी सम्पत्ति को स्वराष्ट्र और समाज की सम्पत्ति समझो। देश को कला-कौशल और व्यापार द्वारा समृद्ध बना दो।

निज देश की, निज राष्ट्र की, निज धर्म की, निज जाति की,
श्रीमन्त! पहिले देख लो, है अब दशा किस भाँति की।
दुर्भिक्ष, संकट, शोक हैं, दारिद्र्य, भिक्षा, रोग है!
दो एक हो तो जोड़ दें,—कोटी करोड़ों योग हैं!! ॥८९॥

हे श्रीमंत! अपने देश, राष्ट्र, धर्म और जाति की शोचनीय स्थिति पर विचार करो! दुर्भिक्ष, संकट, शोक, दारिद्र्य, भिक्षा-वृत्ति आदि अनेक रोग हैं। एक, दो हों तो उनका योग भी लगाया जाय। यहाँ तो जोड़ करोड़ों पर आता है।

श्रीमन्त! केवल आप ही बस एक ऐसे वैद्य हैं;
ये रोग जिनसे देश के सुन्दर, सरलतम छेद्य हैं।
अधिकांश रोगों के तथा फिर पितृ भी तो आप हैं;
श्रीमन्त! जिम्मेदार इस बिगड़ी दशा के आप हैं ॥९०॥

हे श्रीमंत! इन फैले हुये आर्थिक रोगों को सुन्दरता और

सरलता से दूर करने वाले एक आप ही कुशल वैद्यराज हैं। वैसे अधिक रोगों के तो जन्मदाता भी आप ही हैं। फलतः इस बिगड़ी हुई दशा के मूल कारण आप ही हैं।

सबसे प्रथम श्रीमन्त ! तुम इन इन्द्रियों को वश करो।
तन, मन, वचन में योग हो, धन धर्म के अधिकृत करो।
तन, मन, वचन, धन आपका हो देश भारत के लिये ;
रस, रास छोड़ो आज तुम निज जाति-जीवन के लिये ॥६१॥

हे श्रीमन्त जन ! आप अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कीजिये। तन, मन और वचन में एकता लाइये। अपने धन को धर्म के लिये समझिये। इस प्रकार आपका तन, मन, वचन और धन सब भारत देश के लिये होना चाहिए। वैभव भोग को अपनी जाति के उद्धार के निमित्त त्याग दीजिये।

अपखर्च को अब रोक दो, अब दीन भूमि हो चुकी :
धन, धर्म, पत, विश्वास की सब भाँति से इति हो चुकी !
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़न से तुम्हें वैराग्य हो,
वह कर्म-संयम,–शीलमय–फिर से जगा सद्भाग्य हो ॥६२॥

मातृ-भूमि निर्धन हो चुकी है। कृपा करके होते हुये व्यर्थ व्ययों को रोक दीजिये। धन, धर्म, सम्मान और विश्वास इन सब का नाश हो चुका है। अनमेल विवाह करने से आपको घृणा होनी चाहिए। कर्म, संयम और शील से युक्त हमारा पुनः वह सौभाग्य जाग्रत हो जाय, जो हमारे पूर्वजों का था।

अब मूर्खता से आपको धनधर! नहीं अनुराग हो;
हे मूर्खते तुम राह लो इनमें न तेरा राग हो।
दल साम्प्रदायिक तोड़कर घर को सुधारो आज तुम;
इस दीन भारत के लिये दो हाथ दे दो आज तुम ॥६३॥

हे श्रीमन्त! मूर्खता से आपने बहुत समय तक संबंध रक्खा। अब इसका ममत्व त्यागिये! हे मूर्खते! तुम भी अपना मार्ग पकड़ो। यहाँ अधिक ठहरने का हठाग्रह मत करना। साम्प्रदायिक दलों को छिन्न भिन्न करके अपने घर अर्थात् देश का सुधार करो। इस दीन भारतवर्ष के लिये कृपा करके दो हाथों से खुलकर श्रम कीजिये।

निर्धन

तुम हो पुरुष, पुरुषार्थ के नरदेह मे अवतार हो;
पुरुषार्थ ही प्रारब्ध है, फिर क्यों न दलितोद्धर हो।
पुरुषार्थ तो करते नहीं, तुम दैव को रोते रहो;
क्या दिन भले आजायेंगे, दिन में कि जब सोते रहो? ॥६४॥

आप पुरुष हैं। पुरुषदेह से आप पुरुषार्थ के अवतार हैं—यह नहीं भूलना चाहिए। पुरुषार्थ करने से ही भाग्य बनता है, फिर दलितावस्था को दूर करना कौन असंभव कर्म है। पुरुषार्थ तो आप लोग करते नहीं, और केवल अपने भाग्यों को दोष देते हो। दिन में परिश्रम नहीं करें और खूब आनंद से सोवें—ऐसे पुरुष के अच्छे दिन कैसे आ सकते हैं?

व्यापार कन्या का करो, जिसमें न पड़ता श्रम तुम्हें;
मुद्रा हजारों मिल रही हैं एक कन्या पर तुम्हें।
जिसके सुता है कच्च में, कर में उसी के शक्ति है;
उसके सुता है कच्च में; जिसके करों में शक्ति है॥६५॥

और व्यापार करना तो त्याग दिये। कन्या का व्यापार करना ही आप लोगों ने एक मुख्य कर्म बना लिया। क्यों नहीं बनावें, जब एक कन्या के बेचने पर हजारों रुपये सहज मिल जाते हैं। जिसके घर में लड़की है, उसके हाथ में भी शक्ति है अर्थात् सब लोग उसका लोहा मानते हैं और उसको मान देते हैं। जिसकी भुजाओं में शक्ति है, वह ही लड़की को बेचने की दृष्टि से अमर्यादित समय तक घर में रख सकता है और उसको कोई कुछ नहीं कह सकता।

विद्या पढ़ो तुम, ज्ञान सीखो, बुद्धि, कर से काम लो;
करके रहो उस काम को जो काम उर में धाम लो;
कैसे अहो! धनवान तुम देखूँ भला बनते नहीं;
क्या एक कण के लाख कण निर्धन कृषक करते नहीं?॥६६॥

निर्धन बन्धुओ! ये कुत्सित व्यापार छोड़िये। विद्या पढ़िये ज्ञान प्राप्त कीजिये। बुद्धि और हाथों से परिश्रम करिये। जिस कार्य को करने का व्रत ले लिया है, उसको पूर्ण करिये। फिर मैं भी देखूँ कि आप धनी कैसे नहीं बन सकते हैं? एक किसान एक कण के परिश्रम करके लाख कण बना डालता है। क्या आप यह नहीं जानते हैं?

तुम तुच्छतर-सी बात पर हो ग्राहकों से ऐंठते;
तुम एक पाई के लिये पद-त्राण-रण कर बैठते।
व्यापार धंधे आपके फिर किस तरह से बढ़ सकें?
घाटा न फिर कैसे रहे हम इस तरह जब कर सकें? ॥९७॥

ग्राहकों से आप साधारण बातों पर भी अकड़ उठते हैं। एक पाई के हिसाब के लिये बुरी तरह लड़ने लग जाते हैं। ग्राहकों के साथ जब आप इस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं, फिर ऐसी स्थिति में व्यापार, धंधा कैसे उन्नति कर सकता है और घाटा रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

धन प्राप्त करने की कला जाने कलाकार भी नहीं;
पर झूठ में तुमने कला वह समझ है रक्खी सही।
यदि बन्धुओ! सम्पन्नता अंतिम तुम्हारा ध्येय है;
बल बुद्धि सत्तम सत्य से पुरुषार्थ करना श्रेय है॥९८॥

यह बहुत संभव है कि बड़े बड़े कुशल कलाविज्ञ भी व्यापार करने की पूरी पूरी कला को नहीं जानते होंगे। परन्तु आप लोगों ने उस कला को झूठ में समझ लिया है। अगर आपका अन्तिम लक्ष्य समृद्ध होने का है तो पूरे यत्नों से, पूर्ण सत्य से परिश्रम करना ही उत्तम है।

श्री पूज्य

श्री पूज्य! यतिपति आप भी आदर्शता धारण करो;
सुख-ऐश वैभव-जाल को पाताल में जाकर धरो।

है आ गया शैथिल्य जो, उसको भगा दो पुरुष-धन !
शुचि-शील, संयम, त्यागमय हो आपका तन,मन,वचन॥९९॥

श्री पूज्य ! जितेन्द्रीय पुरुषों के आप स्वामी हैं। आपको अपनी आदर्शता का सदा ध्यान रहना चाहिए। जितेन्द्रीय महापुरुषों मे सुख, ऐश्वर्य और वैभव का ठाट अनंत दूर रहना चाहिए। हे पुरुषो ! मे धन के समान सुख-दार्या ! आप में जो शिथिलाचार घुस गया है, उसको निकालिये और पवित्र शील, संगम और त्यागयुक्त तन, मन और वचनों को बनाइये।

फिर पूर्ववत ही आपका सम्मान नित बढ़ने लगे;
शासन तुम्हारा जाति पर निर्बाध फिर चलने लगे।
सम्राट मानें आपको अरु हम प्रजा बन कर रहें;
उड़ती रहें नित धर्म-ध्वज, परमार्थ में हम रत रहें॥१००॥

ऐसा करने पर आपका सम्मान पहिले समान बढ़ जायगा। समूचे जैन समाज पर आपका एकतंत्र शासन चलने लगेगा और हम अपने को आपकी प्रजा और आपको सम्राट समझेंगे। हम यही चाहते हैं। बस फिर धर्म की जय पताका लहराती रहेगी और हम परोपकार में अनुरक्त रहेंगे।

यति

आस्वाद, रस, रति छोड़ दो, अब नेह जग से तोड़ दो;
तन-मन-वचन पर योग का अब अर्थ-संचय छोड़ दो।

हो पठन-पाठन शास्त्र का कर्तव्य निशि दिन आपका;
धोरी धुरन्धर धर्म का प्रत्येक हो जन आपका ॥१०१॥

हे यतिगण ! आप भी जितेन्द्रीय कहलाते हैं। फिर आपको चाहिए कि मिष्ठान्नों, मधुरसों, स्त्रीसंगों और संसार के ममत्वों से आप दूर रहें। तन, मन, और वचनों पर विजय प्राप्त कीजिये और द्रव्य का इकट्ठा करना छोड़ दीजिये। शास्त्रों का पठन और पाठन ही आपका निशिदिन का कर्तव्य होना चाहिए। प्रत्येक यति महाराज धर्मरूपी रथ को खींचने वाला हो।

युवक

युवको ! तुम्हारे स्कन्ध पर सब जाति का गिरि-भार है;
पोषण-भरण, जीवन-मरण युवको ! तुम्हारी लार है।
पौरुष दिखाओ आज तुम, तुम से अड़ा दुर्दैव है;
तुम देख लो माता तुम्हारी रो रही अतएव है ॥१०२॥

युवकजन ! आप लोगों के स्कन्धों पर ही जाति का भारी बोझा है। जाति की वृद्धि, स्वस्थता, और उसका जीवन और मरण सब आपके अच्छे और बुरे होने पर निर्भर हैं। दुर्भाग्य आप लोगों से अड़ रहा है और आप उसका सामना नहीं कर रहे हैं। यह देख कर आपकी माता रो रही है।

युवको ! तुम्हारे प्राण में रतिभाव आकर सो गया;
सुकुमार रति सम हो गये तुम, वेष रति का हो गया।

रतिभाव जब तुममें भरा, नरभाव तब रति में भरा;
पहिचान भी अब है कठिन, तुम युवक हो या अप्सरा॥१०३

युवकजन ! आप में स्त्रीपन भर गया। स्त्रियों के समान आपका पहिनावा हो गया और स्त्रियों के समान आप कोमल हो गये। जब इस प्रकार आप में स्त्रीपन भर गया, स्त्रियों में स्वभावतः पौरुष बढ़ गया। आप युवक हैं अथवा सुन्दर वस्त्र-धारिणी कोई अप्सरा हैं—पहिचानना भी कठिन है।

रस-रास-आनंद-भोग से सम्बन्ध सत्वर तोड़ दो;
व्यवसाय सारे व्यसन के करके दया अब छोड़ दो।
दुर्दैव से तुम भिड़ पड़ो,—भूकम्प भूमि कर उठे;
बस शत्रु या तो झुक पड़े या फिर पलायन कर उठे॥१०४॥

कृपा करके विषय भोग, व्यसन के व्यापारों से एक दम उदासीन बन जाइये। दुर्भाग्य को ऐसे दो हाथ दिखाइये कि पृथ्वी थर्रा उठे और वह या तो पराजय स्वीकार करले या पृथ्वी छोड़ कर ही भाग जाय।

अवयव तुम्हारे पक गये, यौवन विकच जब हो गया;
तब शक्ति, बल, मन चरमतम विकसित तुम्हारा हो गया।
तम-पक्ष में तुम आज तक बल, शक्ति, मन खोते रहे;
शशि-पक्ष में तो क्या कहूँ, बस तुम सदा रोते रहे॥१०५॥

जब आप पूर्ण यौवनावस्था में पहुँच जाते हैं, तब समझ लेना चाहिए कि आपके सर्व अंग पूरे पुष्ट बन गये और बल

शक्ति और मन का भी पूर्ण विकाश हो गया। परन्तु दुःख है कि इस समय तक आप युवक जन अपने शारीरिक बल, आत्मिक शक्ति और पुष्ट मन का उपयोग कृष्णपक्ष अर्थात् अन्धकार पूर्ण मार्गों में करते रहे और उज्ज्वल मार्गों में सदा उनको निर्बल पाते रहे।

उस ओर से इस ओर को बल, शक्ति युवको! मोड़ दो
आस्वाद इसका भी चखो, कुछ काल को वह छोड़ दो।
ये दिवस दुखिया जाति के पल मारते फिर जायँगे;
बस सजल होते पंक के, पंकज अचिर खिल जायँगे॥१०६॥

शारीरिक बल और आत्मिक शक्ति को इधर भी लगाइये। इधर का भी आनंद तो चखिये। दीन हुई इस जाति के ये दुःख के दिवस क्षण भर में विनष्ट हो जावेंगे। कीचड़ ज्योंही जल पूर्ण हुआ कि कमल तुरंत खिल उठेंगे।

संसार-भर की दृष्टि है युवको तुम्हारे पर लगी;
तुम हो जगे जिस भाग में, उस भाग में जागृति जगी।
अब एक्यता, सौहार्द को तुम भी यहाँ वर्धित करो;
इसके लिये तन, मन, वचन, सर्वस्व तुम अर्पित करो॥१०७॥

हे युवकजन! समस्त संसार की निगाह आप लोगों की ओर हैं। जिस देश में आप लोग जाग्रत हुए हैं, उसी देश में जाग्रति आई है। अतः तन, मन, वचन और सर्वस्व लगाकर ऐक्यता और पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करो।

बस आपके उत्थान पर सम्भव सभी उत्थान हैं ;
होते युवक सर्वत्र ही निज जाति के चिद् प्राण हैं ।
दायित्व कितना आपका ; क्या आपने सोचा कभी ;
चाहो अभी तो सोचलो— अवकाश है इतना अभी ॥१०८॥

सभी उत्थान युवकों के उत्थान पर ही निर्भर हैं । सर्वत्र युवक ही अपनी जाति की चेतनायुक्त आत्मा हैं । आपके ऊपर जाति की कितनी बड़ी जिम्मेदारी है, यह भी कभी सोचा है ? अभी तो इतना समय है कि आप अगर चाहें तो सोच सकते हैं ।

चलते तुम्हारे चरण हैं, हैं काम कर भी कर रहे;
तुम देखते हो आँख से, तुम बात मुँह से कर रहे ।
फिर भी तुम्हारे में मुझे क्यों प्राण नहीं हैं दीखते ?
विज्ञान-युग में शव कहीं चलना नहीं हैं सीखते ? ॥१०९॥

आपके हाथ, पैर, आँखें और मुँह अपना अपना काम कर रहे हैं, फिर भी आप में मैं प्राण क्यों नहीं देखता हूँ ? यह एक आश्चर्य है । यह विज्ञान का युग है । हो सकता है अब मुर्दे भी चलने लग गये हों ।

तुममें न कोई जोश है, उत्साह है, बल-स्फूर्ति है;
चलती हुई बल वाष्प की मानों उपल की मूर्ति है ।
या विश्व में सबसे अधिक जब वृद्ध भारतवर्ष है;
वृद्धत्व में होते किसी के क्या कहीं उत्कर्ष हैं ? ॥११०॥
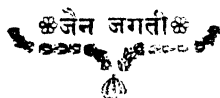
आप में उत्साह, जोश, बल, स्फूर्ति आदि कोई बातें नहीं दिखाई देती। आप चलते हैं, जब ऐसा भाव होता है, मानों कोई उपल पत्थर की मूर्ति चल रही हो। या इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि संसार भर के सर्व देशों में भारतवर्ष अधिक वृद्ध है और बुढ़ापे में किसी की कहीं भी उन्नति संभव नहीं होती है।

अपवद, निन्दाबाद में खोये रहोगे वक्त तुम ?
कब तक रहोगे यों प्रिया में हाय ! रे अनुरक्त तुम।
पहिचान तुम अब तक सके नहिं हाय ! अपने आपको,
तुममें अतुल बल, शौर्य है,-दुष्कर न कुछ भी आपको ॥१११॥

क्या आप अपना अमूल्य समय अपवाद और एक दूसरे की निन्दा करने में ही नष्ट करते रहेंगे ? और इस प्रकार स्त्री लंपटी आप कब तक रहेंगे ? बड़े दुःख की बात है आप लोग अब तक अपने आपको पहिचान नहीं सके हो। आप में अतुल बल और पराक्रम हैं। आपके लिये कोई कर्म कठिन नहीं है।

नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के तुम काम के,
अपनी प्रिया के काम के, आराम के तुम काम के।
लड़ना अकारण हो कहीं, तुम हो वहाँ पर काम के,
तुम मसखरों के काम के ! क्या हो किसी के काम के ? ॥११२॥

जाति, धर्म और देश के लिये आप काम के नहीं हैं।

अपनी स्त्री, आराम, अकारण झगड़े और मसखरों के आप काम के हैं। क्या सचमुच आप किसी के काम के हैं ?

पुरुषत्व तो होता फलित बस पूर्ण यौवन-काल में,
प्रतिभा, कला, बल, शक्ति होते प्रौढ़तम इस काल में।
तुम सब गुणों में प्रौढ़ हो—नहिं ज्ञान है शायद तुम्हें ?
आगे बढ़ो यदि दो चरण, देरी लगी क्या कुछ तुम्हें ॥११३॥

पूर्ण यौवनावस्था के प्राप्त होने पर पुरुषत्व फल देता है और प्रतिभा, करना, शरीरिक बल और आत्मिक शक्ति का भी प्रौढ़तम बिकाशरी होता है। संभव है यह आपको ज्ञात नहीं है कि आप सब गुणों में भरपूर हैं। दो कदम तो आगे बढ़ो; आप को ज्ञात हो जायेगा कि आप में कौन कौन गुण और शक्ति है।

तुमको तुम्हारे काम के अतिरिक्त है अवसर कहाँ।
निंदा, अनर्गल, झूठ, मिथ्यावाद में अवसर कहाँ।
अधिकांश का मन्दाग्नि से बिगड़ी दशा है पेट की।
अवशिष्ट की, मैं क्या कहूँ ? बिगड़ी दशा पाकेट की ॥११४॥

आपको अपने निज के कर्मों से तथा निंदा, प्रत्याख्यान, झूठादि चर्चाओं मे अवकाश भी तो कहाँ है! और कुछ मन्दाग्नि जैसे रोगों से ग्रस्त है और शेष निर्धन हैं।

हा पितृ-धन ! हा जाति-धन ! हा धर्म-धन ! हा देश-धन !
हा ! नाथ ! यों है मिट रहा यह राष्ट्र-धन हर एक-क्षण !
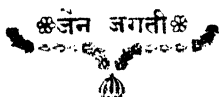
युवको ! तुम्हें आती नहीं होगी कभी भी शर्म हा ।
आती न होगी याद तक—है चीज कोई धर्म हा ! ॥ ११५ ॥

हे परमात्मन् ! ये युवकजन जो पितृ-धन, जाति-धन धर्म-धन, देश-धन और राष्ट्र-धन हैं प्रतिक्षण क्षीण होते जाते रहे हैं। आपको तो लज्जा भी नहीं आती होगी कि हम हैं क्या चीज और बन क्या रहे हैं। धर्म भी कुछ वस्तु है संभव है स्मरण भी नहीं आता होगा।

तुमको न जब यह ध्यान है क्या हो रही निज की दशा ?
आने लगी क्यों ध्यान में तब दीन, निर्धन की दशा ?
युवको ! तुम्हारे प्राण-बल को शीत कैसा लग गया ?
करते हुए भेषज अल वह गर्म क्यों नहिं बन गया ? ॥११६॥

आप लोगों को अपनी निजकी दशा क्या हो रही है का ही जब ध्यान नहीं तो दीन और निर्धनों की अवदशा का ज्ञान तो होवे भी कैसे ? आपके आत्मबल को नहीं मालूम ऐसी कैसी शर्दी बैठ गई कि अनेक उपचार करने पर भी गर्मी नहीं आ सकी।

युवको ! उठो, आगे बढ़ो, विपदावरण को चीर दो;
सन्तप्त आर्यावर्त को करके दया कुछ नीर दो।
युवको ! तुम्हारा यह बसंती काल शाश्वत है नहीं ?
संसार में क्या एण-तृष्णा के सिवा कुछ है नहीं ?॥११७॥

युवकजन ! जाग्रत बनो। आगे बढ़ो। विपत्तियों के छाये

२७

हुये आवरण को चीर डालो। दुःखों के असह्य ताप से समस्त भारतवर्ष संतप्त हो रहा है, उसको पानी पहुँचाओ। आपका यह सुन्दर यौवनकाल बसंतऋतु के सदृश अस्थायी है। दुनिया में मृग-तृष्णा के अतिरिक्त क्या कुछ है ही नहीं ?

पंचायतन

पंचो ! तुम्हारी शक्ति का अनुमान लग सकता नहीं;
तुम दंड ऐसे दे सको, जो भूप कर सकता नहीं।
सम्राट से, खुद ईश से चाहे मनुज डरता न हो;
है कौन जो पशुवन तुम्हारे सामने रहता न हो ? ॥११८॥

हे पंचजन ! आपकी शक्ति अनंत है। राजा जो दंड नहीं दे सकता वे आप दे सकते हैं। पुरुष, ईश्वर और सम्राट से तो भले डर नहीं खावे, लेकिन आप लोगों के आगे किसकी ताकत है जो पशु के समान होकर नहीं रहे।

पंचायतन में ईश का जो भान हम लखते नहीं;
सम्राट से भी अधिक तुमसे आज हम डरते नहीं।
पंचायतन में आज पर गुण्डत्व आकर भर गया ?
अन्याय करने में अभी पंचायतन बस बढ़ गया ॥११६॥

पंचायतन में हमने ईश्वरीय अंशों को देखा था, तब ही तो इससे हम ऐसे डरते हैं, जैसे सम्राट से भी नहीं डरते हैं। परन्तु आज उसी पंचायत में गुण्डत्व भर गया है और वह अन्याय करने में आगे बढ़ गया है।

जिस जाति की पंचायतन में ईश का यदि अंश है ;
वह जाति जग की जातियों में एक ही अवतंश है।
जिस जाति की पंचायतन में न्याय है अरु स्वत्व है ;
वह जाति गौरवयुक्त है, उसका अचल अमरत्व है ॥१२०॥

जिस जाति की पंचायतन में ईश्वरीय अंश है, न्याय है, सार्वभौम अधिकार है वह ही जाति गौरवशाली है, वही अमर है और संसार की सर्व जातियों में श्रेष्ठ है।

पंचायतन में फिर वही ईशत्व यदि भर जाय तो—
पंचायतन में ज्ञान की रे! ज्योति यदि जग जाय तो—
क्या देर फिर हमको लगे जगते हुए, उठते हुए ?
कैसे भला स्थिर रह सके तम भोर के फटते हुए ?॥१२१॥

हमारी पंचायतन में फिर वही पूर्व जैसा ईश्वरीय अंश उत्पन्न हो जाय, ज्ञान की ज्योति जग जाय, बस फिर हमको जाग्रत होने में और उत्थान करने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। प्रातःकाल के उदय होने पर अंधकार कैसे जमा रह सकता है ?

पंचायतन में ईश का आवास पंचो! अब करो ;
तुम न्याय, संयम, शील संगत वृत का सेवन करो।
अन्याय, अत्याचार जो पंचायतन में भर गया—
हा! जाति का नैतिक पतन वह मूलतः ही कर गया !॥१२२॥

हे पंचजन! पंचायतन में ईश्वरीय अंश उत्पन्न करो। अधिकारों का उपयोग न्याय, संयम और शीलमयी कीजिये।

अन्याय और अत्याचार ने पंचायतन में प्रवेश करके, उसका नैतिक सर्वनाश ही कर डाला।

अपखर्च पंचो ? रोक दो, विक्रय सुता का रोक दो,
अनुचित प्रथायें रोक दो, शिशु-पाणि-पीड़न रोक दो,
तुम पाप-खग के पक्ष दोनों वज्र बन कर तोड़ दो,
अब जाति के अवयव विकल बनकर कलाकर जोड़दो ॥१२३॥

हे पंचजन ! व्यर्थ व्यय, कन्या विक्री, अनुचित रीति-रिवाज, बाल-विवाहादि जैसी समाज को नष्ट करने वाली बातों को रोक दीजिये। आप वज्र बन कर पाप रूपी पक्षी के पंखों को काट डालिये। जाति के विकल हुए अंगों को कलावान बन कर पुनः जोड़ दीजिये।

कवि

हमको जगा दो आज कविवर ! तान भैरव छेड़ कर,
आलोक करदो भानु का तमसावरण को छेद कर।
मुर्दे जनों के श्रुत-पटों में काव्य-अमृत डाल दो,
सकते उठा नहीं मृत्य को, तो काव्य कर से डाल दो ॥१२४॥

हे कविश्रेष्ठ ! भैरव तान छेड़ कर हमको अब जाग्रत बनाइये। अज्ञान को नष्ट करके ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश प्रकट कीजिये। मृत प्रायः जनों के कानों में काव्य का अमृत डालिये अगर मृत्यजन को आप उठा नहीं सकते हैं, तो काव्य रचना करना छोड़ दीजिये।
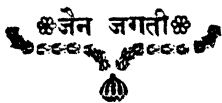
इस साम्प्रदायिक जाल को कविता तुम्हारी तोड़ दें,
पारस्परिक राग-द्वेष का सम्पूर्ण ढाँचा तोड़ दें,
बल, ज्ञान, बुद्धि, विवेक दे, तन में अनूठा प्राण दें—
अवसर पड़े पर मर्त्य जिससे प्राण तक का दान दें ॥१२५॥

आपकी कविता साम्प्रदायिक गढ़ों को, पारस्परिक कलह के प्रबंधों को तोड़ने वाली हो, और बल, ज्ञान, बुद्धि और विवेक-दायिनी तथा तन में नव प्राण फूँकने वाली हो। मर्त्यजनों में जिससे वह जाग्रति आ जावे कि अवसर पर वे प्राण तक देने को तैयार हो जावें।

लेखक

अब उदर-पोषण के लिए लेखक, लिखो नहिं लेख तुम;
सब निगाहें आप पर, दो रूप तृष्णा पेख तुम।
तुमको विदित है जाति की जो हो रही हा! दुर्दशा;
कर दें न उसकी ओट में कुत्सा, बुभुक्षा कर्कशा ॥ १२६ ॥

हे लेखकजन! धन कमाने की दृष्टि रखकर किसी ग्रन्थ की रचना मत करिये। संसार की दृष्टि आपके ऊपर लगी हुई है। जिस वस्तु की मांग हो, वह ही दीजिये। जाति की दुर्दशा आप लोगों को अज्ञात नहीं है। अवगुण और कुत्सित प्रकृति वाली क्षुधा के सामने आप जाति की दुर्दशा को भूल नहीं जावें।

लेखक गणों ने क्या किया, तुम जानते हो रूष में?
था बोल सेविक कर दिया सब रूष भर को निमिष में।

तुम भी लिखो अब लेख ऐसे—तन-पलट हो पलक में ;
उत्थान लेखों से तुम्हारे अचिरतम ही खलक में ॥ १२७ ॥

रूष में भी वे लेखक ही थे जिन्होंने अल्प समय में ही समस्त रूष को साम्यवादी बना डाला, आप लोग भी ऐसे ही क्रांतिकारी लेख लिखिये, जिससे एक दम कायापलट हो जाय और आप के लेख समस्त संसार में उत्थान को जन्म देने वाले होवें।

तुम साम्प्रदायिक भाव से लिखना न कोई लेख अब ;
मृत की जिलाने के लिए अब चाहिए उल्लेख सब ।
है कार्य लेखक का कठिन. अनबूझ इसको छोड़ दें ;
लेखक-कला उसको मिलें जो प्राण व्रत में छोड़ दें ॥१२८॥

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अब आप कोई लेख नहीं लिखिये। मुर्दों में नव-जीवन का संचार करने वाले ही लेखों की अब आवश्यता है। लेखक का कार्य महाकठिन है; मूर्ख लेखक कृपा करके लेखों की रचना करना छोड़ दें। जो अपने प्राणों को संयमी बना सकता हो, लेखक कला पर एक मात्र उसी का अधिकार स्वीकृत होना चाहिए।

ऐसा लिखो, अब लेख तुम जिनका असर तत्काल हो;
आलस्य, विषया भोग हित जो सप्त फणिधर व्याल हो।
अवसर पड़े डस जाय चाहे आपको ये व्याल भी;
यदि बढ़ चुके हो अग्र तुम, पीछे हटो नहिं बाल भी ॥१२९॥

आलस्य, विषयभोग के लिये सात फन वाले भुजंग के सदृश शीघ्रप्रभावक लेख लिखिये। ऐसे लेख लिखने से अगर आप के प्राणों पर भी महासंकट आ जावे, उसको झेलने से हिचकिचाओ नहीं। आगे जब बढ़ चुके हो, तो एक बाल भर भी पीछे हटना नहीं चाहिए।

ग्रन्थकर्ता

हे ग्रन्थकर्ता मनिषियो ! नवशास्त्र-रचना मत करो ;
अनुचित प्रथाएँ रश्म पर अब ग्रन्थ निर्मापित करो।
करने लगोगें यदि भला पर्याप्त ये ही शास्त्र हैं,
शास्त्रानुशीलन फिर सिखा दो, हम दया के पात्र हैं ॥१३०॥

हे ग्रन्थकर्ताओ ! नवीन शास्त्रों की रचना मत कीजिये। प्रचलित अनुचित रीति-रिवाजों पर ग्रंथ लिखिये। कल्याण ही अगर कर सकेंगे तो पूर्वकाल के लिखे हुये ग्रन्थ ही पर्याप्त हैं। आवश्यकता शास्त्रों का अनुशीलन करना सिखाने की है। हम दया के भिखारी हैं कृपा करके शास्त्रों का अनुशीलन करना सिखाइये।

अध्ययन पूर्वक तुम लिखो इस आधुनिक विज्ञान पर;
तुम ग्रंथ कितने भी लिखो यूरोप अरु जापान पर।
यह आधुनिक कौशल-कला भरा दो सभी तुम ग्रंथ में;
बाधा न होवे फिर हमें बढ़ते हुए को पन्थ में ॥१३१॥

आधुनिक विज्ञान पर और यूरोप और जापानादि देशों पर आप लोग अध्ययन करके खूब ग्रंथ लिखिये और आधुनिक कौशल-कला को ग्रन्थों में वर्णित कर दीजिये, जिससे हमको आगे के मार्ग में सुविधा प्राप्त हो।

प्रकाशित प्राकृत का सभी साहित्य होना चाहिये;
जिसमें न हो अनुवाद, भाषा वह न बचनी चाहिये।
उन्मूल होते वाक्कलन की इस तरह जड़ दृढ़ करो;
आधार सब कुछ आप पर साहित्य को विश्रुत करो ॥१३२॥

प्राकृत भाषा में लिखा हुआ समस्त साहित्य प्रकाशित करवाइये। संसार की समस्त भाषाओं में प्राकृत-ग्रथों का अनुवाद करिये। इस प्रकार विनष्ट होते हुये इस जैनवाङ्मय की पुनः जड़ मजबूत बनाइये! यह सर्व आप लोगों पर आश्रित है। साहित्य को पुनः प्रसिद्धि में लाइये।

शिक्षक

शिक्षक! तुम्हारे हाथ में सब राष्ट्र की शुभ आश है;
निज देश का, निज जाति का शिव धन तुम्हारे पास है।
कितना बड़ा दायत्व है, अब आप ही तुम लेख लो?
बनते हुए आदर्श तुम आदर्श शिक्षा दे चलो ॥१३३॥

हे शिक्षकगण! राष्ट्र का आशारूपी धन आप लोगों के अधिकार में है। देश और जाति का कल्याणकारी धन आप
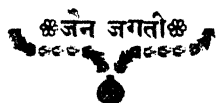
लोगों के हाथों में है। आप ही विचार कीजिये कि आपकी कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आप स्वयं आदर्श पुरुष बनते हुये आदर्श शिक्षा दीजिये और आगे बढ़िये।

शिक्षित अभी कुछ भी नहीं इनको बढ़ाओ रात दिन;
इसके लिये हो आपका तन, मन, वचन स्वस्व धन।
हे शिक्षको! तुम शिशु गणों की अज्ञता अपहृत करो;
शिक्षित इन्हें करते हुए तुम जाति को उपकृत करो ॥१३४॥

तन, मन, वचन और समस्त धन लगा कर शिक्षितों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न रात और दिन कीजिये। छोटे-छोटे बच्चों की अबोधता हरते हुये और इनको शिक्षित बनाते हुये जाति का कल्याण कीजिये।

पत्रकार

अपवाद,-कुत्सा,-झूठ-लेखन से तुम्हें वैराग्य हो;
बिगड़ी बनाने का तुम्हें उपलब्ध अब सौभाग्य हो।
हमको जगाने के लिये तुम युक्तियों से काम लो;
सोये हुओं को मृत बनादे जो, न उसका नाम लो॥ १३५ ॥

अपवादपूर्ण, निंदनीय तथा झूठे लेख प्रकाशित करने से आपको घृणा होनी चाहिए। हम तो यह प्रार्थना करते हैं कि बिगड़ी हुई बातों को बनाने का सौभाग्य आपको प्राप्त होवे। हमको जाग्रत बनाने के लिये ऐसी युक्तियों से काम

लीजिये कि जो सोये हुओं को जाग्रत करें, नहीं कि उनको मृत बना दें।

हे पत्रकारो ! पत्र में सुन्दर सुधाकर लेख दो ;
मन देखते ही खिल उठे, पंकिल न तुम अब लेख दो।
यदि व्यक्तिगत-अपवाद भी तुमको कहीं करना पड़े ;
ऐसा लिखो बस युक्तिगत नहि व्यर्थ श्रम करना पड़े ॥१३३॥

हे पत्रकारजन ! अपने पत्रों में सुन्दर और अमृत की वर्षा करने वाले लेख प्रकाशित कीजिये। जिनको देखते ही मन प्रफुल्लित हो उठे। गंदे लेख अब मत दीजिये। अगर किसी व्यक्ति का सीधा अपवाद भी करना पड़े तो भी वह इतना युक्ति-संगत होना चाहिए कि आपका श्रम व्यर्थ नहीं जावे।

उठते हुए कवि, लेखकों को कर पकड़ उत्थित करो ;
है पत्रकारों की कमी, सो इस तरह पूरी करो।
फिर से नया मण्डन करो इस जाति मुर्त्यागार का ;
जड़, मूल उच्छेदन करो बढ़ते हुए अतिचार का ॥१३७॥

उदीयमान कवि और लेखकों को सहारा दीजिये और सुयोग्य पत्रकारों की कमी को पूरा कीजिये। मानव समाज का नव निर्माण कीजिये प्रसारित होते हुए अतिचार को नष्ट कीजिये।

अब राग, मत्सर द्वेष के विष-झर बहाना छोड़ दो ;
इस ओर से उस ओर को अब गति बढ़ाना तोड़ दो।

हर पत्र हो नर मात्र का, यह साम्प्रदायिक युग गले ।
बस साम्प्रदायिक गंध से नहिं पत्र पूरित वह मिले ॥१३८॥

अब तक आप लोग रागादि कुत्सित मनोभावों का ही प्रचार बढ़ाते रहे । कृपा करके अब दूसरी दिशा लीजिये । जिससे हर पत्र को प्रत्येक जन अपना समझे और यह साम्प्रदायिक युग जिससे नष्ट हो जाय । हम इतना ही चाहते हैं कि कोई भी पत्र साम्प्रदायिक गंध से पूर्ण नहीं होवे ।

शिक्षणसंस्थाओं के संचालक

संचालको ! विद्याभवन सब आपके आदर्श हों ;
सर्वत्र विद्याभ्यास का अतिशय बढ़ा उत्कर्ष हो ।
शिक्षक सभी गुणवान हों, सब छात्र प्रतिभाशील हों ;
वातावरण चटशाल का सुन्दर, शिवं सुखशील हो ॥१३९॥

संचालकजन ! आपके शिक्षणालयों में आदर्शता आनी चाहिए । विद्याभ्यास अतिशय बढ़ा हुआ हो । गुणवान शिक्षकजन हों । प्रतिभा-सम्पन्न छात्रगण हों । शिक्षणालय का वातावरण आकर्षक, कल्याणकारी और सुखदायी हो ।

विद्याभवन में नाम को नहिं साम्प्रदायिक भाव हो ;
ऐसे न शिक्षण हों वहाँ, जिनसे सबल पर दाँव हो ।
सौजन्यता का, एक्यता का प्रेम पूर्वक पाठ हो ;
विनयादि सत्तम शुभ गुणों का पाठ गृह वह हाट हो ॥१४०॥

वहाँ साम्प्रदायिक भावनाओं का आभाष मात्र भी नहीं होना चाहिए। ऊँच-नीच, राव-रंक आदि भेदों का नाश करने वाले, सार्वभौम संगठन और सदाचार का शिक्षण होना चाहिए। शिक्षणालयों में विनय आदि उत्तम एवं कल्याणकारी गुणों की विक्री होनी चाहिए।

गुरुकुल व्यवस्थित हों सभी, चालक सभी गुणवान हों;
जातीय झगड़े हों नहीं, निर्भेद विद्यादान हो।
संचालको! ये छात्रगण सब जाति की सम्पति हैं;
इनको अगर कुछ हो गया सब ओर से आपत्ति है ॥१४१॥

गुरुकुलों की सुव्यवस्था हो। गुणवान संचालक हों वहां जातीय झगड़ों का प्रभाव नहीं हो। लिंग, मत, जाति भेदादि विद्या के दान में बाधक नहीं हों। ये छात्रगण ही समस्त जाति की एक मात्र सम्पत्ति हैं। इस सम्पत्ति के बिगड़ने पर चारों ओर से आपत्तियों का प्रकोप होना संभव हैं।

सबकी लगी है दृष्टि इन सब गुरुकुलों के ओर ही;
एकत्र भी तो हो रहा धन जाति का इस ओर ही।
संचालको! हे शिक्षको! कितना बड़ा यह कोष है;
फिर भी तुम्हें सब सौंप कर वे कर रहे संतोष हैं। ॥१४२॥

सर्वजन इन गुरुकुलों की ओर बड़ी आशा भरी दृष्टियों से देख रहे हैं, सच भी है, क्यों कि समाज का छात्ररूपी धन भी तो यहीं एकत्रित हो रहा है। हे संचालक तथा शिक्षकजन!

समाज यह महान भंडार आप के संरक्षण में देकर संतोष कर रही है।

नारी

नारी कला अब हाय ! रे ! विग्रह, कलह में रह गई।
मरते हुए हम मर्त्य पर भरकम शिला-सी गिर गई।
जब लड़ रही हों ये नहीं, जाता निमिष ऐसा नहीं।
इस दृष्टि से बहनो ! तुम्हारे नाम हैं अनुचित नहीं ॥१४३॥

अब स्त्रियाँ विग्रह और कलह करने में ही कौशल दिखाती हैं। हम तो पहिले से ही मृतप्रायः हैं, ये स्त्रियाँ भारी शिला के समान हम पर टूट कर गिर पड़ीं। ऐसा कोई क्षण नहीं निकलता, जिसमें ये नहीं लड़ रही हों। यह देखते हुये तो आपके वे सारे नाम अनुचित नहीं हैं।

बहनो ! तुम्हारे पतन में अपराध है सब पुरुष का;—
ऐसा नहीं तुम कह सको; कुछ आपका, कुछ पुरुष का।
तुमको नचाते हैं पुरुष—उनका यही व्यभिचार है;
सफुल्ल हो कर नाचती हो तुम, यही रसचार है ॥१४४॥

एक मात्र पुरुष ही आप की अवनति के कारण है—यह आप नहीं कह सकतीं। पुरुष आपके साथ मनमानी करते हैं और आप उनकी इच्छानुसार भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक चलती हैं। दोनों ही अपराधी हैं।

घर में तुम्हारा राज्य हो, पति से तुम्हारा प्रेम हो,
बाहर सदा सहयोग हो, संतान तुमको हेम हो;
इस भाँति से पतिदेव को सहयोग यदि देने लगो,—
सुख के दिवश आ जायँगे, सुख लूटने लेने लगो ॥१४५॥

आप घर की व्यावस्था पूरे उत्तरदायित्व के साथ करें। पति से प्रेम करें। घर के बाहर होने वाले कार्यों में भी हाथ बटावें। संतान को सर्वस्व समझें। इस प्रकार अपने पति को सुख और सुविधा पहुँचावें। सौभाग्य जग जावेगा और सुख स्वभावतः वर्षने लगेगा।

नारि-कला से आज भी यदि प्रेम जो रहता तुम्हें,
ऐसा लिखिल दरिद्रय तो नहिं देर को मिलता हमें !
तुम जिन दिनों में हाथ मे चर्खा चलाती नित्य थीं ;
सुख से भरे वे दिवस थे, करती सभी तुम कृत्य थीं ॥१४६॥

स्त्री-कलाओं के सीखने में अगर आज भी आप को रुचि होती तो ऐसी भयंकर दीनावस्था तो नहीं होती। जब आप चर्खा कातती थीं, तब सुख के दिन थे। उस समय आप सर्व कार्य हाथों से करती थी।

जब से बनी तुम कामिनी, मूर्खा, परायी भामिनी ;
दुर्भाग्य की तब से हमारे पड़ गई कच यामिनी।
ये आपके बिन नर नराधम भी न जी सकते कभी ?
सम हों जहाँ दोनों, वहाँ कोई कमी कहते कभी ? ॥१४७॥

जब से आप चंचला, मूर्खा और पर पुरुष की ओर ताकने वाली हुई, तभी से दुर्भाग्य की अंधकार पूर्ण रात्रि आ गई। आपके बिना ये अधम मनुष्य भी जीवित नहीं रह सकते। जहाँ दोनों एक से पथभ्रष्ट मिल जायें, वह पतन में फिर क्या कमी रह सकती है।

हे मात ! भगिनी ! आप अपनी इस दशा का हेतु हैं;
अपने पतन के कारणों में आप कारण केतु हैं।
आदर्श, साधवी आप थी जब, देश भी आदर्श था;
संतान थीं सब सद्गुणाकर, शिव सुख, उत्कर्ष था ॥१४८॥

हे माताओ ! बहिनो ! आपकी इस पतनदशा के कारणों में प्रमुख कारण तो आप स्वयं ही हैं। आप आचार में, विचार से जब आदर्श थीं, यह देश भी आदर्श था। संतान भी गुणवान थीं और कल्याणकारी एवं सुखदायी उन्नतिकाल था।

इतिहास बहनो ! आज तक का यह हमें बतला रहा—
संसार पीछे आपके मरता हुआ है आ रहा।
वह राम-रावण युद्ध भी था आपके कारण हुआ;
विध्वंश कौरव-पाण्डवों का आपके कारण हुआ ॥ १४९ ॥

स्त्रियों के पीछे संसार पागल है—यह इतिहास सिद्धि है। लंका और कुरुक्षेत्र के भयंकर संग्राम स्त्रियों के कारण ही हुये थे।

पीछे तुम्हारे भूप कितने रंक निर्धन हो गये?
पाकर तुम्हें योगी, ऋषी पथ-भ्रष्ट कितने हो गये?

इस काल के ये मनुज तो फिर क्या विचारे चीज हैं ;
वह मोहिनी बहनो ! तुम्हारी काम का ही बीज है ॥१५०॥

आप के कारण अनेक राजा दीन और कंगाल हो चुके। अनेक योगी और मुनि आचरण भ्रष्ट हो चुके। इस कलियुग के पुरुष तो फिर विचारे वस्तु ही क्या है ? पुरुष आप की ओर जो सहज आकृष्ट होते हैं, उसका कारण आप की वासनापूर्ण-चंचलता है।

वैसे जगत में काम की जगती सदा ही आग है,
अनुकूल यदि तुम मिल गईं, दूनी भड़कती जाग है।
त्रेतादि द्वापर में तुम्हारी जाति में भी शक्ति थी,
अतएव कामी अनुज की चलती न कोई युक्ति थी ॥१५१॥

वैसे काम वासनाओं का जगत में प्रकोप सदा रहता है। जिस युग में स्त्रियें अनुकूल हो जाती हैं कामाग्नि आत्यधिक भड़क उठती है। सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापर युग में स्त्रियें पराक्रम शालिनी थीं, अतः कामी मनुष्य का कोई बल नहीं चलता था।

तुम हाय ! बहिनो आज तो इतनी पतित हा ! होगईं।
रस राज—क्रीड़ा की अहो साकार प्रतिमा हो गईं।
संयम-भरा वह स्त्रैण-बल जब तक न तुममें आयगा।
तब तक न कोई अन्त हा ! इस दुर्दशा का आयगा। ॥१५२॥
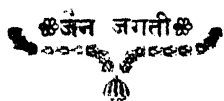
हे बहिनो ! आज आप कामदेव की लीलाओं की साक्षात् मूर्त्तियों के समान हैं। यह आप का भयकर पतन है। जब आप पुनः शीलवती और सदाचारिणी बनेंगी, तब ही आपकी यह अवदशा शान्त होगी।

बहिनो ! तुम्हारे हाथ में कितना अतुल बल-वीर्य्य है।
क्या बादशाही काल में कुछ कम दिखाया शौर्य्य है ?
वह बल तुम्हारे में अभी जो क्रान्ति करके जग उठे।
बहिनो ! तुम्हारी अवदशा यह निमिषि भरमें जल उठे ॥१५३॥

जब मुसलमान बादशाहों का शासनकाल हम को स्मरण आता है, ज्ञात होता है कि आप अतुल बलवती और वीर्य्य-शालिनी थीं। वही बल और वीर्य्य अगर आज पुनः जाग्रत हो जाता है, तो आपकी इस अवदशा का अन्त भी एक क्षण में हो जाता है।

पर आज तो बहनो ! तुम्हें कटुशील है लगने लगा,
बालायु में ही आपका अब काम मन हरने लगा।
यह मनुज कामी श्वान है, कामी शुनी तुम बन गई,
अब नाश की तैयारियों में क्या कमी है रह गई ?॥१५४॥

बहिनो ! बड़ा दुःख है। शीलव्रत का पालन आज आपके लिए कठिन हो गया है। बाल-अवस्था में ही आप काम के वशीभूत हो जाती हैं। मनुष्य कुत्ते के समान महा कामी है ही और फिर आप भी अगर कामिनी कुत्तियों के समान उनको
२८

सहज हो जाती हैं, तो सर्वनाश होने में कोई कमी नही समझनी चाहिए।

बहिनो ! बढ़ो तुम चीर कर संकोच, लज्जा-चीर को,
कामी जनों में भिड़ पड़ो तुम खींचकर शमशीर को।
अन्यायियों ने आज तक तुम पर किया अन्याय है,
अन्यायियों के तो लिए तलवार अन्तिम न्याय है॥१५५॥

बहिनो ! संकोच और लज्जा के चीर को फाड़कर बाहर निकलो। तलवार ग्रहण करके कामी पुरुषों का सामना करो। इन अन्यायियों ने आज तक आप पर मनमाने अत्याचार किये हैं। अत्याचारियों के लिये तलवार का प्रयोग ही अंतिम न्याय कहा गया है।

मूर्खा न अब यों तुम रहो। पर्दा-नशीना नहि रहो ?
अपना हिताहित सोच लो, दासी नहीं बनकर रहो।
सम भाग पाने के लिये अब तुम लड़ो जी खोल कर।
अर्धाङ्गिनी हैं आप तो, आधा उठालो तोल कर॥१५६॥

आप अब पर्दे की ओट में तथा अनपढ़ नहीं रहो। अपना कल्याण सोचो। दासी के समान पददलित होकर मत रहो। पुरुषों के बराबर अपना अधिकार प्राप्त करो। आप अर्धाङ्गिनी कहलाती हैं, तब सर्वत्र और सर्व में आप का आधा अधिकार स्वयंसिद्ध है।

बहिनो ! तुम्हारे जब उरों में क्रान्ति लहरा जायगी,
इस वृद्ध भारतवर्ष में गत शक्ति फिर आ जायगी।
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़न बन्द सब हो जायँगे,
नर रत्न फिर देने लगोगी, फिर धनी हो जायँगे ॥१५७॥

बहिनो ! जब आपके हृदयों में क्रान्ति जगेगी, तब ही इस वृद्ध भारतवर्ष में पुनः शक्ति जगेगी, अनमेल और अनुचित विवाहों का होना तब ही बंद होगा। फिर तो आप अमूल्य पुत्र रत्न उत्पन्न करेंगी, जिससे फिर सुपुत्र प्राप्त कर यह भारतवर्ष धनी कहा जायगा।

विधवाओ

भवितव्यता तो फलवती होये बिना रहती नहीं,
प्रारब्ध के अनुसार ही भवितव्यता बनती सही।
पुरुषार्थ से प्रारब्ध का निर्माण होता है सदा,
जिस भाँति का पुरुषार्थ है, प्रारब्ध वैसा है सदा ॥१५८॥

प्रकृति का नियम है कि जो होने वाला है, वह होगा। परन्तु यह स्मरण रहना चाहिए कि कर्म के अनुसार ही फल होता है। कर्म करने से ही भाग्य बनता है, जैसा कर्म होता है, वैसा ही प्रारब्ध अर्थात् भाग्य बनता है।

पुरुषार्थ तुम करती नहीं, फिर भाग्य को तुम दोष दो,
सब कुछ तुम्हारा दोष है, क्यों दूसरों को दोष दो।

स्वाधीन होने जा रहे स्वैरिन तुम्हें तो नर करें,
वैधव्य वृद्धक साधनों को तोड़कर निःजड़ करें ॥१५९॥

पुरुषार्थ अर्थात् प्रयत्न तो आप करती नहीं और फिर भाग्य को दोष देती हैं! अपना तो अपराध और अपराध बतलाती हैं दूसरों का—यह कहाँ तक समुचित है। पुरुष जब आजादी के लिये लड़ रहे हैं, आप को पुरुषों से कहना चाहिए कि पहले वे आपको स्वतंत्र करें। इस प्रकार आप भी स्वतंत्रता प्राप्त करके वैधव्य को बढ़ाने वाले समस्त दुःखदायी कारणों को नष्ट कर सकती हैं।

विदुषी बनो तुम एक दम, अतिचार होता रोक दो,
कामी जनों के बदन पर शत लात—मुक्के ठोक दो।
फलती हुई निज कामना नर छोड़ दें—सम्भव नहीं,
इस हेतु शायद है न कन्या—पाठशाला—गृह कहीं॥१६०॥

पढ़ी-लिखी बहनो! होते हुये अत्याचारों को एक दम रोक दो। कामी मनुष्यों की हाथों और लातों से अच्छी प्रकार मर्म्मत करो। मनुष्य की काम-वासनाएँ किसी न किसी प्रकार तृप्त हो रही हैं। ऐसी स्थति में यह बहुत सम्भव है कि वे काम-वासनाओं को त्याग दें। देश में अधिक कन्या-पाठशालाओं का नहीं होना भी इसी बात को अधिक सिद्ध करता है।

सभा

अब ऐक्यता—सौहार्दशीलन हर सभा का ध्येय हो,
मत्सर-गरल के स्थान पर अब प्रेम-रस ही पेय हो।
अब व्यक्तिगत कल्याण की सब कामनाएँ तोड़ दो,
बढ़ते हुये वैशम्य की ग्रीवा पकड़ कर मोड़ दो॥ १६१॥

प्रत्येक सभा का उद्देश्य ऐक्यता और पारस्परिक मेल स्थापित करने का होना चाहिए और तथा वह पारस्परिक राग-द्वेषों के स्थान पर प्रेम रस का ही पान करे। व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर इस प्रकार बढ़ती हुई विषमता की गर्दन मोड़ देनी चाहिए।

कुप्रपंच करना छोड़ दो, गाँठे हृदय की खोल दो,
सबमें परस्पर प्रेम हो, मिश्री मनों में घोल दो।
सब हों सभाएँ एकविध हो सूत्र सब का एक सा,
कोई सभा में हो नहीं वह साम्प्रदायिक कर्कशा॥ १६२॥

सभायें प्रपंचों का जाल बिछाना त्याग दें। मनुष्यों के हृदयों में पड़ी हुई कपट की ग्रन्थियों को खोल दें, सब में परस्पर प्रेम स्थापित करदें, मनों में मिठास उत्पन्न कर दें। समस्त सभाओं के विधान और कार्य एक ही उद्देश्य के हों। किसी भी सभा में साम्प्रदायिकता के कुत्सित भाव नहीं मिलने चाहिए।

मण्डल

अब मण्डलो ! नहिं साम्प्रदायिक बंधियाँ करते रहो;
हो ध्येय-च्युत निज वर्ग का मण्डन नहीं करते रहो।
उपकार जात्युद्धार ही अब मण्डलों का ध्येय हो,
उत्थान के छोटे बड़े सब मार्ग तुमको ज्ञेय हो ॥१६३॥

अब मंडलों का कार्य साम्प्रदायिक दलबंधी करना तथा अपने वर्ग का ही ढोल पीटना नहीं होना चाहिये। जाति का उद्धार करना ही मंडलों का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। तथा मंडलों को उत्थान के छोटे-बड़े समस्त मार्गों का ज्ञान होना चाहिए।

यदि मण्डलो ! तुम पूछते हो सच मुझे तो, अब कहूँ—
धन्वी सभा, मण्डल इषु, दल दण्ड, लक्षित हम कहूँ।
तुम दीन हो, दीना तुम्हारी जाति, भारत दीन है,
मण्डन करो हे मण्डलों ! अब तो रही कोपीन है ॥१६४॥

सच बात तो यह है कि सभायें तो धनुर्धारी हैं, मण्डल तीर हैं, जातीय दल धनुष हैं और शेष हम वह लक्ष्य हैं जिस पर सभा रूपी धनुर्धर मंडल रूपी तीर को जातीय दल रूपी धनुष पर रख कर मारता है। मंडल स्वयं, जाति तथा भारतवर्ष सब के सब एक दम दीन हैं, निर्धन हैं। अब तो लंगोट मात्र बच गई है। हे मंडलो ! समृद्ध होने का यत्न कीजिये।

जिन मण्डलों का काम खलु भोजन कराना मात्र है,
सर्वत्र वे लेखे गये उपहास के ही पात्र हैं।
आज्ञा दलाधिप की नहीं उनके लिये कुछ चीज है,
विग्रह, वितन्डावाद के लेखे गये वे बीज हैं ॥१६५॥

जो मंडल विशेष अवसरों पर केवल भोजन संबंधी व्यवस्था ही करते हैं, उनकी हँसी ही होती देखी गई है। ऐसे मंडल अनुशासन किस वस्तु का नाम है जानते तक नहीं। ऐसे मंडल कलह और झगड़ों के ही कारण भूत होते हैं।

ये एक विगलित पेटिका हित तोड़ते पेखे गये—
उन मण्डलों को जो कि जिनवर नाम से लेखे गये!
पदत्राण ये पहिने हुये भोजन परोसेंगे तुम्हें!
परिचय उचित निज इस तरह देते रहेंगे ये तुम्हें ॥ १६६ ॥

भगवान् जिनेश्वर के नाम के पीछे ये मण्डल खोल जाते हैं। और टूटी-फूटी अथवा जीर्ण-शीर्ण पेटी के लिये मण्डल के सदस्यों में भारी कलह उत्पन्न हो जाता है चमड़े के बने हुये जूते पहने हुये ये भोजन परोसते हैं। ये क्या हैं—इस प्रकार रह कर तथा करके ये अपना परिचय आप स्वयं देते रहते हैं।

ऐसे विषम वातावरण में सभ्य मण्डल चाहिये,
दम्भी लवण-तस्कर, हटी नहिं सभ्य-दल, बल चाहिए!
जो ब्रह्मवर्ती है सदा आदर्श वह ही सभ्य है,
अभिजात मण्डल है वही, अभिजात जिसके सभ्य हैं ॥१६७॥

ऐसी विकृत स्थिति में तो आदर्श मण्डलों की ही एक मात्र आवश्यकता है जिनके सदस्य दंभी, कुचाली, चोर, अविनीति, नहीं होवें। जो सदस्य ब्रह्मचारी हैं, वही आदर्श सदस्य हैं। आदर्श-मण्डल भी वही है, जिसके सदस्य आदर्श, उन्नत और सच्चे हैं।

संख्या अधिक गुण्डे जनों की हाय! इनमें पायगी!
तुम देख लेना मण्डली अपध्वस्त होकर आयगी।
अतएव ऐसे मण्डलों को तुम कुचल दो एक दम,
अभिजात तुम आगे बढ़ो, आगे बढ़ो तुम दो कदम ॥१६८॥

इन मण्डलों का अगर निरीक्षण किया जाय, तो इनमें कार्य करने वाले युवक अधिकतर गुण्डे मिलेंगे। जहाँ भी ये मण्डल जाते हैं, कलंकित हो कर ही लौटते हैं ऐसे मण्डलों का तो अस्तित्व ही मिटा देना चाहिए। हे आदर्श, उन्नत और सच्चे युवको! आगे बढ़ो और इन मण्डलों में भर्ती होकर इनको आदर्श बनाओ।

उद्योग-धन्धों के लिये तुम जाति से झगड़ा करो,
उन्मूल करती हो प्रथा-माया, उसे भेदा करो।
सौहार्द हो, हो प्रेम शुचि, सुन्दर परस्पर भाव हो।
हो शिक्षिता नारी यहाँ—मण्डल! तुम्हारे दाँव हो ॥१६९॥

हे मण्डलो! स्त्रियों को पढ़ाना, परस्पर सौहार्द, पवित्र प्रेम सद्भावनाओं की स्थापना करना, कुरीतियों तथा अनुचित मोह-माया का नाश करना और उद्योग-धन्धे खोलने के लिये समाज में क्रांति का करना तुम्हारे कार्य होने चाहिए।
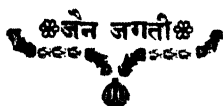
तीर्थ

ये पतित-पावन धाम हैं, मात्सर्य्य का क्या काम है,
द्विज, शूद्र दोनों के लिये ये तीर्थ सम सुखदाम हैं।
द्विज ! साम्प्रदायिक पंक से पंकिल इन्हें तुम मत करो,
दर्शन निमित आये हुये नहिं शूद्र को वर्जित करो ॥१७०॥

ये तीर्थ तो पतितों को पवित्र करने वाले स्थान हैं। यहाँ पर मत्सरता का क्या काम है ? सवर्णों और सूद्रों के लिये ये तो एक-से सुखदायी हैं। हे द्विजगण ! साम्प्रदायिकता के कीचड़ में इनको दूषित मत करो। दर्शन करने के लिये आते हुये किसी शूद्र को मत रोको।

एकत्र अगणित कोष का करना यहाँ अब व्यर्थ है ;
इनमें करोड़ों हैं जमा, उपयोग क्या ? क्या अर्थ है ?
हे बन्धुओं ! तुम कोर्ट में इनके लिये अब मत बढ़ो ;
अब लड़ चुके तुम बहुत ही, आगे कृपा कर मत बढ़ो ॥१७१॥

मंदिरों में अब अधिक धन राशि का जमा करना व्यर्थ है। क्यों कि जितना जमा है, उसका भी कोई सदुपयोग नहीं हो रहा है। हे बन्धुगण ! मंदिरों के प्रश्न को लेकर हम ऊंचे से ऊंचे न्यायालय तक जा चुके हैं। इससे आगे अब मत बढ़िये अर्थात् अब आगे बढ़कर हम संहारनीति ही ग्रहण कर सकते हैं। यह स्थिति तो कम से कम कृपा करके उत्पन्न नहीं करिये।

मन्दिर

पण्डे पुजारी अब विधर्मी वै तनिक रहने न दो ;
गणना तुम्हारे मंदिरों की अब अधिक बढ़ने न दो ।
ये पतित होकर भक्त-जन हैं भृत्य-पद पर आ गये ;
हा ! घन-घटा से भृत्यगण सर्वत्र देखो छा गये ॥१७२॥

मंदिरों में विधर्मी तथा वेतन पर पुजारी मत रक्खो । अधिक तथा जहाँ अनावश्यक हों नये मंदिर मत बनाओ । वेतन लेकर जो एक दिन भक्त थे वे नौकर हो गये और ऐसे नौकर बादलों की घटाओं की भाँति समस्त जैन-समाज में भरे हुये हैं ।

विद्या-प्रेम

यों शिक्षणालय खोलने की धुन तुम्हारी योग्य है ;
शिक्षा-प्रणाली पर तुम्हारी ध्यान देने योग्य है ।
शिक्षापरायण शिक्षणालय एक इनमें है नहीं ;
सब साम्प्रदायिक अड्ड हैं, विद्या-परायण हैं नहीं ॥१७३॥

शिक्षण-संस्थाओं के खोलने की धुन सराहनीय है, परन्तु दूषित शिक्षा-प्रणाली आपके समस्त किये पर पानी फेर रही है । आपकी एक भी शिक्षण संस्था ऐसी नहीं मिलेगी, जो सचमुच शिक्षा देने का कार्य तत्परता से करती हो । ये सर्व साम्प्रदायिक अड्डे हैं और विद्या-दान ही एक मात्र जिसका ध्येय है, वह एक भी नहीं ।

विद्या-भवन में विष भरा शिक्षण न विद्यादान दो,
विद्यार्थियों को अब नहीं ऐसा अपावन ज्ञान दो।
बालक अधूरा ज्ञान में घर का न कोई घांट का,
वह हाट में भी क्या करे, नहिं ज्ञान जिसको बाट का ?॥१७४॥

विद्याशालाओं में अब कृपा करके जहरीली विद्यायें नहीं पढ़ाइये। विद्यार्थियों को ऐसा दूषित ज्ञान मत दीजिये। अर्ध-ज्ञानी बालक कहीं का भी नहीं रहता। जिसको बाँटों की पह-चान भी भली विधि नहीं, वह दूकान में क्या सफलता प्राप्त करेगा।

यों दुर्व्यवस्थित शिक्षणालय आज से रक्खो न तुम;
अतिरिक्त विद्याभाव के कुछ दूसरा रक्खो न तुम।
शिक्षक अधूरे हों नहीं, सब ज्ञान गरिमागार हो;
कौशल-कला-विज्ञान का विद्याभवन भण्डार हो॥१७५॥

आज से आगे शिक्षण संस्थाओं को दुर्व्यवस्थित मत रहने दो। उनमें अतिरिक्त विद्यादान देने के और कोई भाव मत रहने दो। शिक्षक भी पूरे ज्ञानवान रक्खो। विद्याशालाओं को कला, कौशल तथा विज्ञान का भंडार बनाओ।

हर ग्राम में चटशाल हो, गुरुकुल तथा पठशाल हो;
ऐसा न कोई ग्राम हो, जिसमें न विद्याशाल हो।
शुचि पुण्य भावों से भरा संचालकों का वर्ग हो;
आदर्श विद्या प्रेम हो तो क्यों न भारत स्वर्ग हो॥१७६॥

प्रत्येक ग्राम, पुर अथवा नगर में शिशुशाला, पाठशाला अथवा गुरुकुल कुछ न कुछ होना ही चाहिए। एक भी ग्राम, पुर ऐसा नहीं रहे, जहाँ छोटी या मोटी शिक्षणशाला नहीं हो। उनके पवित्र और सद्भावी संचालक हों। अगर हमारा विद्या से प्रेम आदर्श हो तो यही भारत पुनः स्वर्ग बन सकता है।

स्त्री-शिक्षा

अब नारी-शिक्षण आज से अनिवार्य्य तुम नरवर! करो;
अमराङ्गता को आज इनकी नरवरो! नश्वर करो।
नर रत्न गर्भा कुन्तला की जाड्यता अप-हृत करो;
नर सस्यपूर्णा श्यामला का मनुज हो, रक्षण करो॥१७७॥

स्त्री शिक्षण को अनिवार्य बना कर स्त्रियों में गहरी जड़ जमाई हुई निरक्षरता का नाश करो। इस प्रकार मनुष्य रूपी रत्न की नारी रूपी खान को जो अनेक मल-मैल से ढक गई है खोलो। नरकृषि से ही जो एक मात्र सुशोभिता है ऐसी नारी को नष्ट होने से, तुम मनुष्य हो, बचाओ।

जब से करी अवहेलना यों आपने स्त्री-जाति की;
दुर्देव की चालें तभी से फल रहीं हर भाँति की।
सुत सूर मूर्खा नारियें किस भाँति से फिर दे सकें;
जब धार कुण्ठित हो गई, तलवार क्या भक् ले सके॥१७८॥

हे पुरुषो! आपने जब से स्त्री-जाति की ओर ध्यान देना छोड़ा है, तभी से दुर्भाग्य की प्रत्येक चाल सफल होती रही है।

मूर्खा स्त्रियाँ सुसंतान कैसे उत्पन्न कर सकती हैं ? कुण्ठित धार वाली तलवार संहार नहीं कर सकती।

कर दो हमारी देवियों को शिक्षिता वर पंडिता;
फिर जाति आपोंआप ही हो जायगी चिर मंडिता।
संसार-जीवन-शकट के नर, नारि ये दो चक्र हैं;
हो एक दृढ़ दूजा अबल, अवरुद्धा-गति रथ-चक्र हैं ॥१७६॥

हमारी उन देवियों के शिक्षिता और पण्डिता होते ही यह समाज आपों आप गौरवशाली हो उठेगा। स्त्री और पुरुष दोनों सांसारिक जीवन रूपी रथ के दो चक्र हैं। एक चक्र अच्छा हो और दूसरा बुरा तो भी अच्छे चक्र की प्रगति पर बुरे चक्र की विकलता का अवश्य प्रभाव पड़ेगा और रथ की गति में रोक आ जावेगी।

सुत-पक्ष की जैसी तुम्हें चिन्ता सुता की भी करो;
दोनों शकट के चक्र हैं, सुत तुल सुता को भी करो।
जीवित रहो वह देखने दिन जब सुता पढ़ने लगे;
तब देखना मृतवर्ग ही अपवर्ग-सा लगने लगे ॥१८०॥

पुत्र और पुत्री दोनों को समान समझो। दोनों ही एक रथ के चक्र हैं। पुत्र के बराबर पुत्री को भी बनाओ। वह दिन, जब आप की कन्यायें पढ़ने लगेंगी, देखने के लिए ईश्वर आपको जीवित रक्खे। उस समय आप देखना कि यह मृत्युलोक भी स्वर्गलोक के समान सुन्दर और कल्याणकारी प्रतीत होने लगेगा।

साहित्य-सेवा

साहित्य-सेवा शब्द मुझ को तो अपरिचित-सा लगे;
साहित्य के प्रति प्रेम कितना—कुल पता इससे लगे।
हे मूर्खते जीती रहो, हामी तुम्हारे हैं हमीं;
सीखे न लिखना नाम हम, कोई नहीं हम में कमी ॥१८१॥

मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि 'साहित्य-सेवा' शब्द ही हमारी समाज के लिए एक अपरिचित शब्द है। इससे हम समझ सकते हैं कि हमारी समाज का साहित्य से कितना प्रेम है? मूर्खते! तुम जीवित रहो। हम तुम्हारा पोषण भलीविध करते ही हैं। हम अपना नाम भी शुद्ध नहीं लिख सकते। हमारी मूर्खता में कोई कमी नहीं है।

साहित्य के प्रति प्रेम उर में बन्धुओ! जाग्रत करो;
साहित्य जीवन-मंत्र है, तुम जाप इसका नित करो।
साहित्य-स्रष्टा मनिषियों को हर तरह सहयोग दो;
स्वाध्याय-शाला खोल दो सुविधा तथा मनयोग दो ॥१८२॥

हे बन्धुओ! साहित्य के प्रति अपने हृदयों में प्रेम को जाग्रत कीजिये। साहित्य ही जीवन है—यह अच्छी प्रकार समझ लीजिये। साहित्य-लेखकों को स्वाध्याय-शालायें खोल कर तथा अनेक सुविधायें देकर मनपूर्वक सहयोग दीजिये।

चाहे 'जिनेन्द्र' 'गुलाब' का तुम मान-वर्धन मत करो;
करके दया श्रीमंत ! पर तुम मान-मर्दन मत करो।
संतोष तुम इतना करो, उत्साहयुत बढ़ जायँगे,
भण्डार पहिले ही भरे, भण्डार फिर भर जायँगे ॥१८३॥

श्री जिनेन्द्रकुमार तथा श्री गुलाबराय एम. ए. का भले आप उचित मान नहीं भी करें, परन्तु श्रीमंत ! उनका अपमान तो नहीं करो। अपने पर आप इतनी संयम रख लीजिये। इससे भी हमारा उत्साह बढ़ जावेगा और उन्नति कर सकेंगे। प्राकृत भाषा में तो हमारा साहित्य बेजोड़ है ही, हिन्दी भाषा में भी हम फिर तो बेजोड़ बना सकेंगे।

योजना

श्री 'निखिल-जिनमत-वृहद्-परिषद्' आज हम कायम करें,
छोटे बड़े अधिकार सब उसको समर्पित हम करें।
वह जैन-जगती में हमारी सार्वभौमिक शक्ति हो,
हम पर उसे अनुराग हो, उसमें हमारी भक्ति हो ॥१८४॥

'निखिल-जिनमत-वृहद्परिषद' नाम की हम एक साहित्य सभा आज स्थापित करें और साहित्य-सृजन; प्रकाशन संबंधी समस्त अधिकार देकर उसको सत्रक्त बनावें। हमारे ऊपर उसको सदा कल्याण दृष्टि हो और हम उसकी प्रत्येक आज्ञा का तथा उसके द्वारा किये प्रत्येक साहित्यिक कार्य का मान करें।
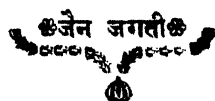
सब हो सभासद वैतनिक, मिलता उचित वेतन रहे,
उनके करों में डोर हो, उनके करों में बल रहे।
प्रत्येक तीजे वर्ष पर ये सब सभासद हों नये,
वे हो सकेंगे सभ्य, जिनके अधिक अभिमत हो गये ॥१८५॥

इस साहित्य-परिष्द् के सर्व सदस्यों को उचित; वेतन दिया जाना चाहिए। इन सदस्यों के हाथों में समस्त समाज की संचालन शक्ति होनी चाहिए और उनके हाथों में अधिकारों का बल होना चाहिए। प्रत्येक तीसरे वर्ष उनका फिर चुनाव हो और जिनके अधिकतम मत आवे वे ही सदस्य बनने चाहिए।

इसकी अनेकों शाख हों सर्वत्र फिर फैली हुई;
सबकी व्यवस्था एक से ही ढंग पर हो की हुई।
सबकी प्रणाली एक हो कर्तव्य सब का एक हो;
हो भिन्न सबके कार्य-गुण, पर केन्द्र सबका एक हो॥१८६॥

साहित्य-परिषद् की सर्वत्र भारतवर्ष में स्थल-स्थल पर शाखायें हों। सर्व शाखाओं की व्यवस्था, कार्यप्रणाली, और उद्देश्य एक हों। प्रत्येक शाखा का कार्य भले भिन्न भिन्न हो। परन्तु सर्व शाखाओं का केन्द्रीय साहित्य परिषद से पूरा पूरा संबंध हो।

विद्वद्-सभा, विद्या-सभा, कौशल-सभा, शिल्पी-सभा;
छात्र-परिषद्, युवक-परिषद्, युवती-सभा, नारी-सभा।
शिक्षण-सभा, साहित्य-परिषद्, बाल-विधावादल-सभा
विज्ञान-परिषद्, धर्म-परिषद्, राजनैतिक-दल-सभा ॥१८७॥

श्री साधु-परिषद, कुंवर-दल, कन्या-कुमारी-परिषदा,
दीक्षा-सभा, मन्दिर-सभा, श्री तीर्थ-रक्षण-परिषदा।
इत्यादि सभाश्रम, समिति, दल, मण्डल, अहो! स्थापित करें,
बीते हमारे दिवस वे पीछे नहीं क्यों फिर फिरें॥ १८८॥

इन छंदों का शब्दार्थ करना शब्दों का पिष्टपेषण ही होगा।

बिन राज्य के भी राज्य की हम नींव ऐसे गढ़ सकें,
उत्थान की सोपान पर हम दौड़ ऊंचे चढ़ सकें।
हो ऐक्यता जिस ठौर, क्या होती नहीं साफल्यता,
बढ़ने लगे धन, धर्म यश, घटने लगे वैफल्यता॥ १८९॥

किसी राज्यप्रान्त के अभाव में भी हम इस प्रकार की व्यवस्था करके एक सामाजिक राज्य की दृढ़ नींव लगा सकते हैं। ऐसा करके हम अत्यधिक उन्नति कर सकते हैं। जहां ऐक्यता हो, वहां सफलता अवश्य है धन, धर्म, और कीर्ति वहां बढ़ते हैं और हर प्रकार की विफलता घटती है।

कुछ भी न चिन्ता साम्प्रतिक हम अवदशा की यदि करें,
रोगी हुए जन के लिये उपचार यदि हम नहिं करें—
परिणाम होगा क्या वहाँ-क्या हो नहीं तुम जानते?
फिर क्यों न मेरे बन्धुओं! हो बात मेरी मानते॥ १९०॥

बिगड़े हुये वर्तमान की यदि हम चिंता नहीं करेंगे, बिमार पड़े हुये प्राणी का यदि हम उपचार नहीं करावेंगे तो जो परिणाम निकलेंगे, वे हमसे छिपे नहीं हैं। तब हे मेरे भाइयो! मेरे कथन को आप क्यों नहीं कान दे रहे हैं?

२९

जब तक नहीं ये जाति के सब रोग खोये जायँगे;
तब तक न जीवन के दिवस चिर स्वस्थ होने पायँगे।
ये रोग हैं, या व्याल हैं, साकार तन में, काल हैं,
फिर भी नहीं उपचार हैं—ऐसा भयावह, हाल है ॥ १६१॥

हमारा सामाजिक जीवन तब तक स्वस्थ और सुखी नहीं बन सकता, जब तक कि सामाजिक रोगों का नाश नहीं हो जाता है। समझ भी नहीं पड़ती कि ये रोग हैं? काले भुजंग हैं या समाज की देह में स्वयं यमराज प्रवेश पा चुके हैं? ऐसी दयनीय स्थिति है। फिर भी हम कोई उपाय नहीं कर रहे हैं।

उपसंहार

लेखनी

तू भूत भारत गा चुकी, तू रो चुकी इह काल को,
हे लेखिनी! बतला चुकी भावी अनागत काल को।
अब वेग अपना थाम ले, विश्राम ले, संतोष कर,
इतना अलं होगा प्रिये! यदि हो गया कुछ भी असर ॥१६२॥

मेरा ध्येय

गाना प्रथम था ध्येय मेरा भूत भारत की मही,
फिर साम्प्रतिक, भावी दशा भी वर्ण्य थी खलु ही यहीं।
अतएव कोई शब्द मुझ से हो लिखा कटुतर गया,
क्षन्तव्य हूँ मैं-जाति का निर्बोध बच्चा रह गया ॥१६३॥

गुरु-देव-भारती

कहना मुझे जो था, उसे मैं सभ्यता में कह चुका,
हे भारती! तेरी कृपा से ग्रन्थ पूरा कर चुका।
अपशब्द, मिथ्या, झूठ कोई लेखिनी हो लिख गई,
गुरुदेव हे! जिनराज हे! अबला विचारी रह गई॥ १९४॥
रुकती हुई हे लेखिनी! आशा मना ले आज तू,
जाती हुई जिनराज से कुछ विनय कर ले आज तू।
तू छोड़ कर कर जा रही, कर कंप मेरा कर रहा,
जाने न दूंगा मैं प्रिये! प्रस्ताव दूजा रख रहा॥ १९५॥
महावीर-गीति-काव्य की प्रारम्भ रचना कर चुकी,
त्रयषठ-शलाका-नृप-चरित की नींव गहरी कर चुकी।
अतिरिक्त इनके भी मुझे तू भक्त अपना कह चुकी,
मैं भक्त तेरी हूँ वरे! मुझसे अभिन्ना बन चुकी॥ १९६॥

आशे!

आशे! अहो! तुम धन्य हो, आराध्य देवी हो सदा,
आशे! तुम्हारा विश्व में अस्तित्व नहीं यदि हो कदा—
दुखभृत इस संसार में होवे शरणतल फिर कहाँ?
असहाय, निर्बल, दीन को आशे! शरण हो तुम यहाँ॥ १९७॥
कितने न जाने प्राणियों का कर चुकी हो तुम भला,
जब जब विपद जन पर पड़ी, आशे! तुम्हारा बल मिला,
आशे! तुम्हारी भक्ति कर बदजात भी स्वामी बने,
निर्जन विपिन, गिरिदेश भी आशे! सजन नामी बने॥ १९८॥

बल,-शक्ति, मति,-धीवाहिनी आशे ! सदा हो दाहिनी,
हो आर्तजन को तू सुलभ धृति-सुमति,-रति,-गतिदायिनी।
आशे ! तुम्हारे ही भरोसे जैन-जगती आज है,
आशे ! हमारे में रहो, तेरे करों में लाज है ॥ १९९ ॥

शुभ कामना

हो दग्ध सारे शूल, निःजड़ हो हमारी जाड्यता,
हो भस्म यह विषया-लता, उन्मूल हो आलस्यता,
यह फूट कुत्सा हो रसागत, द्वेष, मत्सर नष्ट हो,
सम्फुल्ल हो शुचि प्रेम-तरु, भ्रातृत्व हम में पुष्ट हो ॥२००॥
स्वाधीन भारतवर्ष हो, स्वातन्त्र्ययुत हो जातियें,
सर्वत्र सुख-साम्राज्य हो, हो नष्ट अवमा व्याधियें।
तन में मनुज के स्फूर्ति हो, नस में प्रवाहित रक्त हो,
मस्तिष्क ध्याकर हो सभी के, ईश के सब भक्त हो ॥२०१॥
सब में परस्पर प्रेम हो, मत के न पीछे द्वेष हो,
सौहार्द सब में हो भरा, रसभृत हमारा देश हो।
प्रत्येक जन आगार हो विज्ञान, विद्या, ज्ञान का,
हो भक्त वह निज राष्ट्र का, हो भक्त हिन्दुस्तान का ॥२०२॥
सब हो महाशय, हृष्ट मानस, हो प्रसित अत्युद्यमी,
कौशल-कला-निष्णात हो, हो विज्ञ, शिक्षित सब क्षमी।
अभिजात हो, प्रतीच्य हो हम, हो सभी कृतलक्षणा,
सब हों प्रियवंद, वाक्कुशल, चित में न हो अमर्षणा ॥२०३॥
वाचाल, दुर्मुख हों नहीं, हम गर्ह्यवादिन हों नहीं,
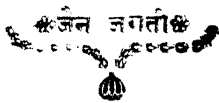
दुष्कर्म में हों दुर्मनस, लोभी कुचर हम हों नहीं।
मद्यान्न भोजन भी न हों, अरु हों न परपिण्डाद भी,
कोई न हम में हो बुभुक्षित, हों न हम सोन्माद भी ॥२०४॥
श्रीमन्त हों दक्षिण, सुकल, हों भक्त भारतवर्ष के,
सब शील हों, सब हों धनी, सब हों निमिष उत्कर्ष के।
सब हों आप्तवृत, जाल्म,-तिर्यक-दीर्घसूत्री हों नहीं,
हों ऊर्ध्वरेता, कान्त हम अति, संकसुक हम हों नहीं ॥२०५॥
हम में न कोई हो मलीमस, वीध्र हम होवें सभी।
शठ, जड़, पिशुन हम हों नहीं, आदर्श नर होवें सभी,
वंचक, अशक्त हम हों नहीं, निर्णिक्त हों, हम पूत हों,
हम दान्त हों, हम शान्त हों, गुणभूत हों, अवधूत हों ॥२०६॥
सुकुमार कोई हो नहीं, पृथु, पीन भी हों हम नहीं,
हम स्वस्थ, पुष्कल हों बली, हों कर्म में अमनस नहीं।
कोई न मार्गण, निःस्व हो, सब स्वावलम्बी धीर हों,
स्वप्नक, पराँमुख हों नहीं, हम पुरुष पुङ्गव, वीर हों ॥२०७॥
सर्वत्र हो विद्या-कला प्रसरित हुई इस देश में,
हिन्दी यहाँ हो राष्ट्र-भाषा हिन्दु हों हम वेष में।
द्विज शूद्र में अति प्रेम हो, पति-पत्नि में दाम्पत्य हो,
गृहस्थ सभी का हो सुखद, गुणवान सब आपत्य हो ॥२०८॥
वह भूत भारतवर्ष अब यह वृद्ध भारतवर्ष हो,
समृद्धि हो वह भूत सी, वह भूत सा उत्कर्ष हो।
भारत हमारा इष्ट हो, राष्ट्रीयता से राग हो,
हम धर्म-व्रती हों अचल, नव जन्म हो, नव जाग हो ॥२०९॥

विनय

हम पुण्य-शाली अब नहीं, भारत महाशय अब नहीं ;
हे पतितपावन वृषभ-ध्वज ! पावन हमें कर दीजिये ।
हम दृढ़ हृदय वैसे नहीं, वैसे महोत्साही नहीं ;
वारण-पते ! करुणा-निधे ! अवलम्ब सत्वर दीजिये ॥

हम पददलित हैं, अज्ञ हैं, दाक्षिण्य हम सब भाँति हैं ;
हे अश्व-ध्वज ! करके दया हमको अचिर अपनाइये ।
बहुप्रद हमारा देश था, दीर्घायु थे हम भी यहाँ ;
निःस्वत्व हमको देखकर, कुछ कोश-ध्वज ! दिलवाइये ॥

होते यहाँ थे हृष्ट मानस, भोग से थे दुर्मनस ;
अब हाय ! विषयासक्त हैं, हे क्रौंचकेत ! बचाइये ।
दाक्षिण, मुकल थे, शील थे, अब कुंठ मानस हो गये ;
मायावरण हम से कृपालो ! कंजकेत ! हटाइये ॥

विश्रुत रहे हम आज तक, हम थे सभी कृतलक्षणा ;
स्वस्तिक-पते ! अब हैं दुखी, श्रीमन्त फिर कर दीजिये ।
स्वामी रहे हम विश्व के, अब-ध्वस्त हम हा! आज हैं ;
हे चन्द्र-ध्वज ! दुर्गत हमारी यह अभी हर लीजिये ॥

हम थे अपावृत एक दिन, हम विश्व के विश्वेश थे ;
परतंत्र्य के इस दुर्ग से हे मच्छ-ध्वज ! छुड़वाइये ।
आपन्न भारतवर्ष है, अब अन्न का भी कष्ट है ;
श्रीवत्सकेतो ! कर दया कुछ अन्न तो दिखलाइये ॥

हम भूत गौरव खो चुके, अपना चुके खल-पूपना।
गण्डकपते! दुर्दैव से रक्षा हमारी कीजिये।
सब भाँति भारत दीन है, इससा न दूजा हीन है!
हे महिष-ध्वज! इस दैन्यता का अपहरण कर लीजिये॥

करते न कर अब काम हैं, तन में न अब कुछ राम है!
हे घृष्टि-ध्वज! कुछ भूल कर चितवन इधर भी कीजिये।
संतप्त हैं, हम क्षुब्ध हैं, अवरीण हैं, हम रुग्ण हैं,
हे श्येन-ध्वज! इस दुख-विहग को लक्ष्य अब कर लीजिये॥

सर्वत्र हिंसावाद है, रसवाद है, रतिवाद है।
इस प्रेत पामर से हमें हे वज्र-ध्वज छुड़वाइये।
हम थे दिवौकस एक दिन, हम प्रेत अब हैं हो गये!
करके दया मृग-ध्वज! हमें अब तन पलट करवाइये॥

न्यग्रोध-सी दुर्मद की शाखा प्रसारित हो रही!
हे मेष-ध्वज! दुर्मद-वट उन्मूल कर बतलाइये।
हम लुब्ध हैं, सोन्माद हैं अरु हैं समुद्धत भी तथा!
भगवान नंदावर्त-कर्ता! धर्म-पथ दिखलाइये॥

भ्रातृत्व हम में है नहीं, हम द्वेष-मत्सर-प्राण हैं!
सम्यक्त्व भारतवर्ष में फिर कुम्भ-ध्वज! प्रगटाइये।
वह त्याग हम में है नहीं, वह ब्रह्म-व्रत हममें नहीं!
कच्छप-पते! वह ब्रह्मव्रत फिर से हमें सिखलाइये॥

सौहार्द हम में है नहीं, सब स्वार्थ का ही राग है!
हे नील सरसिज-ध्वज! हमें मानवपना दिखलाइये।

अभिभूत हम सर्वत्र हैं, आघृत हैं, हम न्यस्त हैं!
हे कंबु-ध्वज, जग-शृंग पर फिर से हमें पहुँचाइये ॥

बढ़ते रहे गोकुल जहाँ, गोबध वहां अब बढ़ रहे!
हे नाग-ध्वज! जग को अहिंसावाद फिर बतलाइये।
हम भीत हैं, कायर, नपुंसक, स्त्रैणता में हैं सने।
हे सिंह-ध्वज! नशमें हमारे सिंह-बल प्रगटाइये ॥

हे अम्बिके! हे कालिके! उल्बण इन्हें कह दीजिये!
भगवान भारतवर्ष को द्रुत दौड़ कर अपनाइये।
भगवान भक्तोद्धार में हे! अब न देर लगाइये!
अवसर नहीं है सोचने का मा! इन्हें समझाइये ॥

यों पतित होकर नाथ! तुमको भज सकेंगे हम, कहो?
भगवान अपने भक्त को यों दीन लख सकते, कहो?
तुम हो दिवौकस, हम अधोमुख, क्या उचित यह है तुम्हें?
जिस स्थान में हम लख सकें तुमको वहीं रखदो हमें ॥

तुम मोड़ दो चाहे गला अपने सुकोमल हाथ से!
इसमें न हमको है हिचक करुणानिधे! हे श्रीपते!
पर स्पर्श तक करने न दो हमको किसी के हाथ से!
मुक्तीपते! मुक्तीपते!! शिवश्रीपते! शिवश्रीपते!!

फाल्गुन शुक्ला ६,
शनिश्चर १९९८
२१-२-४२,

बागरा (मारवाड़)